सुभाष चन्द्र बोस

व्यक्ति और विचार

सुभाष चन्द्र बोस

व्यक्ति और विचार

विश्वप्रकाश गुप्त
मोहिनी गुप्त

राधा पब्लिकेशन्स
नई दिल्ली—110 002

राधा पब्लिकेशन्स
4378/4-B, अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण 1997

ISBN 81-7487-106-3
मूल्य : 300.00 रुपये

के० के० ग्राफिक्स
प्रशांत विहार, दिल्ली-85
द्वारा शब्द संयोजन

तरूण ऑफसेट प्रिन्टर्स,
मौजपुर शाहदरा, दिल्ली
द्वारा मुद्रित

SUBHASH CHANDRA BOSE

by Vishwa Prakash Gupta
Mohini Gupta

आदरणीय जननी श्रीमती कैलाशवती जी गुप्त

तथा

दिवंगत पूज्य पिता श्री ओम प्रकाश जी गुप्त

के

श्री चरणों में

प्रस्तावना

भारत 23 जनवरी, 1997 से नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की जन्म-शताब्दी मना रहा है। नेताजी के आविर्भाव को 100 वर्ष हो गए। नेताजी 17 अगस्त, 1945 को एक विमान-दुर्घटना में काल-कवलित्त हुए। इस प्रकार उनके तिरोभाव को भी प्राय: 52 वर्ष हो गए—आधी सदी से अधिक का समय। 15 अगस्त, 1997 से देश आज़ादी की भी पचासवीं साल मना रहा है। नेताजी आज़ादी के अद्वितीय सेनानी थे। आज़ादी के इतिहास में वही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जो अपनी जान पर खेल कर ब्रिटिश सरकार की सारी चौकसी के बावजूद भारत की सीमाओं से बाहर गए और जिन्होंने बर्तानवी हुकूमत से लडने के लिए आज़ाद हिंद फौज़ का संगठन किया। नेताजी की एक आवाज़ पर विदेशों में स्थित हज़ारों सैनिक और साधारण नागरिक, स्त्री भी, पुरूष भी उनके झडे के नीचे एक्त्रित हो गए। उनमें से बहुतों ने भारत की आज़ादी की लड़ाई में अपनी जान दी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोम भी एक विमान-दुर्घटना में शहीद हुए।

नेताजी की देशभक्ति बेजोड़ थी। उनका शौर्य अलौकिक था। उनका साहस रोमांचकारी था। वे साधारण होते हुए भी असाधारण थे। जिस देश की धरती उनके जैसे व्यक्ति के लहू से सींची जाए, वह देश कभी मर नहीं सकता।

प्रस्तुत पुस्तक *नेताजी सुभाषचन्द्र बोस : व्यक्ति और विचार* भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के अद्‌भुत नायक सुभाषचन्द्र बोस के समूचे व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने का विनम्र प्रयास है। पुस्तक चार खंडों में विभक्त है। पहला खंड स्वतंत्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि पर है। इसमें नेताजी की इतिहास-विषयक दृष्टि, ब्रिटिश शासन के मुख्य पड़ावों तथा भारतीय नवजागरण की मुख्य प्रवृत्तियों का विवेचन है। यह विवेचन नेताजी के विराट व्यक्तितत्व को समझने के लिए एक प्रकार का आधार प्रस्तुत करता है।

पुस्तक के दूसरे खंड में राष्ट्रीये आंदोलन के संदर्भ में नेताजी के जीवन की प्रमुख घटनाओं का सर्वेक्षण है। उनका बाल्य-काल, शिक्षा, भारतीय राजनीति में प्रवेश, स्वराज दल की राजनीति, कारावास, कांग्रेस का अध्यक्ष-पद, भारत से पलायन,

आज़ाद हिंद फौज़ का संगठन और फिर पूर्णाहुति जैसी घटनाएं महाकाव्य की गरिमा से मंडित हैं। दूसरे खंड का यही प्रतिपाद्य है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस कर्मयोगी होने के साथ-साथ ज्ञानयोगी भी थे। वे भारतीय जीवन-मूल्यों के आधार पर भारतीय राजनीति, समाज, अर्थ-तंत्र और शिक्षा-व्यवस्था का पुनर्गठन करना चाहते थे। उनके बहुत से विचारों को- उदाहरण के लिए योजनाबद्ध आर्थिक विकास के विचार को- स्वतंत्र भारत की राष्ट्रीय नीति माना गया है। पुस्तक का तीसरा खंड विचार-प्रवाह इन्हीं प्रश्नों के समाधान का प्रयास करता है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी में जहां कुछ मतभेद थे, वहां अनेक समानताएं भी थीं। आज हमें मतभेदों की नहीं समानताओं को याद करने और उन पर ज़ोर देने की आवश्यकता है। चौथे खंड अनमोल विरासत में एक अध्याय महात्मा गांधी और सुभाष चन्द्र बोस के तुलनात्मक अध्ययन पर है। पुस्तक के अंतिम अध्याय मूल्यांकन में स्वतंत्रता-आंदोलन के प्रति नेताजी की देन का आकलन है।

पुस्तक में दो परिशिष्ट हैं। परिशिष्ट I में नेताजी के जीवन की मुख्य घटनाओं और तिथियों का निरूपण है। परिशिष्ट II में आज़ाद हिंद फौज़ के दो गीत- *कदम कदम बढ़ाए जा* और *भारत भाग् सुभागा* के पाठ हैं।

सुभाष चन्द्र बोस भारतीय स्वतंत्रता यज्ञ की उज्ज्वलतम शिखा और पवित्रतम पूर्णाहुति थे। उनके कार्यकलाप और विचार उनकी अपनी पीढ़ी के लिए तो प्रेरणा के अक्षय स्रोत थे ही, वे आज की पीढ़ी के लिए भी आलोक की शुभ किरण हैं और कल की पीढ़ी के लिए भी बलिदान और उत्सर्ग की अमर गाथा बनेंगे।

"हम डा० वाई० पी० आनन्द, निदेशक, राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय, नई दिल्ली के हृदय से आभारी हैं। हमने उनके पुस्तकालय का तो भरपूर उपयोग किया ही है, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जीवन और विचारों के अनेक पहलुओं पर उनसे चर्चा भी की है। महात्मा गांधी और सुभाषचन्द्र बोस के तुलनात्मक अध्ययन के बारे में उनकी अपनी एक दृष्टि है जिससे हम लाभान्वित हुए हैं।

विश्वप्रकाश गुप्त

मोहिनी गुप्त

अनुक्रम

खण्ड : एक

स्वतंत्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि

1

इतिहास की दृष्टि

इतिहास क्या है?

इतिहास अतीत का– विशेष कर किसी देश, जाति, विचार अथवा प्रवृत्ति के विकास का– अध्ययन है। इतिहास में भूतकाल की घटनाओं का वर्णन-मात्र नहीं होता। इतिहासकार की पैनी दृष्टि उन घटनाओं की पृष्ठभूमि, उनके स्वरूप और आयाम तथा फिर उनके परवर्ती प्रभाव का मूल्यांकन करने पर केंद्रित होती है। मानव के ज्ञान-विज्ञान तथा सफलताओं-असफलताओं को समझने में इतिहास एक झरोखे का काम करता है।

भारत में इतिहास लेखन की परम्परा

यह खेद का प्रसंग है कि भारत में इतिहास-लेखन की पुष्ट परम्परा उपलब्ध नहीं है। भारत के प्राचीन विचारकों, दृष्टाओं और लेखकों ने अपनी उपलब्धियों-अनुपलब्धियों के बारे में कुछ लिखना उचित नहीं समझा। उन्होंने अपने जीवन के मुख्य प्रसंगों अथवा जातीय जीवन की प्रमुख घटनाओं तक के बारे में कोई क्रमबद्ध विवरण नहीं छोड़े हैं। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि उनका ध्यान भौतिक तत्त्वों की ओर गया ही नहीं। वे प्रायः आध्यात्मिक साधना में ही लीन रहे।

प्राचीन भारतीयों की इतिहास के प्रति उदासीनता का अपवाद एक ही है और वह है ग्यारहवीं सदी के कश्मीरी विद्वान कल्हण कृत *राजतरंगिणी* ग्रंथ। पश्चिम में ऐसा नहीं रहा। वहां पिछले पच्चीस सौ वर्षों से इतिहास-लेखन की अविच्छिन्न तथा सुदृढ़ परम्परा के दर्शन होते हैं। इस क्रम में यूरोपीय देशों में इतिहास-लेखन और अध्ययन के प्रति अनेक विचारधाराओं, दृष्टिकोणों तथा संप्रदायों का विकास हुआ है।

आरंभिक इतिहास

आरंभिक इतिहास श्रुतियों के रूप में था। महापुरुषों के जीवन की घटनाएं पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परम्पराओं के रूप में कही सुनी जाती रही। इन कहानियों में समय-समय पर घट-जोड़ होता रहा। कल्पना और यथार्थ की विभाजक रेखा अत्यंत धूमिल थी। भारतीय वाङ्मय में महाभारत और पुराण इसी प्रकार के इतिहास हैं।

भारतीय समस्याओं का ऐतिहासिक संदर्भ

आधुनिक भारत की समस्याओं को समझने के लिए भारतीय इतिहास की जानकारी आवश्यक है। भारत के प्रमुख राजनीतिक नेताओं- राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महादेव गोविंद रानाडे, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल, वी० डी० सावरकर, अरविन्द घोष, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, जवाहरलाल नेहरू, मानवेन्द्र नाथ राय, बी० आर० अम्बेडकर और आचार्य नरेन्द्र देव आदि- ने भारतीय इतिहास पर भी विचार किया है और देश के ऐतिहासिक विकास के सदर्भ में भारत की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं को समझने का.प्रयास किया है। सुभाष चन्द्र बोस अपने समय के प्रमुख राजनीतिक नेता और विचारक थे। तीसरे दशक के बाद तो लोकप्रियता की दृष्टि से महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू के बाद उन्हीं का स्थान था। विद्वता, बलिदान, राजनीतिक अनुभव तथा वैदेशिक संपर्कों की दृष्टि से वे भारत में गांधी और नेहरू का विकल्प बन सकते थे। यह इतिहास का एक अनुत्तरित प्रश्न है कि यदि 1945 में विमान-दुर्घटना में उनकी आकस्मिक मृत्यु न हुई होती, तो भारतीय राजनीति क्या रुख लेती।

सुभाष बोस का इतिहास-दर्शन

सुभाष बोस ने भारतीय राजनीति को समझने के लिए इतिहास का सहारा लिया है। *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स* के खंड 2 के रूप में प्रकाशित पुस्तक *द इंडियन स्ट्रगल 1920-1942* में सुभाष बोस की इतिहास-दृष्टि का उन्मीलन हुआ है।

पुस्तक के आरंभ में 38 पन्नों की भूमिका है जिसके चार विभाग हैं : 1. भारतीय राजनीति की पृष्ठ भूमि, 2. भारत में ब्रिटिश शासन के मुख्य पड़ाव, 3. भारत में नई जागृति, और 4. संगठन दल तथा व्यक्ति।

सुभाष बोस ने इन चार शीर्षकों के अंतर्गत अपनी इतिहास-मीमांसा के मुख्य सूत्रों को उजागर किया है।

अंग्रेज इतिहासकारों की दृष्टि

सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार अंग्रेज इतिहासकारों ने अंग्रेजी शासन से पहले के

भारतीय इतिहास की प्रायः उपेक्षा की। इन इतिहासकारों ने पश्चिम के सामने भारत का इतिहास विकृत रूप में पेश किया। इन इतिहास-ग्रंथों के माध्यम से यूरोप के लोगों ने यही समझा कि भारत के राजे-नवाब तो सदा ही आपस में लड़ते-झगड़ते रहे हैं। भारत में शांति-स्थापना का श्रेय अंग्रेजों को प्राप्त है।

दो जरूरी बातें

भारतीय इतिहास को ठीक से समझने के लिए दो बातें समझना ज़रूरी है। इनमें से पहली बात यह है कि भारत का इतिहास सैकड़ों साल पुराना नहीं, हज़ारों साल पुराना है। इस संबंध में दूसरी स्मरण रखने योग्य बात यह है कि अपने समूचे इतिहास के दौरान अंग्रेजी शासन-काल में ही भारत के मन में यह बात बैठी कि वह विदेशियों के हाथों पराजित हुआ है। भारत ने अपनी लम्बी ऐतिहासिक यात्रा में उत्थान और पतन के अनेक दौर देखे हैं लेकिन अंग्रेजी शासन-काल में उसे पहली बार अपनी सांस्कृतिक और भौतिक अधोगति का गहरा अहसास हुआ है।

विविधता में एकता

भारत विविधताओं का देश है। यहां भाषा, भूगोल, सामाजिक रीति-रिवाजों, जलवायु तथा आर्थिक विकास से संबंधित अनेक विविधताएं मिलती हैं। लेकिन इन विविधताओं के बीच भी भारत में एकता के सूत्र पाए जाते हैं।[1] भूगोल की दृष्टि से भारत एक आत्म-केन्द्रित इकाई है। इसके उत्तर में हिमालय है। इसके पशिचम और दक्षिण में समुद्र है। भारत की जातीय विविधता कभी कोई समस्या नहीं रही है। यहां बाहर से जितनी भी जातियां आई, वे सब मुख्यधारा में घुलमिल गईं और इस मेल-जोल के फलस्वरूप भारत में एक समान संस्कृति और परम्परा का विकास हुआ। भारत की एकता को दृढ़ करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व हिन्दूधर्म है। भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम, सब स्थानों पर एक से धार्मिक विचार, एक सी संस्कृति और एक सी परम्परा के दर्शन होंगे। सभी हिन्दू भारत को अपनी मातृभूमि मानते हैं। भारत की पवित्र नदियां, पवित्र नगर और तीर्थ-स्थान समूचे भारत में बिखरे पड़े हैं। यदि कोई धर्म परायण हिन्दू तीर्थयात्रा पर निकले तो उसे ध्रुव दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर और ध्रुव उत्तर में बद्रीनाथ जाना होगा। भारत के महान् आचार्य धर्म-प्रचार के लिए समूचे देश की पैदल यात्रा पर निकलते थे। आदि शंकराचार्य (आठवीं शताब्दी) ने देश के चार कोनों में अपने आश्रमों की स्थापना की थी। सारे देश में समान धर्मशास्त्रों का अध्ययन होता है। *रामायण* और *महाभारत* जैसे महाकाव्य सारे देश में लोकप्रिय हैं। इनके सभी प्रांतीय भाषाओं में अनुवाद हुए हैं।[2] भारत में मुसलमानों के आने के बाद समन्वय की एक नई लहर ने जन्म लिया। हिन्दुओं और मुसलमानों के मेल-मिलाप के फलस्वरूप एक नई कला और नई जीवन-शैली का

विकास हुआ। यह कला और जीवन-शैली पुरानी कला और जीवन-शैली से भिन्न होती हुई भी पूरी तरह भारतीय थी। वास्तु, चित्रकला, संगीत, साहित्य सभी क्षेत्रों में इस समन्वय का प्रभाव देखा जा सकता है। मुस्लिम शासकों ने लोगों के दैनिक जीवन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। गांव पंचायतें पहले जैसी चलती रहीं।[3]

अंग्रेज़ी शासकों की पार्थक्य-नीति

अंग्रेज़ी शासन के साथ भारत में एक नए धर्म, एक नयी सभ्यता और एक नयी जीवन-शैली का प्रादुर्भाव हुआ। अंग्रेज़ी शासकों ने भारतीय लोगों के साथ मिलना-जुलना पसंद नहीं किया। उन्होंने समूचे देश पर अपनी प्रभुता स्थापित करने का प्रयास किया। भारत के पूर्वकालीन आक्रमणकारी भारत में ही आकर बस गए थे और उन्होंने भारत को ही अपना घर बना लिया था। अंग्रेजों ने यह नहीं किया। उन्होंने भारत को अपना घर नहीं बनाया। वे अपने आपको मुसाफिर समझते थे। वे कुछ समय के लिए भारत आते थे। फिर स्वदेश वापस लौट जाते थे। भारत उनके लिए कच्चे माल का खजाना और तैयार माल की मंडी था।[4] उन्होंने लोगों के स्थानीय मामलों में हस्तक्षेप किया और उनके कुटीर उद्योग-धन्धों को नष्ट कर दिया। इसके परिणामस्वरूप भारत के लोगों को यह समझ आने लगा कि अंग्रेज तो पराए हैं। उनकी असली मंशा देश को राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ देना है। इसलिए, भारतीयों के मन में अंग्रेजी शासन के प्रति घृणा पैदा हुई और उन्होंने विद्रोह का रास्ता पकड़ा।[5]

प्राचीन भारत का राजनीतिक चिंतन और संस्थाएं

आधुनिक भारत के राजनीतिक आंदोलन को समझने के लिए प्राचीन भारत के राजनीतिक चिंतन और संस्थाओं पर दृष्टि डालना उपयोगी होगा। भारत की सभ्यता कम से कम 5,000 साल पुरानी है। उस समय से अब तक इस सभ्यता और संस्कृति में एक निरंतरता बनी हुई है। यह निरंतरता भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है और इससे भारतीय जनता की शक्ति का पता चलता है।[6]

सिन्धु घाटी की स्थापना

भारतीय सभ्यता का सबसे पहला पड़ाव उत्तर-पूर्वी भारत में मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की सभ्यताएं हैं। इसे सिन्धु घाटी की सभ्यता भी कहा जाता है।

1920 से पहले तक वैदिक सभ्यता को ही भारत की प्राचीनतम सभ्यता माना जाता था। सिन्धु घाटी की सभ्यता का पता 1920 ई० में चला। सबसे पहले हड़प्पा में खुदाई हुई। यह स्थान पश्चिमी पाकिस्तान (पाकिस्तान) के मांटगूमरी जिले में लाहौर से लगभग 100 मील दूर दक्षिण-पश्चिम में रावी नदी के तट पर है। 1922

में राखालदास बेनर्जी के नेतृत्व में सिन्ध प्रदेश (पाकिस्तान) के लरकाना जिले में सिन्धु नदी के तट पर खुदाई का काम किया गया जिसके फलस्वरूप मोहनजोदड़ो के भव्य नगर के अवशेष उपलब्ध हुए। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में लगभग 400 मील की दूरी है। किंतु दोनों स्थानों की खुदाई में प्राप्त अवशेषों में आश्चर्यजनक समानता मिलती है। तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर सर जान मार्शल ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दोनों स्थानों की सभ्यता एक ही थी। चूंकि इस सभ्यता के अधिकांश भग्नावशेष सिन्धु तथा उसकी सहायक नदियों की घाटियों में उपलब्ध हुए है, अतः इसे सिन्धु घाटी की सभ्यता कहा गया है। जान मार्शल ने इस सभ्यता की पूरी अवधि 500 वर्ष मानी है और इसका काल 3250 ई० पू० से 2750 ई० पू० नियत किया है। सिन्धु सभ्यता की मुख्य विशेषताएं हैं : नगर-योजना, जल-निकास व्यवस्था, भवन-निर्माण, विशिष्ट भवन, विशाल स्नानागार, दुकानें और गोदाम, मिट्टी के बर्तन, मिट्टी की मुद्राएं, ताबीज, मिट्टी की मूर्तियां, पाषाण-मूर्तियां, धातु-कृतियां, परम पुरुष की उपासना, परम नारी की उपासना, प्रजनन-शक्ति की पूजा, वृक्ष-पूजा, पशु-पूजा, प्रतीक-पूजा, कृषि, पशु-पालन, घरेलू उद्योग-धंधे, बाह्य जगत से संबंध। कुल मिलाकर यह सभ्यता उन्नत सभ्यता थी और इसके फलस्वरूप प्राचीन भारत के इतिहास में एक नया और गौरवपूर्ण अध्याय जुड़ गया है।[7]

वैदिक सभ्यता

सिन्धु घाटी की सभ्यता के बाद वैदिक सभ्यता का दौर आरम्भ होता है। वैदिक सभ्यता के दो युग माने गए हैं- ऋग्वैदिक काल (लगभग 2000-1000 ई० पू०) और उत्तर वैदिक काल (लगभग 1000-500 ई० पू०)। वेदों का रचना-काल 1500-200 ई० पू० समझा जाता है। 'वेद' शब्द का अर्थ ज्ञान है। ये अपौरुषेय माने गए है। इन्हें श्रुति कहा जाता है। ये मौखिक परम्परा पर आधारित थे। वेद चार हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद। ऋग्वेद सबसे प्राचीन वेद है। इसमें ऋषियों की आध्यात्मिक और ईश्वरीय अनुभूतियों का संकलन है। ऋग्वेद में कुल 10 मंडल और 1028 सूक्त अथवा श्लोक हैं।

ऋग्वेद में मानव-चिंतन का आदि रूप, उसके दार्शनिक, नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक जीवन की झांकी मिलती है। वर्ण-व्यवस्था,[8] आश्रम-व्यवस्था[9], पुरुषार्थ-चतुष्टय[10] , `आत्मा की अमरता[11] , पुनर्जन्म[12], यज्ञ[13], एकेश्वरवाद,[14] जैसे भारतीय जीवन के बुनियादी तत्वों का स्रोत ऋग्वेद ही है।

वैदिक साहित्य में गणतन्त्रों का उल्लेख मिलता है। उन दिनों 'ग्राम' सबसे छोटा और 'जन' सबसे बड़ा राजनीतिक संगठन था। महाभारत में अनेक गणराज्यों का उल्लेख है। प्राचीन भारत में लोकप्रशासन के लिए 'सभा', 'समिति' आदि संस्थाओं की चर्चा की गई है।

गणराज्यों की परम्परा

वैदिक सभ्यता के बाद उत्तर भारत में अनेक राज्यों की स्थापना हुई। इन राज्यों में आपस में लड़ाइयां होती रहती थीं। जो विजयी होता, वह 'मंडलेश्वर' अथवा चक्रवर्ती कहलाता था और 'अश्वमेघ' यज्ञ करता था। महाकाव्यों के काल में केन्द्रीकरण की यह प्रवृत्ति बढ़ती गई। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में इस प्रवृत्ति ने निश्चित रूप ग्रहण किया।

जैन और बौद्ध धर्म

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में भारत में दो नए धर्मों– जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म का उदय हुआ। जैन साहित्य तथा परम्परा के अनुसार जैन धर्म वैदिक धर्म से भी पुराना है। जैन धर्म के संस्थापक महावीर स्वामी से पहले 23 तीर्थकर अथवा जैन महात्मा हुए। पहले तीर्थकर ऋषभ देव थे। उनकी ऐतिहासिकता में संदेह है। तेईसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ अवश्य ऐतिहासिक पात्र हैं। महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें अथवा अंतिम तीर्थकर थे।

जैन धर्म निवृत्ति मार्गी धर्म है। उसके अनुसार सारा संसार दुखमय है। वास्तविक सुख सांसारिक सुखों को भोगने में नहीं, प्रत्युत उनको त्यागने में है। जैन धर्म के तीन मुख्य सिद्धांत हैं– सही विश्वास, सही विचार और सही आचरण। जैन धर्म के पांच मुख्य व्रत है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य।

बौद्ध धर्म की स्थापना गौतम बुद्ध ने की। वे उत्तर-पूर्वी सीमा पर हिमालय की तराई में बसे शाक्य गणराज्य के राजकुमार थे। उन्होंने 30 वर्ष की आयु में राजसी वैभव को त्याग कर ज्ञान की खोज की। उन्होंने चार आर्य सत्यों की घोषणा की :

1. संसार में दुख है।
2. हर दुख का कोई न कोई कारण है। मुख्य कारण है तृष्णा।
3. दुख के कारण से छुटकारा संभव है।
4. दुखों पर विजय पाने का मार्ग है। इस मार्ग के आठ-अंग हैं :

1. **सम्यक् दृष्टि :** सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, सदाचार-दुराचार में भेद करना ही सही दृष्टि है।
2. **सम्यक् संकल्प :** कामना और हिंसा से मुक्त आत्म-कल्याण का पक्का निश्चय।
3. **सम्यक् वाणी :** सत्य, विनम्र और मृदु वचन तथा वाणी पर संयम।
4. **सम्यक् कर्मान्त :** सब कर्मों में पवित्रता रखना।
5. **सम्यक् आजीविका :** न्याय-पूर्ण मार्ग से आजीविका चलाना।
6. **सम्यक् प्रयत्न :** सत्कर्मों के लिए निरंतर उद्योग करते रहना।

7. सम्यक् स्मृति : लोभ, मोह, अदि चित्त के संतापों से बचना तथा श्रेष्ठ शिक्षाओं को याद रखना।

8. सम्यक् समाधि : राग तथा द्वेष से रहित होकर चित्त की एकाग्रता को बनाए रखना।

गौतम बुद्ध ने अतियों से बचकर बीच के रास्ते पर ज़ोर दिया। उन्होंने नैतिक आचरण के दस नियम (शील) निर्धारित किए। वे शील थे :

1. अहिंसा व्रत का पालन करना।
2. सदा सत्य बोलना।
3. अस्तेय अर्थात् चोरी न करना।
4. अपरिग्रह अर्थात् वस्तुओं का संग्रह न करना।
5. ब्रह्मचर्य अर्थात् इन्द्रियों पर संयम रखना।
6. नृत्य-गान का त्याग।
7. सुगंधित पदार्थों का त्याग
8. असमय में भोजन का त्याग।
9. कोमल शय्या का त्याग
10. कामिनी-कंचन का त्याग।

गौतम बुद्ध ने वेदों की प्रामाणिकता का खंडन किया, ईश्वर और आत्मा के अस्तित्व के बारे मे कुछ कहने से इन्कार किया, कर्मवाद का प्रतिपादन किया, कार्य-करण संबंध की व्याख्या की, आत्मावलम्बन का पाठ पढ़ाया और संसार को परिवर्तनशील माना। बुद्ध ने जाति-व्यवस्था का विरोध किया और भिक्षु संघों का संगठन लोकतंत्र के आधार पर किया।

मौर्य वंश

मौर्य वश भारत का पहला ऐतिहासिक राजवंश है जिसके वारे में प्रचुर ऐतिहासिक साक्ष्य मिलता है। मौर्यकाल में समूचा भारत एक राजनीतिक सत्ता के अधीन आ गया। सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य ने यूनानी आक्रमणों को विफल किया और अपने प्रधानमंत्री कौटिल्य की सहायता से सुदृढ़ राजनीतिक व्यवस्था की नींव रखी। कौटिल्यकृत *अर्थशास्त्र* राजनीति-विज्ञान का असाधारण ग्रंथ है और उसकी तुलना अरस्तु के *पालिटिक्स* ग्रंथ से की जा सकती है। मौर्य शासन के बारे में यूनानी लेखकों ने भी बहुत कुछ लिखा है।

मौर्य वंश के सम्राटों- सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य तथा सम्राट् अशोक ने देश में राजनीतिक एकता स्थापित की। मालव, क्षुद्रक, लिच्छवी तथा कुछ अन्य कबीलों में

गणतंत्रात्मक शासन-प्रणाली प्रचलित थी। डॉ० के० पी० जायसवाल ने अपनी पुस्तक *हिन्दू पालिटी* में इन गणराज्यों की शासन-प्रणाली का विवरण दिया है।

अशोक

मौर्य वंश का सबसे प्रतापी शासक सम्राट अशोक था। उसका साम्राज्य प्राय: समूचे देश में फैला हुआ था। अफगानिस्तान, बलूचिस्तान और फारस का कुछ हिस्सा भी उसके साम्राज्य का अंग था। उसका शासन कई विभागों में बंटा हुआ था। जो कई मंत्रियों की देख-रेख में काम करते थे। आधुनिक पटना के निकट स्थित पाटलीपुत्र उसकी राजधानी थी।

अशोक भारतीय इतिहास की ही नहीं विश्व इतिहास की महान विभूति हैं। उन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद भूमंडल के विभिन्न देशों में बौद्ध धर्म की शांति और अहिंसा का प्रचार करने के लिए धर्म-प्रचारक, यहां तक कि अपने पुत्र और पुत्री तक भेजे। विश्व मानवता को अशोक की सबसे बड़ी देन धार्मिक सहिष्णुता की देन है। उन्होंने अपने राज्य में शिला-लेखों और स्तंभ लेखों के रूप में धार्मिक सहिष्णुता की शिक्षाएं उत्कीर्ण करा दीं। इतिहास में अशोक ही ऐसे शासक है, जिन्होंने युद्ध में विजय पाने के बाद युद्ध का त्याग कर दिया।

गुप्त वंश

मौर्य वंश के पतन के पश्चात् कुछ समय तक देश में अराजकता की स्थिति रही। तीसरी सदी ईस्वी से छठी सदी ईस्वी के बीच भारत में गुप्त वंश का अभ्युदय हुआ। इस वंश का सबसे प्रतापी शासक समुद्रगुप्त था। गुप्तवंश भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग कहलाता है। इस काल में कला, साहित्य और विज्ञान की चतुर्मुखी उन्नति हुई। इस उन्नति का श्रेय ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान को था। इस काल में भारत के एशिया तथा यूरोप के अनेक देशों से सांस्कृतिक और वाणिज्यिक संबंध स्थापित हुए। पांचवी सदी के बाद गुप्त वंश का सितारा डूब गया। लेकिन 640 ई० में सम्राट हर्षवर्धन ने भारत में फिर से राजनीतिक एकता स्थापित की। 647 ई० में हर्ष की मृत्यु हो गई और इसके साथ ही उसके राजवंश तथा राज्य दोनों नष्ट हो गए। परिणाम था– संपूर्ण उत्तरी भारत में अराजकता की स्थिति।

मुस्लिम आक्रमण

अराजकता की इस स्थिति में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हुए। 1192 ई० में मोहम्मद गौरी ने तरायन (पंजाब) के युद्ध में हिंदू सम्राट पृथ्वीराज को पराजित कर भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना की। मुस्लिम राजवंशों में गुलाम वंश (1206-1290), खिलजी वंश (1290-1320), तुगलक वंश (1320-1414) और लोदी वंश के विभिन्न शासकों ने भारत पर शासन किया।

मुगल वंश

1526 में बाबर ने दिल्ली के सुलतान इब्राहिम लोदी तथा मेवाड़ के महाराणा संग्राम सिंह को पराजित कर भारत में मुगल वंश की नीव डाली। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में मुगल सम्राटों ने देश में राजनीतिक एकता स्थापित की और प्रशासन, कला तथा साहित्य के क्षेत्रों में देश को उन्नति के शिखर तक पहुंचाया। अकबर मुगल राजवंश का सबसे महान सम्राट था।[15] अकबर की सबसे बड़ी देन यह है कि उसने हिन्दुओं के प्रति धार्मिक सहिष्णुता की नीति को अपनाया और हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच सांस्कृतिक समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। अकबर की राज्य-व्यवस्था हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों के हार्दिक सहयोग पर आधारित थी।[16] मुगलों का अंतिम शक्तिशाली सम्राट् औरंगजेब था। उसकी हिन्दु विरोधी नीति ने मुगल साम्राज्य की जड़ें कमजोर कर दी। उसकी 1707 में मृत्यु हुई तथा उसके बाद मुगल साम्राज्य का क्रमशः पतन होता गया।[17]

स्थानीय शासन

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि यद्यपि देश में राजवंश बदलते रहे, लेकिन इसका देश के स्थानीय शासन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ब्रिटिश इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास के इस पहलू की उपेक्षा की है। देश के विभिन्न उद्योग-धंधों तथा जातियों की अपनी पंचायतें थीं जो गांवों का प्रशासन करने के साथ-साथ जातियो तथा उद्योग-धंधों के बीच अनुशासन बनाए रखती थीं। यद्यपि मुस्लिम शासक पूरी तरह स्वेच्छाचारी और निरंकुश थे लेकिन उन्होने लोगों के स्थानीय जीवन तथा रीति-रिवाजों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया तथा लोग धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक मामलों में पूरी स्वतंत्रता का उपभोग करते रहे।

मराठा शक्ति का उत्थान और पतन

जिस समय मुगल सत्ता का विघटन हुआ भारत में दो शक्तियां ऐसी थीं जो उसका स्थान ग्रहण कर सकती थीं। इनमें से पहली शक्ति मराठों की थी। मराठा राज की नींव शिवाजी (1627-80) ने डाली थी। उनकी मृत्यु के बाद पेशवाओं ने मराठा राज को बढ़ाया। 1761 में अफगान आक्रमणकारी नादिरशाह ने पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों को पराजित कर उनका विस्तार रोक दिया। 1818 में अंग्रेजों ने मराठा शक्ति को नष्ट कर दिया और प्रायः सभी मराठे क्षेत्र तथा सरदार ईस्ट इंडिया कंपनी की अधीनता में आ गए।[18]

सिख शक्ति

सिखों की शक्ति को महाराजा रणजीतसिंह (1780-1839) ने मज़बूत किया। उन्होने अपने जीवन में एक सुदृढ़ सेना तथा कुशल प्रशासन की नींव डाली। लेकिन

उनकी मृत्यु के बाद उनका कोई उत्तराधिकारी ऐसा नहीं था जो उनकी जिम्मेदारियों को संभाल पाता। फल यह हुआ कि अंग्रेजों और सिखों के बीच लड़ाई हुई जिसमें सिखों को पराजय का मुंह देखना पड़ा।[19]

यूरोपीय शक्तियों का द्वंद्व

यह भारत का दुर्भाग्य था कि जिस समय वह राजनीतिक अराजकता के दौर से गुजर रहा था और अपनी एक नई सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था बनाने में लगा हुआ था, वह यूरोपीय शक्तियों के लिए खेल का मैदान बन गया। अंग्रेज़, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डच आए भारत में व्यापार करने के लिए थे लेकिन यहां की राजनीतिक अस्थिरता ने इन शक्तियों के मन में लोभ जगा दिया कि यहां राज्य स्थापित किया जाए और देश की दौलत को लूटा जाए। भारत के राजे-रजवाड़े आपस में लड़ते रहते थे। यूरोपीय शक्तियों ने उनके आपसी संघर्षो से लाभ उठाया और उन्हें आपस में लड़ा कर अपने स्वार्थ की सिद्धि की। भारत में आने वाली यूरोपीय शक्तियों में प्रमुख शक्तियां दो ही थीं- अंग्रेज़ और फ्रांसीसी। इन दोनों शक्तियों की टक्कर में अंतिम विजय अंग्रेजों की हुई और उन्होंने धीरे-धीरे समूचे भारत पर अधिकार स्थापित कर लिया।[20]

निष्कर्ष

सुभाष चन्द्र बोस ने भारतीय इतिहास के अनुशीलन के निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं :

1. भारतीय इतिहास में उत्थान और पतन का क्रम निरंतर जारी रहा है। उत्थान के बाद पतन और पतन के बाद उत्थान- यह भारतीय इतिहास का क्रम रहा है।
2. भारत का जब कभी पतन हुआ, तब इसका कारण था भारत की अपनी आंतरिक दुर्बलताएं और बौद्धिक थकान।
3. भारत का जब कभी उत्कर्ष हुआ है, तब उसके पीछे नए विचारों तथा नए खून का प्रभाव रहा है।
4. भारत में नए युग का श्रीगणेश ऐसे लोगों ने किया है जिनकी बौद्धिक तथा सैनिक शक्ति बढ़ी-चढ़ी थी।
5. भारत में समय-समय पर जो भी विदेशी आए, वे सब यहां की मिट्टी में घुल-मिल गए। इस प्रवृत्ति के एक ही अपवाद हैं- अंग्रेज़।
6. केन्द्रीय शासन के परिवर्तनों के बावजूद लोग स्थानीय मामलों में स्वतंत्रता का उपभोग करते रहे हैं।[21]

सारांश

इतिहास अतीत का, विशेषकर किसी देश, जाति, विचार अथवा प्रवृत्ति के विकास का, अध्ययन है। भारत में इतिहास-लेखन की पुष्ट परम्परा का अभाव रहा है। भारत के प्रायः सभी प्रमुख राजनीतिक नेताओं ने भारतीय इतिहास की अपने-अपने ढंग से व्याख्या की है। सुभाष चन्द्र बोस ने भी भारतीय इतिहास का विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

सुभाष चन्द्र बोस के अनुसार अंग्रेज़ इतिहासकारों ने अंग्रेजी शासन के पहले के भारतीय इतिहास की प्रायः उपेक्षा की है।

सुभाष चन्द्र बोस के मत से भारतीय इतिहास को समझने के लिए दो बातें जरूरी हैं। इनमें से पहली बात यह है कि भारत का इतिहास कम से कम पांच हजार साल पुराना है। दूसरी बात यह है कि अपने इतिहास के दौरान अंग्रेज़ी शासन-काल में ही भारतीयों के मन में यह बात बैठी कि वह विदेशियों के हाथों पराजित हुआ है।

भारत में भाषा, भूगोल, सामाजिक रीति-रिवाजों, जलवायु तथा आर्थिक विकास से संबंधिक अनेक विविधताएं मिलती हैं, लेकिन इन विविधताओं के बीच भी भारत में सांस्कृतिक एकता और आध्यात्मिक एकता के सूत्र पाए जाते हैं।

भारत में समय-समय पर जो भी जातियां बाहर से आई वे यहां घुल-मिल गई और उनका पृथक् अस्तित्व समाप्त हो गया। अंग्रेज़ पहले आक्रमणकारी है जो भारत के लोगों में पूरी तरह नहीं खप सके। उनके लिए भारत कच्चे माल का स्रोत तथा तैयार माल का बाजार बना रहा।

भारत में मुसलमानों के आने के बाद देश में समन्वय की एक नई लहर पैदा हुई। जिसने एक नई जीवन-शैली को जन्म दिया। मुसलमान शासकों ने लोगों के दैनिक जीवन में कभी कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

भारतीय इतिहास में सभ्यता और संस्कृति की एक निरंतरता बनी हुई है और यह उसकी शक्ति का एक अक्षय स्रोत है।

अंग्रेज़ी शासन से पहले

भारत की इतिहास-यात्रा के मुख्य अवस्थान हैं- सिन्धु घाटी की सभ्यता, वैदिक सभ्यता, गणतंत्र-काल, जैन और बौद्ध धर्म, मौर्य वंश, गुप्त वंश, सल्तनत-काल मुगल शासन, मराठा शक्ति का उत्थान और पतन, सिख शक्ति का उत्थान और पतन, यूरोपीय शक्तियों का द्वंद्व तथा भारत पर अंग्रेजों की विजय।

सुभाष बोस ने भारतीय इतिहास के अनुशीलन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं :

1. भारतीय इतिहास में उत्थान और पतन का क्रम निरंतर चलता रहा है।

2. भारत के पतन का कारण रहा है आंतरिक दुर्बलताएं।
3. भारत में समय-समय पर नए विचार और नई जातियां आई हैं। उन्होंने भारत के अभ्युदय में योग दिया है।
4. भारत की पराजय का एक मुख्य कारण उसकी सैनिक शक्ति की कमज़ोरी रहा है।
5. भारत में समय-समय पर जो विदेशी आए, वे यहां के जनसमाज में लीन हो गए। अंग्रेज़ इस प्रवृत्ति के अपवाद रहे हैं।
6. भारत में केंद्रीय शासन के परिवर्तनों के बावजूद लोग स्थानीय स्वशासन का उपभोग करते रहे हैं।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. "European writers as a rule have been more conscious of the diversity than of the unity of India... India beyond all doubt possesses a deep underlying fundamental unity, far more profound than that produced either by geographical isolation or by political suzerainty. That unity transcends the innumerable diversities of blood, colour, language, dress, manners and sect." Vincent A. Smith, *The Oxford History of India,* Introduction, p. 10.
2. प्रो० राधाकुमुद मुकर्जी ने अपनी पुस्तक *The Fundamental Unity of India* (लोगमैन्स, 1914) में इस तरह के कई अन्य तथ्य और तर्क प्रस्तुत किए है।
3. "With the advent of the Mohammedans, a new synthesis was gradually worked out. Though they did not accept the religion of the Hindus, they made India their home and shared in the common social life of the people– their joys and their sorrows. Through mutual cooperation, a new art and a new culture was evolved which was different from the old but which nevertheless was distinctly Indian. In architecture, painting, music– new creations were made which represented the happy blending of the two streams of culture. Moreover, the administration of the Mohammedan rulers left untouched the daily life of the people and did not interfere with local self government based on the old system of village communities." Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Volume 2, p.3.
4. मध्ययुगीन धर्म समन्वय के सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय कृतियां हैं: Dr. Tarachand, *Influence of Islam on Indian Culture;* Humayun Kabir, *Our Heritage*; S.A.A . Rizvi, *Muslim Revivalist Movements in In-*

dia in the Sixteenth and Seventeenth Centuries (Agra, 1965) तथा *A History of Sufism in India,* 2 Vols. (Delhi, 1983), Aziz Ahmed, *Studies in Islamic Culture in the Indian Environment* (Oxford,1964).

5. "With British rule, however, there came a new religion, a new culture, and a new civilization which did not want to blend with the old but desired to dominate the country completely. The British people, unlike the invaders of the old, did not make India their home. They regarded themselves as birds of passage and looked upon India as the sources of raw materials and as the market for the finished goods. Moreover, they endeavoured to initiate the autocracy of the Mohammaden rulers without following their wise policy of complete non-interference in local affairs. The result of this was that the Indian people began to feel for the first time in their history that they were being dominated culturally, politically and economically by a people who were quite alien to them and with whom they had nothing whatsover in common. Hence, the magnitude of the revolt against the British domination of India." Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works,* Volume 2, p.3.
6. "The civilization of India dates back to 3000 B.C., if not earlier, and since then, there has been on the whole a remakable continuity of culture and civilization. This undisturbed continuity is the most significant feature of Indian history and it incidentally explains the vitality of the people and their culture and civilization." Subhash Chandra, *Netaji Collected Works* Vol.2, p.4.
7. "The latest archaeological excavations at Mohenjodaro and Harappa in north-western India prove unmistakably that India had reached a high level of civilization as early as 3000 B.C., if not earlier."*Ibid.,* p.4.
8. हिंदू समाज का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन चार जातियों मे धर्म शास्त्रानुसार विभाजन। कहा जाता है कि ये चारो वर्ण परम पुरुष के शरीर से उत्पन्न हुए-मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, पेट से वैश्य और पैरों से शूद्र। आरम्भ मे यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी। बाद मे इसे जन्म पर आधारित मानने लगे। वर्ण-व्यवस्था ने हिंदू समाज को अपरिमित हानि पहुंचाई है।
9. हिन्दू धर्मशास्त्रों ने जीवन की चार अवस्थाएं माना है। जिन्हें आश्रम कहा जाता है। ये चार हैं- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। ब्रह्मचर्य की अवस्था में विद्यार्थी 25 वर्ष की अवस्था तक गुरु के पास रह कर विद्या का अध्ययन करता था। पच्चीसवें वर्ष से पचासवे वर्ष तक का समय गृहस्थ आश्रम है। इसमे व्यक्ति

विवाह करता था, बच्चे पैदा करता था, परिवार का भरण-पोषण करता था और अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाता था। पचासवें वर्ष से पच्चहत्तरवें वर्ष तक का काल वानप्रस्थ आश्रम का है। इसमें व्यक्ति गृहस्थी का त्याग कर वन में वास करता था और धीरे-धीरे अपने मन को संसार से दूर हटाता था। सन्यास आश्रम पच्चहत्तरवे वर्ष के बाद आरम्भ होकर मृत्युपर्यंत तक चलता है। इसमें व्यक्ति संसार से पूरी तरह विमुख होकर अपना सारा समय ईश्वर-चिंतन में लगाता है।

10. पुरुषार्थ का अर्थ है मनुष्य जीवन का प्रधान उद्देश्य। भारतीय धर्मशास्त्रों ने मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ या प्रधान लक्ष्य माने हैं– धर्म, अर्थ काम और मोक्ष। धर्म का अर्थ है उचित कार्य। अर्थ धन और ऐश्वर्य का वाचक है। काम इन्द्रियों का सुखभोग है। मोक्ष जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा है।

11. हिंदू दर्शन मे शरीर तथा आत्मा को अलग-अलग माना गया है। शरीर भौतिक तत्त्व है जिसका नाश निश्चित है। आत्मा शरीर से परे का तत्त्व है। वह दिखाई नही देता। उसका जन्म और मरण नहीं होता। उपनिषदों और गीता में आत्म-तत्त्व की गहन व्याख्या की गई है।

12. हिन्दू दर्शन के अनुसार जीव मोक्ष प्राप्त होने तक जन्म और मरण के बंधन में लिप्त रहता है।

13. यज्ञ हवन पूजन युक्त एक वैदिक अनुष्ठान है। यह लोकहित के विचार से की गई विशेष पूजा है।

14. वेदों मे विभिन्न प्रकार के देवी-देवताओं की कल्पना होने पर भी एकेश्वरवाद अर्थात् एक परम सत्ता का भाव उपलब्ध होता है। वेदों का एक प्रमुख सिद्धांत है कि सत्य एक है पर विद्वान लोग इसका विभिन्न प्रकार से आख्यान करते हैं।

15. अकबर के संबंध मे उसके मंत्री अबुल फजल के दो ग्रंथ *अकबरनामा* और *आइना-ए-अकबरी* सबसे प्रामाणिक स्रोत हैं।

अकबरनामा ग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद बेवरिज ने किया है जो तीन खंडों में छपा है। आइना-ए-*अकबरी* का अंग्रेजी अनुवाद भी बेवरिज ने किया है। अकबर के बारे में कुछ अन्य महत्वपूर्ण रचनाएं हैं : Doughlas E. Streusand, *The Formation of the Mughal Empire* (Delhi, 1989); K.A. Nizami, *Akbar and Religion* (Delhi, 1989).

16. अकबर एक दूरदर्शी सम्राट था। उसने राजपूतों का सहयोग लिया और उन्हें अपने शासन में ऊंचे से ऊंचे पद दिए। अकबर ने कई राजपत नरेशों से वैवाहिक संबंध स्थापित किए और विभिन्न धर्मों की अच्छी बातों को मिलाकर दीन-ए-इलाही नामक एक नए धर्म का प्रवर्तन किया।

17. औरंगजेब के शासनकाल का सबसे प्रामाणिक विवरण सर जदुनाथ सरकार का

है– *History of Aurangjeb* (Calcutta, 5 Vols., 1912-1924)

18. मराठा इतिहास के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण ग्रथ हैं : James Grant Duff, *History of the Mahrattas* (New Delhi, 1971), G.S. Sardesai , *New History of the Marathas* (Bombay 3 Vols., 1957; Jadunath Sarkar, *Shivaji and His Times* (Bombay, reprint edition, 1973).

19. सिखो के ऊपर विपुल साहित्य उपलब्ध है। कुछ उल्लेखनीय पुस्तकें हैं :

J. S. Grewal, *The Sikhs in the Punjab;* A. C. Bannerji, *Anglo-Sikh Relations;* Evans Bell, *Annexation of the Punjab,* J. D. Cunningham, *History of the Sikhs*, M. Latif, *History of the Punjab*, Jagmohan Mahajan, *History of the Punjab*

20. फ्रांसीसियों और अंग्रेजों के संघर्ष के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं : H. H. Dodwell, *Duplux and Clive;* Lawrence, *Narrative of Anglo-French Conflits,* G. B. Mallson, *History of the French in India,* P. Spear, *Oxford History of Modern India*, 1740-1975, and Thomson and Garatt, *Rise and Fufilment of British Rule in India.*

21. Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Volume 2, p.10.

2

ब्रिटिश शासन के मुख्य पड़ाव

अंग्रेजों की भारत-विजय का स्वरूप

भारत एक विशाल, प्राचीन और वैविध्यपूर्ण देश है जिसने अपने पांच हजार साल की ऐतिहासिक यात्रा में बारी-बारी से उत्थान और पतन के अनेक दृश्य देखे हैं। भारत में अनेक साम्राज्य बने और बिगड़े, अनेक जातियां संसार के विभिन्न भागों से जीविका की खोज में यहां आईं और अपनी अस्मिता को भूल कर लहरों की भांति भारत महासमुद्र में लीन हो गई।

मौर्यवंश, गुप्त वंश, तुगलक वंश और मुगल वंश ने देश में राजनीतिक एकता स्थापित की। सोलहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक भारत पर मुगलों का शासन रहा और मुगल साम्राज्य अपने समय का सबसे शक्तिशाली साम्राज्य था।[1]

भारत पर अंग्रेजों की विजय इतिहास का एक आश्चर्य ही है। अंग्रेज भारत में व्यापारी बन कर आए थे लेकिन बन बैठे यहां के शासक। कुछ लोगों का कहना है कि यह परिवर्तन अचानक ही हो गया और अंग्रेजों ने देश में अपने साम्राज्य की स्थापना और विस्तार करते समय किसी पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार काम नहीं किया। इस तरह की धारणा गलत है। सत्रहवीं शताब्दी के अंत में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रधान सर जोशुआ चाइल्ड ने भारत में सदैव के लिए एक विशाल और सुदृढ़ अंग्रेजी राज की स्थापना करने का लक्ष्य अपने सामने रखा था। सर जोशुआ के उत्तराधिकारी इस नीति से सहमत नहीं थे और उन्होंने साम्राज्य-स्थापन की नहीं बल्कि वाणिज्य-विस्तार की नीति का ही पालन किया। 1746 ई० में जेम्स मिल्स नामक व्यक्ति ने बंगाल-विजय की एक योजना तैयार की थी।[2] लेकिन ब्रिटिश अधिकारियों ने इस योजना के प्रति उदासीनता प्रकट की। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भारत में अराजकता की सी स्थिति उत्पन्न हो गई थी और ईस्ट इंडिया कंपनी

के भारत स्थित अधिकारियों ने इस स्थिति से लाभ उठा कर भारत में धीरे-धीरे अंग्रेजी राज की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की।

ईस्ट इंडिया कपंनी

भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना की कहानी 1600 से आरंभ होती है। इस साल इंगलैड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने इंगलैंड के कुछ व्यापारियों को सुदूर पूर्व तथा भारत में व्यापार करने की अनुमति दी। कंपनी ने पहले 150 सालों में अपनी गतिविधियां व्यापार तक ही सीमित रखीं। कंपनी ने 1611 में मछलीपट्टम में और 1613 में सूरत में व्यापारिक केंद्र स्थापित किए। 1615 में कंपनी ने जेम्स प्रथम तथा टामस रो को मुगल सम्राट जहांगीर के दरबार में दूत बना कर भेजा। जहांगीर ने कंपनी को आगरा, बुरहानपुर और पटना में व्यापारिक केंद्र स्थापित करने की अनुमति दे दी। इन केंद्रों में कंपनी के कर्मचारी यूरोपीय सामान बेचते थे और भारतीय वस्त्र तथा निर्यात योग्य अन्य सामान खरीदते थे। इन व्यापारिक केंद्रों को फैक्ट्रियां कहा जाता था और ये आत्मनिर्भर इकाइयां होते थे। व्यापारी मिल-जुल कर एक साथ रहते थे और अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं की रक्षा करते थे। फैक्ट्रियां किलों के रूप में थीं और उनकी रक्षा के लिए यूरोपीय संतरी रहते थे। मद्रास में फोर्ट सेंट जार्ज जैसे केंद्र तो स्वायत्तशासी नगर राज्य जैसे थे।[3] कपंनी अपना माल जहाज द्वारा इंगलैंड भेजती थी।

बंगाल में ईस्ट इंडिया कंपनी

सम्राट शाहजहां के दूसरे पुत्र शाहशुजा ने 1651 में ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल में हुगली के तट पर पहली अंग्रेजी फैक्टरी स्थापित करने की अनुमति प्रदान की। उस समय शाहशुजा बंगाल का सूबेदार था। कंपनी के एक कर्मचारी बाउटन ने राजघराने की एक महिला का इलाज कर दिया। इससे प्रसन्न होकर शाहशुजा ने कंपनी से 3,000 रु० लेकर उसे बंगाल, बिहार और उड़ीसा में स्वतंत्र वाणिज्य करने की अनुमति दे दी। इसके कुछ समय बाद ही कासिम-बाजार, पटना तथा कुछ और स्थानों पर अंग्रेजों के कारखाने बन गए। 1698 में अंग्रेजों ने तत्कालीन सूबेदार अज़ीम उस-शान को 12,00 रु० देकर सुतान्ती, कालीकता और गोविन्दपुर गांवों की जमींदारी प्राप्त कर ली। 1717 में सम्राट फर्रूखसियर ने बंगाल के पूर्ववर्ती सूबेदारों द्वारा अंग्रेजों को दिए गए विशेषाधिकारों की पुष्टि कर दी। इसके अलावा उसने कंपनी को कलकत्ते के आस-पास कुछ और ज़मीन किराए पर लेने की आज्ञा दे दी।

1741 में बंगाल के नायब सूबेदार अलीवर्दी खां ने अपने स्वामी सरफराज खां को मार कर बंगाल, बिहार और उड़ीसा की सूबेदारी हथिया ली। इस समय दिल्ली का मुगल सम्राट मुहम्मद शाह कमजोर था और उसने अलीवर्दी खां से नज़राना लेकर उसके अधिकार को मान्यता दे दी।

1756 में अलीवर्दी खां की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के वाद उसका नवासा सिराजुद्दौला वंगाल की गद्दी पर बैठा।

प्लासी का युद्ध

सिराजुद्दौला के अंग्रेजों से अच्छे संवंध नहीं थे। दोनों के कटु संवंधों का परिणाम था 1757 में प्लासी का युद्ध। यह युद्ध 23 जून, 1757 को लड़ा गया और अपने सेनापतियों के विश्वासघात के कारण नवाव सिराजुद्दौला की पराजय हुई और वह धोखे से मारा गया।[4] राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक दृष्टि से प्लासी के युद्ध का विशेष महत्व है। यह भारतीय इतिहास का एक निर्णायक युद्ध है। इसके परिणामस्वरूप भारत में अंग्रेजी राज की नींव पड़ गई।

बक्सर का युद्ध

प्लासी की लड़ाई में विजय प्राप्त करने के वाद अंग्रेजों ने नवाव सिराजुद्दौला के करीवी रिश्तेदार मीरजाफर को वंगाल का नवाव वनाया। मीरजाफर ने प्लासी की लड़ाई में अंग्रेजों की मदद की थी। वंगाल की नवावी उसका इनाम थी। लेकिन मीरजाफर तथा अंग्रेजों की मैत्री ज्यादा समय तक कायम न रही सकी। 1760 में अंग्रेजों ने मीरजाफर को गद्दी से हटा दिया और उसके दामाद मीर कासिम को वंगाल का नया नवाव वनाया। अंग्रेजों की मीर कासिम से भी नहीं पटी और 1763 में दोनों की सेनाओं में युद्ध हुआ। युद्ध में मीर कासिम पराजित होकर अवध की ओर भाग गया। अवध के नवाव शुजाउद्दौला ने मीर कासिम को सहायता देने का वचन दिया। 1764 में वक्सर में शुजाउद्दौला तथा अंग्रेजों के वीच विकट युद्ध हुआ। शुजाउद्दौला पराजित हो गया और उसने अपने आपको अंग्रेजों के हवाले कर दिया।[5]

बंगाल की दीवानी

1765 में दिल्ली के मुगल सम्राट् शाह आलम ने अंग्रेजों के साथ इलाहावाद की संधि की। इस संधि के अनुसार मुगल वादशाह ने एक विशेष फरमान के द्वारा वंगाल, विहार और उड़ीसा की दीवानी कंपनी को सौंप दी। कंपनी ने मुगल सम्राट को 26 लाख रु० वार्षिक देना स्वीकार किया। दीवानी का अर्थ यह था कि इन प्रदेशों का वित्तीय शासन पूरी तरह अंग्रेजों के हाथ में आ गया। इस तरह ईस्ट इंडिया कंपनी जिसने अपनी यात्रा व्यापारिक संस्था के रूप में शुरु की थी, एक प्रशासनिक संस्था वन गई।[6]

सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन

प्लासी की लड़ाई और फिर दीवानी प्राप्त करने के वाद अंग्रेजों के वंगाल में

पैर जम गए। पश्चिमी सभ्यता और साहित्य का सबसे पहले बंगाल पर ही प्रभाव पड़ा और वह बंगाल से देश के दूसरे भागों में फैला।[7]

अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में बंगाल भारत का सबसे समृद्ध प्रांत था। उसकी कृषि और उद्योग व्यवस्था उन्नत थी। बंगाल का रेशमी कपड़े का उद्योग संसार-प्रसिद्ध था। संसार के विभिन्न भागों के लोग यहां आते थे और यहां से सामान खरीद कर अपने अपने देशों में ले जाते थे। प्लासी की लड़ाई के बाद बंगाल के उद्योग-धंधों पर ईस्ट इंडिया कंपनी का अधिकार हो गया।

उत्तर भारत की स्थिति भी शोचनीय थी। युद्ध, अकाल और शासकों की लूटमार तथा दमन-नीति ने जनता की जान-माल के लिए खतरा पैदा कर दिया था।[8] भारतीय राजे-रजवाड़ों की तुलना में ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकृत इलाकों में स्थिति ज्यादा अनुकूल थी।[9] सामान्य लोगों ने ब्रिटिश शासन का स्वागत किया।[10]

रेग्यूलेटिंग एक्ट, 1773

प्रशासनिक अधिकार हाथ में आने पर कंपनी के कर्मचारी भ्रष्टाचार में लिप्त हो गए। चूंकि उन्हें नियमित वेतन कम ही मिलता था, अतः वे हर संभव तरीके से अधिक से अधिक धन कमाने की ताक में रहते थे। वे कर्मचारी भारत से धन कमा कर इंगलैंड जाते थे और वहां शान-शौकत से अपना जीवन बिताते थे। कंपनी की प्रशासनिक त्रुटियों को सुधारने की दृष्टि से इंगलैंड की संसद ने 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट पास किया। इस एक्ट के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार का भारत-स्थित ईस्ट इंडिया कंपनी की नीति और प्रशासन पर नियंत्रण स्थापित हो गया। इस एक्ट के अनुसार बंगाल के गवर्नर को भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया और बम्बई तथा मद्रास के गर्वनरों को उसके अधीन कर दिया गया। गवर्नर-जनरल की सहायता के लिए चार सदस्यों की एक कौंसिल नियुक्त की गई जो बहुमत के आधार पर निर्णय लेती थी।

पिट्स इंडिया एक्ट, 1984

रेग्यूलेटिंग एक्ट ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रशासनिक व्यवस्था को ठीक करने की दिशा में पहला कदम था। लेकिन यह एक्ट अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल न हो सका। गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के खिलाफ भ्रष्टाचार की अनेक शिकायतें थीं।[11] कौंसिल के सदस्यों का गवर्नर-जनरल से मतभेद रहता था। प्रशासन में भी अनेक दोष थे। इन त्रुटियों को दूर करने के लिए ब्रिटिश संसद ने 1784 में पिट्स इंडिया एक्ट पास किया। इस अधिनियम ने ईस्ट इंडिया कंपनी के गृह-शासन में परिवर्तन किए और कंपनी के कार्य-कलापों पर ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में वृद्धि कर दी।

इस अधिनियम ने कंपनी के ऊपर नियंत्रण रखने के लिए वोर्ड आफ कंट्रोल की स्थापना की। वोर्ड आफ कंट्रोल के सदस्यों में ब्रिटिश मंत्रिमंडल के भी कई सदस्य थे। इस व्यवस्था के फलस्वरूप भारत के ऊपर ब्रिटिश संसद की प्रभुता स्थापित हो गई।

1833 का अधिनियम

ईस्ट इंडिया कंपनी को समय-समय पर अपने चार्टर में संशोधन करना पड़ता था। इसी क्रम में एक संशोधन 1833 में हुआ। इस अधिनियम के फलस्वरूप कंपनी एक व्यापारिक संस्था नहीं रही वल्कि विशुद्ध रूप से एक राजनीतिक और प्रशासनिक संस्था वन गई। अव वह ब्रिटिश सम्राट् की ओर से भारतीय प्रशासन के लिए उत्तरदायी थी। भारत के संवंध में कानून वनाने की सारी शक्ति भी सपरिषद गवर्नर-जनरल के हाथों में आ गई।

1853 का चार्टर एक्ट

1833 के वीस साल वाद 1853 में चार्टर एक्ट का फिर से संशोधन हुआ। इस अधिनियम के फलस्वरूप कंपनी के ऊपर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण और कड़ा हो गया। अव वंगाल को एक पृथक् प्रांत का दर्जा दे दिया गया। उसे एक लैफ्टिनेंट गवर्नर की अधीनता में रखा गया। इस अधिनियम ने भारत के लिए एक विधान परिषद की भी व्यवस्था की। परिषद में वारह सदस्य होते थे जिन्हें सरकार नियुक्त करती थी। जव इस अधिनियम पर हाउस आफ कामन्स में चर्चा हो रही थी, तव जान व्राइट ने कंपनी के प्रशासन की तीव्र आलोचना की थी और कहा था कि उसके कारण लोग दरिद्र हो गए हैं। उन्होंने मांग की थी कि ब्रिटिश सरकार को भारत के प्रशासन की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेनी चाहिए।

1857 पूर्व क्रांति के प्रयत्न

भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की तुलना एक महोदधि से की जा सकती है जिसमें अनेक नद-नदियां आकर मिलती हैं और अपना अस्तित्व विसर्जित कर देती हैं। राष्ट्रीय आंदोलन को किसी एक व्यक्ति, एक दल अथवा एक विचारधारा का प्रतिफल मान लेना इतिहास के साथ अन्याय है। भारतीय स्वतंत्रता-यज्ञ में अनेक लोगों ने अपनी आहुतियां दी हैं। सन् 57 से पहले भी विदेशियों को भारत-भूमि से निकालने के प्रयत्न हुए थे। इस प्रकार के प्रयत्न देश के प्रायः सभी भागों में हुए थे। पूर्वी भारत में सन्यासी विद्रोह, चुहार और हो विद्रोह, कोल विद्रोह, संथाल विद्रोह, अहोम विद्रोह, खासी विद्रोह, पागल पंथी और फराइज़ विद्रोह मुख्य थे। पश्चिमी भारत के मुख्य विद्रोह थे- भील विद्रोह, कोली विद्रोह, कूच विद्रोह, वघेरा विद्रोह, सूरत नमक आंदोलन, रामोसी विद्रोह और कोल्हापुर तथा सावंतवादी विद्रोह। दक्षिण भारत में

विजयनगरम के राजा तथा दीवानी वेलू ताम्वी का विद्रोह इतिहास के पन्नों में दर्ज है। अठारहवीं सदी के अंत में वहाबी आंदोलन ब्रिटिश सत्ता के लिए एक गम्भीर चुनौती था। 1757 में पलासी के युद्ध तथा 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बीच अंग्रेजों की सेना में सेवारत भारतीय सैनिकों ने समय-समय पर विद्रोह का झंडा बुलंद किया था।

1. 1764 बक्सर की लड़ाई में कंपनी की भारतीय सेना की एक टुकड़ी मीर कासिम से मिल गई थी।
2. 1806 कंपनी सरकार भारतीय सैनिकों के सामाजिक और धार्मिक रीति-रिवाजों में अत्यधिक हस्तक्षेप करती थी। इसके विरोध में वेलोर में भारतीय सैनिकों की एक टुकड़ी ने विद्रोह कर दिया था और मैसूर के महाराज का झंडा लहराया था।
3. 1824 भारतीय घुड़सवारों के एक दस्ते को बिना उचित भत्ता दिए अचानक ही वर्मा जाने का आदेश दिया गया। इसके विरोध मे उसने विद्रोह कर दिया।
4. 1825 आसाम में ग्रेनेडियर कंपनी ने विद्रोह किया था।
5. 1838 शोलापुर में एक भारतीय रेजीमेंट ने पूरा भत्ता न मिलने के कारण विद्रोह कर दिया।
6. 1849-50 पंजाब पर नियंत्रण रखने के लिए जो सेना भेजी गई थी, उसकी एक टुकड़ी ने 1850 मे गोविंदगढ़ में विद्रोह कर दिया था।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत ने अंग्रजों की अधीनता पूरी तरह कभी स्वीकार नहीं की। उन्हें जब कभी अवसर मिला उन्होंने सर उठाने की कोशिश की। लेकिन संगठन, कुशल नेतृत्व तथा साधनों की कमी के कारण ये प्रयत्न सफल नहीं हो सके।

1857 का प्रथम स्वाधीनता-संग्राम

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम एक युगांतकारी घटना है। अंग्रेजों ने 1857 की उथल-पुथल को सिपाही विद्रोह की संज्ञा दी है लेकिन भारतीय इसे आजादी की पहली लड़ाई का नाम देते हैं।

150 वर्षो से अधिक के अपने संपूर्ण शासन-काल में ब्रिटिश शासक भारतीय जनता को अंग्रेजी राज के वरदानों का पाठ पढ़ाते रहे। भारतीय इतिहास के ऊपर लिखी गई पाठ्य-पुस्तकों में एक अध्याय इस आशय का होता था कि भारत ने अंग्रेजी शासन में कितनी उन्नति की है। लेकिन इस उन्नति के लिए भारत को क्या कीमत चुकानी पड़ी, इसका इन पाठ्य पुस्तकों में कोई उल्लेख नहीं होता था। इसमें

कोई संदेह नहीं कि अंग्रेजों ने भारत में राजनीतिक एकता स्थापित की और भारत को रेल, टेलीफोन तथा टेलीग्राफ जैसे सभ्यता के आधुनिक उपकरण प्रदान किए। लेकिन यदि भारत की तुलना एशिया के ही एक अन्य देश जापान से की जाए, तो आश्चर्य होगा। उन्नीसवीं सदी तक जापान भी सभ्यता की दौड़ में बहुत पिछड़ा हुआ था। लेकिन उन्नीसवीं सदी में उसने अपना आधुनिकीकरण किया और वह भारत से भी आगे निकल गया। जापन ने यह सब आज़ाद रह कर किया।

अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीयों में चेतना जागृत की लेकिन अंग्रेजों ने अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात भारत की भलाई के लिए नहीं किया था। भारत जैसे विशाल देश का संचालन करने के लिए अंग्रेजों को सस्ते क्लर्कों की आवश्यकता थी। अंग्रेजी शिक्षा ने अंग्रेजों की इस आवश्यकता को पूरा किया।[12]

जब अंग्रेज भारत आए, तब देश समृद्ध था। वस्तुतः भारत के धन और ऐश्वर्य ने ही अंग्रेजों को अपनी ओर आकृष्ट किया था। लेकिन अंग्रेजी राज की स्थापना देश के आर्थिक ह्रास का कारण बन गई। भारत के श्रेष्ठ हस्तकला-कौशल तथा उद्योग धंधे सभी कुछ धीरे-धीरे नष्ट हो गए। उन्हें विदेशी उद्योग-धंधों से अत्यंत प्रतिकूल और विषम परिस्थितियों में टक्कर लेनी पड़ी।

गोरे साम्राज्यवादियों के पीछे ईसाई मिश्नरियों ने भारत में पर्दापण किया। शासन का उनके शीश पर वरद हस्त था। भारतीय जनता की बढ़ती हुई दरिद्रता तथा सामाजिक जीवन को खोखले करने वाले कुत्सित रीति-रिवाजों के कारण ईसाई धर्म-प्रचारकों को मसीही धर्म का प्रचार करने में मदद मिली।

1857 की क्रांति भारत के राष्ट्रीय इतिहास की पहली महत्त्वपूर्ण घटना है। यह क्रांति ब्रिटिश शासन के प्रभाव से उत्पन्न हुए भारतीय जनता के व्यापक असंतोष का फल था। इस क्रांति के अनेक कारण थे- राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सैनिक और फिर तत्कालिक। क्रांति के मुख्य केंद्र थे- मेरठ, दिल्ली, अवध, झांसी, कानपुर, बिहार, राजस्थान। क्रांति के मुख्य नेता थे- मुगल सम्राट् बहादुरशाह जफ़र, पेशवा बाजीराव के द्वितीय दत्तक पुत्र नाना साहब, अजीमुल्ला खां, अवध की रानी बेगम हजरतबल, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे तथा कुंवर सिंह।

क्रांति के नेताओं में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई सबसे कम उम्र की होते हुए भी सबसे कुशल और सबसे बहादुर थी। वे पुरुष वेष में युद्ध में स्वयं लड़ी थीं और लड़ते-लड़ते शहीद हुई थीं। उनका शौर्य-वर्णन हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण निधि है। अंग्रेज इतिहासकारों तक ने उनकी मुक्तकंठ से सराहना की है।[13]

अंग्रेजों ने 1857 की क्रांति को पूरी तरह कुचल दिया।[14] इसका कारण यह था

कि इसमें योग्य नेतृत्व का अभाव था। इसे जनता का समर्थन भी नहीं मिला। क्रांतिकारियों के पास ब्रिटिश शासकों की तुलना में साधनों का भी अभाव था। क्रांति के दूरगामी परिणाम हुए।

1858 का अधिनियम

1857 की क्रांति के फलस्वरूप भारत में कंपनी शासन का अंत हो गया। 2 अगस्त, 1858 को ब्रिटिश संसद ने एक अधिनियम पास किया अब ब्रिटिश भारत का प्रशासन सीधे इंगलैंड की सरकार के हाथों में आ गया। कंपनी की गृह सरकार के दोनों संगठन बोर्ड आफ कंट्रोल तथा बोर्ड आफ डायरेक्टर्स समाप्त कर दिए गए। इनके स्थान पर भारत-मंत्री के पद का सृजन किया गया। भारत-मंत्री ब्रिटिश मंत्रिमंडल का सदस्य होता था और उसकी सहायता के लिए 15 सदस्यों की एक परिषद गठित की गई। इस अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश सम्राट के प्रतिनिधि को ब्रिटिश भारत में गर्वनर जनरल के नाम से तथा देसी राज्यों में वायसराय के नाम से पुकारने की व्यवस्था की गई।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा

ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन-भार संभाल लिया है, भारतीय जनता को यह समाचार महारानी विक्टोरिया की घोषणा से प्राप्त हुआ। लार्ड कैनिंग भारत के पहले गवर्नर जनरल और वायसराय थे। उन्होंने 1 नवंबर, 1858 को इलाहाबाद में एक भव्य दरबार किया और उसमें महारानी विक्टोरिया के घोपणा पत्र को पढ़ा। घोषणा-पत्र में लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता का आश्वासन दिया गया और कहा गया कि कानूनों का निर्माण करते समय लोगों के रीति-रिवाजों, परम्पराओं और लोकाचारों का ध्यान रखा जाएगा। भारत की प्रजा को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों की प्रजाओं के समान ही अधिकार प्राप्त होंगे। घोषणा-पत्र में भारतीयों को विश्वास दिलाया गया था कि ब्रिटिश सरकार उनकी भौतिक तथा नैतिक उन्नति का पूरा प्रयत्न करेगी। यह घोपणा-पत्र 1917 तक ब्रिटिश सरकार की भारत-विषयक नीति का आधार बना रहा।[15]

1861 का भारतीय परिषद अधिनियम

1858 के भारतीय शासन अधिनियम ने गृह सरकार की रूपरेखा में परिवर्तन किया था लेकिन भारतीय शासन-तंत्र को पहले जैसा रहने दिया था। 1861 के अधिनियम ने इस त्रुटि को दूर किया और समय की मांग को देखते हुए भारतीय शासन में अनेक परिवर्तन किए। इस अधिनियम ने गवर्नर जनरल की कार्य-परिषद के सदस्यों की संख्या चार से बढ़ा कर पांच कर दी। परिषद का यह पांचवा सदस्य कानूनी

पेशे से संबंध रखता था। अधिनियम ने गवर्नर जनरल को यह आदेश दिया कि वह परिषद का कार्य ठीक ढंग से चलाने के लिए नियम बना सकता है। गवर्नर जनरल को यह भी अधिकार मिला कि वह अपनी अनुपस्थिति में परिषद की बैठकों की अध्यक्षता करने के लिए परिषद में से ही किसी एक सदस्य को मनोनीत कर सकता है। अधिनियम ने गवर्नर जनरल को यह अधिकार भी दिया कि वह अपनी कार्य-परिषद के प्रत्येक सदस्य को शासन का कोई एक महत्वपूर्ण विभाग सौंप सकता है। अधिनियम ने परिषद के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या कम से कम छह तथा अधिक से अधिक बारह निश्चित की। यह आवश्यक था कि इन अतिरिक्त सदस्यों में से कम से कम आधे गैर-सरकारी हों। अतिरिक्त सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष था। परिषद के कार्य कानून बनाने तक सीमित थे। उसे कार्यपालिका के कार्यों में हस्तक्षेप करने की शक्ति न थी। 1861 के अधिनियम ने प्रांतों में भी विधान परिषदों की व्यवस्था शुरू की। इन परिषदों में भी कुछ सरकारी और कुछ गैर-सरकारी सदस्य होते थे। 1862 में बंगाल में और 1886 में संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर-प्रदेश) में विधान परिषदों की स्थापना हुई।

कांग्रेस की स्थापना

सरकार ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का निर्दयता से दमन किया था। इससे अंग्रेजों और भारतीयों के बीच जातीय कटुता की भावना पैदा हुई। 1857 से पहले अंग्रेजों और भारतीयों के बीच स्नेहपूर्ण संबंध बने हुए थे। 1857 के बाद यह स्थिति बदल गई। अंग्रेजों के मन में यह बात बैठ गई कि भारतीयों को केवल शक्ति-प्रदर्शन के द्वारा ही वश में रखा जा सकता है। अंग्रेज शासकों ने भारतीय जनता के प्रति रक्त और लोहे की नीति को अपनाया। ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों को शासन के महत्वपूर्ण पदों से वंचित कर दिया।

भारत में 1876 से 1884 तक का समय राष्ट्रीयता का जन्म काल है। इस काल में ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन आफ बंगाल, मद्रास नेटिव एसोसियेशन, ईस्ट इंडियन एसोसियेशन, बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन और पूना सार्वजनिक सभा जैसी संस्थाओं ने देश के विभिन्न भागों में राजनीतिक जागृति उत्पन्न की। जिसका परिणाम था 1885 में कांग्रेस की स्थापना।[16]

1892 का अधिनियम

कांग्रेस ने अपने कार्यक्रमों द्वारा जनता का मन जीत लिया। उसका दृष्टिकोण राष्ट्रीय था और उसने देश के सभी हितों, वर्गों, जातियों और धर्मों का प्रतिनिधित्व किया। कांग्रेस आरम्भ में एक सुधारवादी और उदारवादी संगठन था और उसने ब्रिटिश शासकों के प्रति सहयोग की नीति अपनाई। भारत की राजनीतिक सरगर्मियों का

परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय मांगों को पूरा करने के लिए 1892 का अधिनियम पास किया। इस अधिनियम के अनुसार भारतीय और प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। केंद्रीय परिषद में गवर्नर जनरल की कौंसिल के अतिरिक्त कम से कम दस और अधिक से अधिक बीस सदस्य हो सकते थे। प्रांतीय विधान परिषदों में कम से कम आठ और अधिक से अधिक बीस सदस्यों का प्रावधान था। गवर्नर जनरल को अधिकार मिला कि वे परोक्ष निर्वाचन प्रणाली का श्रीगणेश कर सकते हैं। इसका अभिप्राय यह था कि विधान परिषद के गैर-सरकारी सदस्यों में से कुछ को तो मनोनीत किया जाए और कुछ को परोक्ष रीति से निर्वाचित। परोक्ष निर्वाचन का रूप यह था कि म्युनिसिपल कमेटियां, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, कार्पोरेशन, विश्वविद्यालय तथा व्यापार-मंडल कुछ सदस्यों की सिफारिश करेंगे। गवर्नर जनरल इन सदस्यों में से कुछ को विधान परिषद का सदस्य नियुक्त कर देंगे। कौंसिल के सदस्यों को बजट पर बहस करने का भी अधिकार मिला। हां, वे उस पर मतदान नहीं कर सकते थे।

बंगाल का विभाजन

उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी के आरंभ में भारत में बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय जागरण हुआ। बंगाल इसमें सबसे आगे था। गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने राष्ट्रीय आंदोलन के बढ़ते हुए प्रवाह पर रोक लगाने के लिए 1905 में बंगाल का विभाजन कर दिया। सरकारी पक्ष की ओर से कहा गया था कि बंगाल का प्रांत बहुत बड़ा हो गया है और सुशासन की दृष्टि से उसका दो भागों में बांटा जाना आवश्यक है। राष्ट्रीय नेताओं के विचार से बंगाल का विभाजन करने में कर्जन का मुख्य उद्देश्य एक मुस्लिम बहुल प्रांत का निर्माण करना था। बंगाल की जनता ने बंगाल के विभाजन को बंगाली राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई शक्ति के ऊपर एक सूक्ष्म आक्रमण समझा। बंगाल के विभाजन का सारे देश में विरोध हुआ। इस आंदोलन में ब्रिटिश माल के बहिष्कार की तथा स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की अपील की गई।

मुस्लिम लीग की स्थापना

अंग्रेजों ने राष्ट्रीय आंदोलन की शक्ति को कम करने के लिए भारत की विभिन्न जातियों और धर्मों के बीच 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति का आश्रय लिया। 1857 के क्रांति-विस्फोट के बाद ब्रिटिश शासकों ने हिंदुओं को अपने साथ मिलाने तथा मुसलमानों का दमन करने की कोशिश की थी। जब राष्ट्रीय आंदोलन का वेग बढ़ा तब सरकार ने अपनी नीति को बदला और वह मुसलमानों को अपने पक्ष में करने में जुट गई। राष्ट्रीय आंदोलन में अधिकतर हिन्दू थे। स्वभावतः वे सरकार की आंखों में कांटे की तरह चुभने लगे। मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति उदासीन थे।

सरकार ने मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ भड़काया। सरकार की इस नीति से प्रोत्साहित्त होकर मुसलमानों का एक शिष्टमंडल अक्तूबर, 1906 में आगा खां के नेतृत्व में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो की सेवा में उपस्थित हुआ। शिष्टमंडल ने गवर्नर जनरल से प्रार्थना की कि मुसलमानों को भारतीय शासन में उनकी जनसंख्या के हिसाब से नहीं बल्कि उनकी महत्ता तथा सरकार के प्रति उनकी सेवाओं के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाए। शिष्टमंडल ने यह भी आग्रह किया कि मुसलमानों को अलग से अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होना चाहिए। इस शिष्टमंडल का अलग से वायसराय की सेवा में उपस्थित होने का सीधा मतलव यह था कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच भेद की खाई चौड़ी होती जा रही है। वायसराय का शिष्टमंडल के प्रति रुख पूर्णतः सहानुभूतिमय था।

भारतीय परिषद अधिनियम, 1909

1909 का भारतीय परिषद अधिनियम अथवा मार्ले-मिंटो सुधार भारतीय राजनीति में उग्रवाद के विकास का परिणाम था। वीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षो में भारत में आतंकवादी आंदोलन ने भी जोर पकड़ा था। सरकार इस स्थिति से निबटना चाहती थी। उसका उद्देश्य यह था कि कांग्रेस के नरम नेताओं को संतुष्ट किया जाए और सांप्रदायिकता की भावना को दृढ़ कर के उग्रवाद तथा आतंकवाद की प्रवृत्तियों को कुचल दिया जाए।

मार्ले-मिंटो सुधारों ने विधान परिषदों के आकार और कार्यों में वृद्धि की। इस अधिनियम ने प्रांतीय विधान परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत स्थापित किया। अब विधान परिषदों को बजट पर वाद-विवाद करने, सार्वजनिक हित के प्रश्नों पर प्रस्ताव उपस्थित करने और पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार मिल गया। इस अधिनियम का सबसे दोषपूर्ण प्रावधान यह था कि इसने मुसलमानों, जमींदारों, उद्योगपतियों और व्यापारियों के लिए पृथक् निर्वाचनों की सृष्टि की। इन निर्वाचनों ने भारत के सार्वजनिक जीवन को विषाक्त कर दिया, अलहदगी की प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया और अंत में देश के विभाजन की मांग को जन्म दिया।

1911 का राजदरबार

1909 के मार्ले-मिंटो सुधारों के पश्चात् गवर्नर जनरल ने सबसे पहली बार एक भारतीय को अपनी एक्जीक्यूटिव कौंसिल का सदस्य नियुक्त किया। यह सम्मान सर एस० पी० सिन्हा को मिला। 1911 में इंगलैंड के सम्राट् जार्ज पंचम व उनकी पत्नी भारत आए। गर्वनर जनरल लार्ड हार्डिंज ने दिल्ली में सम्राट के राज्याभिषेक का आयोजन किया। सम्राट ने दिल्ली दरबार में घोपित किया कि अब भारत की राजधानी कलकत्ते से हटा कर दिल्ली स्थानांतरित की जाती है और वंगाल के विभाजन को रद्द

किया जाता है। बंगाल-विभाजन रद्द होने से अंग्रेजों और भारतीयों के सम्बंधों में सुधार हुआ।

सूरत-विच्छेद

इंडियन नेशनल कांग्रेस की आरम्भिक विचारधारा उदारवाद की थी जिसके मुख्य नेता थे सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, उमेशचन्द्र बेनर्जी, दीनशा एदल जी वाचा, फिरोज़शाह मेहता, महादेव गोविंद रानाडे और बद्रुद्दीन तैयब जी। बीसवीं सदी के आरम्भ में उदारवादी विचारधारा के विरोध में उग्रवादी विचारधारा का विकास हुआ जिसके प्रमुख नेता थे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष तथा लाला लाजपतराय। उग्रवादी 1907 के कांग्रेस अधिवेशन का अध्यक्ष लोकमान्य तिलक को बनाना चाहते थे लेकिन उदारवादी यह नहीं चाहते थे। कांग्रेस में बहुमत भी उन्हीं का था। उन्होंने अपने बहुमत के जोर से अपने मनोनीत डॉ० रासबिहारी घोष को कांग्रेस का अध्यक्ष बना दिया। इस बात पर सूरत अधिवेशन में कांग्रेस के दोनों पक्षों में विवाद हो गया और उग्रवादियों को कांग्रेस से बाहर निकलना पडा। उदारवादियों और उग्रवादियों के बीच 1916 में फिर से मेल हुआ।

होमरूल आंदोलन

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ। इसी साल लोकमान्य तिलक बर्मा के कारावास से छूट कर स्वदेश वापस आ गए। श्रीमति एनी बीसेंट भी राजनीतिक आंदोलन में कूद पड़ी। उन दिनों आयरलैड में होमरूल आंदोलन चल रहा था और श्रीमति बीसेंट उससे प्रभावित थी। वे भारत में औपनिवेशिक स्वराज चाहती थीं। उन्होंने और तिलक ने होमरूल आंदोलन के संदेश को सारे देश में फैलाया।

मोंटेग्यू की घोषणा

प्रथम महायुद्ध के काल में भारत ने इंगलैंड की भरपूर सहायता की थी। भारत को आशा थी कि युद्ध की समाप्ति पर इंगलैंड भारतीयों की राष्ट्रीय आकांक्षाओं को पूरा करेगा। भारत मंत्री मांटेग्यू ने 20 अगस्त, 1917 को भारत के संबंध में ब्रिटिश सरकार की भावी नीति की घोषणा की :

"सम्राट् की सरकार की यह नीति है, और उससे भारत सरकार पूर्णतः सहमत है, कि भारतीय शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयो का संपर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन-प्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो, जिससे कि अधिकाधिक प्रगति करते हुए स्व-शासन प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह ब्रिटिश साम्राज्य के अंग के रूप में रहे। उन्होंने यह तय कर लिया कि इस दिशा में जितना शीघ्र हो ठोस रूप

से कुछ कदम आगे बढ़ाया जाए।" घोषणा में यह भी कहा गया था कि "इस नीति में प्रगति क्रमश: ही अर्थात् सीढ़ी-दर-सीढ़ी होगी। ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार ही जिनके ऊपर कि भारतीयों के हित और उन्नति का भार है, इस बात की निर्णायक होंगी कि कब और कितना कदम आगे बढ़ाना चाहिए।"

इस घोषणा के बाद मोंटेग्यू ने भारत-यात्रा की और भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड चेम्सफोर्ड के साथ मिल कर भारत के सांविधानिक सुधारों के संबंध में एक प्रतिवेदन जारी किया। इस प्रतिवेदन के आधार पर भारतीय शासन अधिनियम, 1919 का निर्माण हुआ।

भारतीय शासन अधिनियम, 1919

भारतीय शासन अधिनियम, 1919 ने भारत की केंद्रीय सरकार में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया। हां, उसने केंद्रीय सरकार के नियंत्रण को कुछ ढीला कर दिया। केन्द्रीय विधानसभा के सदस्यों की संख्या और उनकी शक्तियों में वृद्धि की गई। केंद्रीय कार्यकारिणी की स्थिति पहले जैसी बनी रही अर्थात् वह विधान सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। पर विधान सभा को इतनी शक्तियां अवश्य मिल गई कि वह कार्यपालिका को प्रभावित कर सकती थी। प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली के रूप में आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई। भारत के संपूर्ण शासन-संचालन का केंद्र लंदन बना रहा। भारत सरकार लंदन-स्थित गृह सरकार के अधीन थी। गृह सरकार में भारत मंत्री और उसकी परिषद सम्मिलित थे।

सारांश

भारत पर अंग्रेजों की विजय इतिहास का एक आश्चर्य है। अंग्रेज भारत में व्यापारी बन कर आए थे, लेकिन बन बैठे यहां के शासक। ब्रिटिश शासकों के मन में शुरू से ही भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा थी।

भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना की कहानी 1600 ई० से आरम्भ होती है। इस साल इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने इंगलैंड के कुछ व्यापारियों को सुदूर पूर्व तथा भारत में व्यापार करने की अनुमति दी। कंपनी ने पहले 150 वर्षों में अपनी गतिविधियां व्यापार तक सीमित रखीं। 1707 में मुगल सम्राट् औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का विघटन आरंभ हो गया और देश में कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं रही। अंग्रेजों ने इस स्थिति से लाभ उठा कर पहले बंगाल में और फिर धीरे-धीरे शेष भारत में अपनी हुकूमत कायम की।

1757 का प्लासी युद्ध अंग्रेजी राज की स्थापना में पहला कदम था। इस लड़ाई में बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला अपने ही अफसरों और सेनापतियों के विश्वासघात के कारण पराजित हुआ। 1763 में अंग्रेजों ने बक्सर की लड़ाई जीत कर बंगाल में अपने

पैर मजबूती से जमा लिए। 1765 में कंपनी को बंगाल की दीवानी मिल गई। इसका अर्थ था कि बंगाल का वित्तीय शासन पूरी तरह अंग्रेजों के हाथों में आ गया।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का सबसे पहले बंगाल पर ही प्रभाव पड़ा और वह बंगाल से देश के दूसरे भागों में फैला। प्लासी की लड़ाई के बाद बंगाल के उद्योग-धंधों पर भी ईस्ट-इंडिया कंपनी का अधिकार हो गया। आर्थिक अवनति के बावजूद आम लोगों ने ब्रिटिश शासन का स्वागत किया।

प्रशासनिक अधिकार हाथ में आने पर ईस्ट इंडिया कंपनी के अफसर भ्रष्टाचार में लिप्त हो गए। फलत: ब्रिटिश संसद ने कंपनी के मामलों में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी और विभिन्न अधिनियमों द्वारा कंपनी के प्रशासन पर अपना नियंत्रण मजबूत किया। इनमें से मुख्य अधिनियम थे- 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट, 1784 का पिट्स इंडिया एक्ट, 1833 का अधिनियम, 1853 का चार्टर अधिनियम।

भारत में 1857 से पहले भी देश के विभिन्न भागों में क्रांति की छोटे पैमाने पर घटनाएं हुई थीं लेकिन संगठन, कुशल नेतृत्व तथा साधनों की कमी के कारण ये प्रयत्न सफल नहीं हो सके।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम एक युगांतरकारी घटना है। यह क्रांति ब्रिटिश शासन के प्रभाव से उत्पन्न हुए भारतीय जनता के व्यापक असंतोष का फल था। इस क्रांति के अनेक कारण थे- राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सैनिक और तात्कालिक। क्रांति के मुख्य केंद्र थे- मेरठ, दिल्ली, अवध, झांसी, कानपुर, बिहार, राजस्थान,। क्रांति के मुख्य नेता थे- मुगल सम्राट बहादुरशाह ज़फर, नाना साहब पेशवा, अजीमुल्ला खां, बेगम हज़रतमहल, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे तथा कुंवर सिंह। क्रांति के नेताओं में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई सबसे कम उम्र की होते हुए भी सबसे कुशल और सबसे बहादुर थीं।

अंग्रेजों ने 1857 की क्रांति को पूरी तरह कुचल दिया। क्रांति के फलस्वरूप भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत हो गया और वह ब्रिटिश सरकार के हाथों में आ गया। 1858 के अधिनियम ने नई शासन-व्यवस्था को वैधानिक रूप दिया।

ब्रिटिश सरकार ने भारत का शासन-भार संभाल लिया है, भारतीयों को यह समाचार 1 नंवबर, 1858 को महारानी विक्टोरिया की घोषणा से प्राप्त हुआ। घोषणा-पत्र में भारतीयो को विश्वास दिलाया गया था कि ब्रिटिश सरकार उनकी भौतिक तथा नैतिक उन्नति का पूरा ध्यान रखेगी।

1861, 1892, 1909 और 1919 के अधिनियमों ने भारतीयों को शासन में उत्तरोत्तर भाग दिया।

1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। 1905 के बंगाल-विभाजन ने देश में बड़े पैमाने पर राजनीतिक जागृति उत्पन्न की। 1911 में जनता के दबाव से बंगाल का विभाजन रद्द हो गया और भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली स्थानांतरित कर दी गई।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान लोकमान्य तिलक तथा श्रीमति एनी बीसेंट के नेतृत्व में देश में होमरूल आंदोलन हुआ।

1919 के भारतीय शासन अधिनियम ने केंद्रीय सरकार के नियंत्रण को कुछ ढीला कर दिया और प्रांतों में द्वैध शासन-प्रणाली के रूप में आंशिक उत्तरदायी शासन की स्थापना की गई।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. 1707 में मुगल सम्राट् औरंगज़ेब की मृत्यु हुई। उसकी मौत भारतीय इतिहास में एक सीमा-चिन्ह है। उसके समय में मुगल साम्राज्य अपने शिखर पर पहुंच गया। इतिहासकार आर० सी० मजूमदार ने उसके विस्तार के बारे में लिखा है:

   "It included practically the whole of Northern India upto the border of Assam on the east, and extended upto the Hindukush mountains on the west. In the Deccan he had finally conquered and annexed the old independent States of Bijapur and Golconda, the remnants of the once mighty Bahmani kingdom, and carried his victorious arms as far as Tanjore in the South. The independent, but tiny, Maratha state maintained only a precarious existence in the fastness of the hills. There was no organized power anywhere in the vast sub-continent of India which seemed to have even the shortest chance of measuring its strength against the power of the Mughals with any chance of success." R.C. Majumdar. *History of the Freedom Movement in India* Vol.1, Calcutta, 1962.

2. जेम्स मिल ने बंगाल के नवाब को अपदस्थ करके कंपनी के शासन को स्थापित करने का प्रस्ताव किया था। उसने बंगाल की राजनीतिक और सैनिक स्थिति का निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किया था : "The policy of the Moghul court is bad, his military worse, and as to the marine power, to command and protect his coasts he has none at all... A conquest might be made with as much ease as the Spainards overwhelmed the naked Indians of America... Bengal is at present under the domination of a rebel subject of the Moghuls' ... It is equally indefensible with the rest of Hindustan on the side of the ocean, and consequently may be forced out of rebel's without any violation of right; and if forced out of his hands under a declaratory intention of restoring it

to the Moghuls, instead of furnishing matter of complaint, it would be a matter of so much merit, as might justly challenge any acknowledgement and any consideration." मिल का विचार था कि 1500 से 2000 सिपाही इस अभियान के लिए पर्याप्त थे। उसका सुझाव था कि इस अभियान में इंग्लैंड के सम्राट की सहायता ली जा सकती थी। मिल की योजना पर तत्काल अमल नहीं हुआ लेकिन इसके ग्यारह साल बाद ही क्लाइव ने इसे कार्यरूप में परिणत किया। W. Bolt, *Consideration of Indian Affairs,* Vol.III, pp.140-1, Appendix, pp.15-19. See also R.C.Majumdar, *Ibid*, p.9.

3. "The original settlers began with a factory, the factory grew into a fort, the fort expanded into a district, and the district into a province." Lord Palmerston, quoted in R.C Majumdar, *History of the Freedom Movement in India,* Vol.I, Calcutta, 1962, p.5.

4. सिराजुद्दौला का करीबी रिश्तेदार मीर ज़ाफर नवाबी के लालच में अंग्रेजो से मिल गया था और सिराजुद्दौला की हार का कारण मीर ज़ाफर की धोखाधड़ी थी। नवाब के दो सेनापतियो मीर मदन तथा मोहनलाल ने वीरता का परिचय दिया। मीर मदन युद्ध में मारा गया और मोहनलाल को सिराजुद्दौला की ज़िद के कारण युद्ध बंद करना पड़ा। R. C. Majumdar, *Ibid.*, p.13.

5. प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल मे अंग्रेजो का वर्चस्व कायम हो गया था और बगाल को आधार बनाकर उन्होने शेष भारत पर अपना विजय अभियान आरम्भ किया। अंग्रेजो की विजय का सबसे बड़ा कारण भारतीयों की आपसी फूट थी। भारतीय स्वयं अपने सबसे बड़े दुश्मन थे। सीली नामक इतिहासकार का कहना है :

   "India can hardly be said to have been conquered at all by foreigners. She has rather conquered herself." Seeley, *Expansion of England*, p.209.

6. भारत में कंपनी के प्रशासन के बारे में देखिए, *Early Administrative System of the East India Company in Bengal*, 1943.

   अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के बारे में कुछ मुख्य रचनाए हैं : K. N. Chaudhary, *The European Trading World of Asia and the English East India Company,* 1600-1760 (Cambridge, 1978); Sushil Chaudhary, *Trade and Commercial Organisation in Bengal, 1650-1720* (Calcutta, 1975) और Thomson and Garralt, *Rise and Fulfilmant of British Rule in India.*

7. "If Periclean Athens was the school of Hellas, the eye of Greece, mother of arts and eloquence, that was Bengal to the rest of India under British rule, but with a borrowed light, which it had made its

own with marvellous currency. In this new Bengal originated every good and great thing of the modern would that passed on to the other provinces of India. From Bengal went forth the English-educated teachers and the inspired thought that helped –to modernise Bihar and Orissa, Hindustan and Deccan. New literary types, reform of the language, social reconstruction, political aspirations, religious movements and even changes in manners that originated in Bengal, passed like ripples from a central eddy, across provincial barriers, to the farthest corners of India," J. N. Sarkar (Ed.), *History of Bengal,* Vol. II (Dacca University), p.489.

8. "The towns were ransacked by the armies which marched and counter-marched across the country. Houses were stripped of movable property, and their owners made to give up their last nite and tortured if they were suspected of having hidden hoards. A Maratha army was followed by swarms of licensed plunderers, who shared their spoils with the commanders of the corps to which they were attacked. Armed with swords and spears, hatches and crowbars, they entered places which had probably been visited by the troops and deserted by their inhabitants, stripped the houses of their locks, hinges, ironwork and timber, dug up the floors and demolished the walls in search of any possible coin and finally set fire to what they could not carry away. There were the Pindaris, who, in the last days of Maratha rule, when organised in great hordes, were the scourge of the country." L. S. O' Malley, *Modern India and the West,* p.35.

9. C.R. Wilson, *The Early Annals of the English in Bengal,* I, p.217.

10. R.C. Majumdar, *op.cit.* p.47.

11. ब्रिटिश संसद में वारेन हेस्टिंग्ज (1732-1818) के ऊपर मुकदमा चला था। लेकिन उसे छोड़ दिया गया।

12. भारत मे आधुनिक शिक्षा-पद्धति के जन्मदाता लार्ड मैकाले (1800-59) है। वे ब्रिटिश संसद के सदस्य, भारत की सुप्रीम कौंसिल के सदस्य और ब्रिटिश सरकार के मंत्री रहे थे। उनका पांच खंडों में प्रकाशित इंग्लैंड का इतिहास अपने विषय की प्रामाणिक रचना मानी जाती है। भारत के शैक्षिक इतिहास मे लार्ड मैकाले का महत्व यह है कि उन्होंने भारत मे अंग्रेजी शिक्षा की नींव रखी। 2 फरवरी, 1835 को लार्ड मैकाले ने शिक्षा के बारे में अपना प्रसिद्ध नोट लिखा था। इस नोट में उन्होंने अरबी और संस्कृत भाषाओं का उपहास किया था, प्राचीन भातीय साहित्य, विज्ञान और दर्शन को पाश्चात्य साहित्य, विज्ञान और दर्शन की तुलना में हीन ठहराया था और यहां तक कहा था कि यूरोपीय लायब्रेरी की एक अलमारी भारत

और अरब के समूचे साहित्य के बराबर है। लार्ड मैकाले के प्रभाव से भारत में अंग्रेजी शिक्षा की नींव पड़ी। इस शिक्षा-पद्धति की समय-समय पर आलोचना अवश्य होती रही है लेकिन भारतीय शिक्षा का ढांचा मूलतः वही बना हुआ है जो लार्ड मैकाले ने निर्धारित किया था। लार्ड मैकाले का वास्तविक लक्ष्य भारत में ऐसे लोगों की जमात तैयार करना था जिनकी चमड़ी जरूर भारतीय हो, लेकिन जिनकी विचारधारा पूरी तरह पश्चिम के रंग में रंगी हो। भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने पाश्चात्य शिक्षा-नीति के इन दुष्परिणामो को समझा। महात्मा गांधी ने इस शिक्षा-नीति की कठोर आलोचना की और राष्ट्रीय शिक्षा-नीति और बुनियादी शिक्षा-पद्धति राष्ट्र के सम्मुख रखी लेकिन उनके प्रयत्नों का भी कोई फल नही निकला। देखिए, विश्वप्रकाश गुप्त तथा मोहिनी गुप्त, *राजा राममोहन राय-व्यक्ति और विचार,* दिल्ली, 1996, पृ० 101 ।

13. "Clad in the attire of man, and mounted on horseback, the Rani of Jhansi might have been animating her troops throughout the day. When inch by inch the British of troops passed though the pass and when reaching its summit Smith ordered the hussars to charge, the Rani of Jhansi boldly confronted the British horsemen. When her comrades failed her, her horse, in spite of her efforts, carried her along with the others. With them, she might have escaped but that her horse, crossing the canal near the (Phulbagh), cantonment, stumbled and fell. A hussar, close upon her track, ignorant of her size and rank, cut her down. She fell to rise no more."Malleson, quoted in R.C. Majumdar, *History of the Freedom Movement in India,* p.219.

14. अंग्रेजों ने 1857 की क्रांति को जिस क्रूरता से कुचला था, उसका एक नमूना स्वयं एक अंग्रेज लेखक गैरेट के निम्नलिखित विवरण से पाया जा सकता है :

"अंग्रेजों ने अपने हजारों बंदियों को बिना किसी अभियोग की सुनवाई के मौत के घाट उतार दिया। यह सभी भारतीयों की दृष्टि में बर्बरता की चरम सीमा थी। मुसलमानों को मारने से पहले सूअर की खालो मे सी दिया जाता था, उन पर सूअर की चरबी मल दी जाती थी, फिर उनके शरीर जला दिए जाते थे। हिन्दुओं को बलपूर्वक धर्मभ्रष्ट किया जाता था। हजारों की संख्या में स्त्रियों, पुरुषों और बालको को न केवल दिल्ली मे, बल्कि देहातों में जा-जा कर कत्ल किया गया। कुछ गावों को अपराधी घोषित कर दिया जाता था और उनके निवासियो को तलवार के घाट उतार दिया जाता था। जहां कहीं अंग्रेज सेना पहुंचती थी, वहां के निवासियो के प्राण संकट में पड़ जाते थे। उन्होने चाहे कोई अपराध किया हो या नहीं, आग की लपटों के सुपुर्द कर दिया जाता था।"

15. महारानी विक्टोरिया की घोषणा के अंत मे कहा गया था :

"In their prosperity will be our strength, in their contentment our security and in their gratitude our best reward."

16. कांग्रेस की स्थापना का श्रेय ब्रिटिश सरकार के एक अवकाशप्राप्त अफसर ए० ओ० ह्यूम को दिया जाता है। ह्यूम को डर था कि देश के अंदर बढ़ता हुआ असंतोष आकस्मिक क्रांति का रूप धारण कर सकता है। ह्यूम कांग्रेस के माध्यम से भारतीय राजनीतिज्ञों को एक ऐसा मंच देना चाहते थे जिस पर वे अपने विचार व्यक्त कर सकें। ह्यूम ने अपनी योजना के सम्बंध में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन से बात की थी। डफरिन की सलाह थी कि कांग्रेस भारत में वही काम करे जो इंग्लैंड में प्रतिपक्ष करता है। कांग्रेस का पहला अधिवेशन 28 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में हुआ।

3

नवजागरण के स्वर अवनति और अधोगति

भारतीय इतिहास में अठारहवीं सदी का समय देश के लिए घोर अवनति और अधोगति का समय है। 1707 में मुगल सम्राट् औरंगजेब की अहमदनगर में मृत्यु हुई।[1] औरंगजेब ने अपने जीवन का उत्तरार्ध दक्षिण भारत में गोलकुंडा, बीजापुर और मराठा शासकों से लड़ते व्यतीत किया था। फिर भी उसकी मृत्यु के समय मुगल साम्राज्य अपने वैभव के उच्च शिखर पर था।[2]

मुगल साम्राज्य का विघटन

औरंगजेब की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद ही मुगल साम्राज्य का विघटन आरंभ हो गया। मुगलों की केंद्रीय सत्ता कमजोर होने पर देश अनेक रजवाड़ों में विभक्त हो गया जो आपस में लड़ते रहते थे। राष्ट्रीय भावना का सर्वथा अभाव था। यूरोप की अनेक व्यापारिक संस्थाओं ने अपना काम करना शुरू कर दिया था। इनमें सबसे ऊपर इंगलैंड की ईस्ट इंडिया कंपनी थी। उसने धीरे-धीरे अपना प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाना शुरू किया। भारत के किसी राजनीतिज्ञ को इस खतरे का ध्यान नहीं था। सबको अपने-अपने स्वार्थ की चिंता थी। देश के अनेक रजवाड़ों और लोगों ने अंग्रेजों की मदद की।[3]

आत्मा का संकट

भारत का संकट सिर्फ राजनीति का संकट न था। उसका सबसे बड़ा संकट आत्मा का था। वह अपने प्राचीन वैभव को भूल चुका था। गीता, उपनिषदों और वेदांत की शिक्षाएं लोगों की समझ से बाहर थीं। समाज के प्रायः सभी अंगों को लकवा मार गया था। धर्म, शिक्षा, विधि, प्रशासन, कृषि, उद्योग सभी क्षेत्रों में जड़ता व्याप्त थी। भारत का शरीर शिथिल था और मन डरा हुआ।

बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा

उन्नीसवीं सदी में भारतीय नवजागरण के लिए यदि किसी एक तत्व को सबसे अधिक श्रेय दिया जा सकता है तो वह है– अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ। अंग्रेजी शिक्षा और उस पर आधारित पाश्चात्य विचारों ने उन्नीसवीं सदी के भारत में वैचारिक क्रांति का शंखनाद किया।[4]

अंग्रेजी का सूत्रपात

सत्रहवीं सदी के अंत और अठारहवीं सदी के आरंभ में प्रशासन और व्यापार की आवश्यकताओं के कारण कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के भारतीयों को अंग्रेजी सीखने के लिए विवश होना पड़ा था। लेकिन अंग्रेजी का यह ज्ञान थोड़े लोगों तक ही सीमित था। 1757 में प्लासी के युद्ध के बाद तो बंगाल में अंग्रेजों के हाथों में राजनीतिक सत्ता आ गई थी। वहां भी अंग्रेजी शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं था। उन्नीसवीं सदी के आते-आते शिक्षित बंगाली अंग्रेजी भाषा, साहित्य तथा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के प्रति सजग हो गए थे। जैसे-जैसे उनका अंग्रेजों से संपर्क बढ़ा, वे अंग्रेजों की सभ्यता और संस्कृति के कायल होते गए। उनके मन में यह विचार जड़ जमाने लगा कि वे अंग्रेजों की सभ्यता और संस्कृति तक अंग्रेजी भाषा के द्वारा ही पहुंच सकते हैं। इस विचारधारा के परिणामस्वरूप कलकत्ता और उसके आस-पास के क्षेत्रों में अंग्रेजी शिक्षा देने के स्कूल खुलने लगे। 20 जनवरी, 1817 को कलकत्ते में हिन्दू कालिज की स्थापना हुई। बंगाल के नवजागरण में हिन्दू कालिज का योगदान कभी नहीं भुलाया जा सकता। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के विकास में राजा राममोहन राय की देन भी महत्वपूर्ण है।[5]

साहित्य[6]

भारतीय नवजागरण के उदय और विकास में साहित्य का भी अपना योगदान रहा है। भारत की विभिन्न भाषाओं में ऐसे अनेक साहित्यकार हुए हैं जिनकी रचनाओं ने भारतीय नवजागरण की भावना को पुष्ट किया। देश की कुछ प्रमुख भाषाओं के विशिष्ट रचनाकारों की सूचियां नीचे दी जा रही हैं :

बंगला : बंकिम चन्द्र चटर्जी, माइकेल मधुसूदन दत्त, द्विजेन्द्र लाल राय, रवीन्द्रनाथ टेगौर, जतीन्द्र मोहन बागची , प्रमथ चौधरी, सत्येन्द्रनाथ दत्त, मोहितलाल मजूमदार, नजरुल इस्लाम, शरत चन्द्र, प्रभात कुमार मुखोपाध्याय, प्रेमेन्द्र मित्र, विभूति-भूषण बंद्योपाध्याय, ताराशंकर और बंद्योपाध्याय।

असमिया : हेमचन्द्र गोस्वामी, रजनीकांत बारदोली, सत्यनाथ वोरा, कमलकांत भट्टाचार्य, हितेश्वर बरुआ और नबकांत बरुआ।

उड़िया : फकीरमोहन सेनापति, राधानाथ राय, मधु सूदन राव, आश्विनी कुमार घोष, चन्द्रशेखर पाणी, कालीचरण पट्टनायक, कालिन्दीचरण पाणिग्रही, बैकुंठनाथ पटनायक, हरिहर महान्ति, विश्वनाथ कार और चिन्तामणि महान्ति।

हिन्दी : भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त, प्रताप नारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, राहुल सांस्कृत्यायन, महादेवी वर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पंत।

पंजाबी : भाई वीर सिंह, भाई पूरनसिंह, कृपाल सिंह, धनीराम चत्रिक, मोहनसिंह, अमृता प्रीतम, संतासिंह सेखो, गोपाल सिंह दर्दी, कर्त्तार सिंह दुग्गल और नानक सिंह।

गुजराती : नंदलाल कवि, आनंदशंकर ध्रुव, कन्हैयालाल मुंशी, रमणलाल देसाई, धूमकेतु, जावेरचन्द मेघानी, उमाशंकर जोशी, महात्मा गांधी, काकासाहेब कालेलकर और महादेव भाई देसाई।

मराठी : लोकमान्य तिलक, शिवराम पंत परांजपे, एन० सी० केल्कर, श्रीपाद कृष्ण कोल्हादकर, सी० वी० जोशी, पी० के० अत्रे, प्रो० एन० सी० फड़के, वी० एस० खाडेकर, इरावती कर्वे, श्रीनिवास कुलकर्णी, पी० वाई० देशपांडे, विश्राम बाडेकर, एस० एन० पेंडसे, के०पी० खाडिलकर, मामासाहेब वरेरकर, हरिनारायण आप्टे, लक्ष्मण राव सरदेसाई और कुसुमावती देशपांडे।

तमिल : सुब्रमण्य भारती, भारती दसर, नामक्कल रामलिंगम पिल्लई, स्वामी शुद्धानंद भारती, टी०डी० मीनाक्षी सुंदरम, सोमसुंदर पुलावर, कोथामंगलम सुभू, सी० एन० अन्नादुरै, जे० आर० रंगराजू, शंकरराम, पी० एम० कन्नन, के० राजवेलु, टी० एन० कुमारस्वामी, वी० वी० एस० अय्यर, राजगोपालाचारी, के०वी० जगन्नाथन और टी०वी० कल्याण सुंदर मुदालियर।

तेलुगु : जे० वी० राममूर्ति पांतुलू, तिरुपति वैंकटेश्वर, गुरुजद अपर्वा, नंदूरि वैंकट सुब्बाराव, विश्वनाथ सत्यनारायण, देवुलापल्ली कृष्णशास्त्री, रायप्रोलु सुब्बाराव, कृष्णमूर्ति शास्त्री, तल्लावज्जुला शिवशंकर शास्त्री, नारायणचार्लू बासवराजू अप्पाराव, डी० आर० रेड्डी, श्रीरंगम श्रीनिवास राव, श्री नारायण रेड्डी, गुडिपति वैंकटाचलम, के० कुटुम्ब राव, वेलूरि श्रीनिवास शास्त्री, डॉ० सी०आर० रेड्डी और टी० प्रकाशम।

कन्नड़ : डी० एम० श्रीकान्तरया, डी० वी० गुणप्पा, के० वी० पुटप्पा, पी०टी० नरसिंहाचार, गोरूर रामस्वामी, कृष्णकुमार, बी० वैंकटाचार, ए० एन० कृष्णराव, टी० पी० कैलाशम, ए० एन० कृष्णराव, एल० जे० बेन्द्रे और ए० एन० मूर्तिराव।

मलयालम : चंदू मेनन, रमण पिल्लई, नारायण कुरुक्कल, सी० एस० एस० पोट्टी, कप्पन कृष्णमेनन, सरदार के० एम० पाणिक्कर, सी० कुंजुराम मेनन, ई० वी०

कृष्णपिल्लई, सी० वी० रमण पिल्लई, वल्लतोल नारायण मेनन, उल्लूर एस० परमेश्वर अय्यर, सी० शंकर कुरुप, करूर नीलकांत पिल्लई, सी० जे० टामस और के० दामोदरन,

उर्दू : गालिब, जौक, मीर, अनीस, इकबाल, अकबर इलाहाबादी, मुहम्मद हुसैन अस्करी, जोश मलीहाबादी, जिगर मुरादाबादी, फिराक गोरखपुरी, फैज अहमद फैज़, सरदार अली जाफरी, सज्जाद ज़हीर, ख्वाजा अहमद अब्बास, सागर निज़ामी, 'मजाज़', साहिर लुधियानवी, मज़रूह सुल्तान पुरी, कृष्ण चन्दर और राजेन्द्र सिंह बेदी।

समाचार-पत्र

लोकतंत्रात्मक शासन में समाचार-पत्रों की निर्णायक भूमिका होती है। समाचार-पत्र जनता को सरकार की नीतियों से परिचित कराते है। वे जनता की शिकायतें सरकार के सामने प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्र जनता और सरकार के बीच पुल का काम करते हैं।

समाचार-पत्रों का आरम्भ

भारत में समाचार-पत्रों का इतिहास यूरोपियों के भारत आगमन से आरम्भ होता है। पुर्तगाली लोग भारत में सबसे पहले मुद्रण-यंत्र लाए थे। भारत में पहली पुस्तक 1557 में छपी थी। 1684 में अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी ने बम्बई में एक मुद्रण यंत्र की स्थापना की। करीब 100 वर्ष तक कंपनी के राजक्षेत्र में कोई समाचार-पत्र नहीं छपा क्योंकि कंपनी के अधिकारी यह नहीं चाहते थे कि लोगों को उनकी कारगुजारी का पता चले।

राजा राममोहन राय की देन

भारतीय नवजागरण के विकास में समाचार-पत्रों की प्रमुख भूमिका रही है।[7] इस दिशा में सबसे पहले मार्गदर्शन राजा राममोहन राय ने किया। बंगाल का पहला उदारवादी पत्र *बंगला गजट था* । यह साप्ताहिक बंगाली पत्र था जिसका प्रकाशन राममोहन राय की आत्मीय सभा के कुछ उत्साही सदस्यों ने 1816 में आरम्भ किया था। इसी काल में *समाचार दर्पण, फ्रैंड आफ इंडिया, कैलकटा जर्नल, सम्वाद कौमुदी मिरात-उल-अखबार* आदि समाचार-पत्र प्रकाशित होने शुरू हुए।

समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर नियंत्रण

अंग्रेजी शासन में समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर लार्ड वैल्जली के समय से ही नियंत्रण लगने आरम्भ हो गए थे। उन्होंने समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर पहली बार प्रतिबंध लगाया था।

सरकार के रवैये में कठोरता

1818 के बाद समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के बारे में सरकार का रवैया कठोर होने लगा। ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार ने 1828 में एक अध्यादेश जारी करके समाचार-पत्रों की स्वतंत्रत्रा पर कड़े प्रतिबंध लगा दिए। इस अध्यादेश के अनुसार समाचार-पत्रों के संपादकों और मालिकों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपने पत्रों के लिए सरकार के मुख्य सचिव से लाइसेंस प्राप्त करें और यह वचन दें कि अपने पत्रों में कानून द्वारा निषिद्ध विषयों पर चर्चा नहीं करेंगे। अध्यादेश का उल्लंघन होने पर सरकार समाचार-पत्रों का लाइसेंस रद्द कर सकती थी।

समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के लिए आंदोलन

राजा राममोहन राय तथा उनके कुछ अन्य प्रमुख सहयोगियों ने न्यायालय में अध्यादेश के विरुद्ध ज्ञापन दिया। ज्ञापन का प्रारूप राममोहन राय ने तैयार किया था। भारत के वैचारिक इतिहास में इस ज्ञापन का अपना महत्त्व है। इस ज्ञापन में राम मोहन राय ने स्वतंत्र प्रेस के लाभ गिनाए हैं- शासकों और शासितों दोनों के लिए। न्यायालय ने ज्ञापन अस्वीकार कर दिया।

ब्रिटिश सम्राट की सेवा में अपील

भारत में उच्चतम न्यायालय द्वारा समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता संबंधी ज्ञापन के रद्द किए जाने पर राममोहन राय ने इंगलैंड के सम्राट् की सेवा में अपील की। अपने ज्ञापन में राममोहन ने कहा कि यदि लोगों को अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्र्ता नहीं दी जाती, तो उनकी उन्नति नहीं हो सकती। सरकार समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा कर अपनी सत्ता को मजबूत नही कर सकती। राममोहन राय की अपील पर प्रिवी कौंसिल छह महीने तक विचार करती रही पर अंत में उसने भी इस अपील को अस्वीकार कर दिया।

सर चार्ल्स मैटकाफ

राममोहन राय ने 1823 में सरकार के प्रेस-अध्यादेश के विरोध में अपना फारसी साप्ताहिक *मिरात-उल अखबार* प्रकाशित करना स्थगित कर दिया। लेकिन इससे उनके पत्रकार जीवन का अंत नहीं हुआ। उनका कई अन्य पत्रों से संबंध बना रहा जिनमें मुख्य थे- *बंगाल हेरल्ड, बंगदूत, इंडियन गजट, बंगाल हरकारा, रिफार्मर* । सर चार्ल्स मैटकाफ ने 1835 में प्रेस कानून रद्द कर दिया। उनके इस काम की भारत में सराहना हुई, पर उन्हें अपने पद से हाथ धोना पड़ा।

प्रेस–विषयक मुख्य कानून

1835 के बाद जिन कानूनों ने समाचार–पत्रों पर प्रतिबंध लगाने की कोशिश की, उनमें मुख्य थे : द लाइसेसिंग एक्ट, 1857; द रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1867; द वर्नाकुलर प्रेस एक्ट, 1878; द न्यूजपेपर्स एक्ट, 1908; द इंडियन प्रेस एक्ट; 1910, द इंडियन प्रेस (एमर्जेन्सी पावर्स) एक्ट, 1931, द प्रेस (ओब्जेक्शनल मैटर्स एक्ट, 1951 ।

समितियां

सरकार ने समय–समय पर समाचार–पत्रों की स्थिति की जांच करने के लिए विशेष समितियां स्थापित की है। इनमें दो समितियां उल्लेखनीय हैं– प्रेस एन्क्वायरी कमेटी, 1947 और प्रेस कमीशन, 1952 ।[8]

पाश्चात्य विचारों का प्रभाव

अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीयों का पाश्चात्य विचारों और संस्थाओं से संपर्क स्थापित हुआ। उन्हें पता चला कि सभ्यता की दौड़ में उनका अपना देश कितना पिछड़ गया है। इस वैचारिक क्रांति के फलस्वरूप भारत में समाज–सुधार के अनेक आंदोलनों ने जन्म लिया। इनमें से मुख्य आंदोलन निम्नलिखित थे :

1. ब्रह्म समाज
2. प्रार्थना समाज
3. रामकृष्ण मिशन
4. आर्य समाज
5. थियोसोफी
6. वहाबी आंदोलन
7. अलीगढ़ आंदोलन
8. देवबंद आंदोलन
9. सिख सुधार आंदोलन, और
10. पारसी सुधार आंदोलन

ब्रह्मसमाज[9]

ब्रह्म समाज आंदोलन के प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे। उनका जन्म 1772 में हुआ और मृत्यु 1832 में। राजा राममोहन राय ने 60 वर्ष का जीवन पाया था। अपने 60 वर्ष के जीवन में उन्होंने देश के सार्वजनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भाग लिया, तत्कालीन यूरोप की बौद्धिक गतिविधियों से अपने आपको परिचित रखा,

सामाजिक कुरीतियों से युद्ध किया, पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली को लागू करने में सहायता दी, समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का समर्थन किया और ब्रह्मसमाज की नींव रखी जिसने देश के विभिन्न भागों में सामाजिक और सांस्कृतिक नवजागरण की लहर पैदा की। राजा राममोहन राय ने देश में ऐसी अनेक प्रवृत्तियों को जन्म दिया जिनके फलस्वरूप भारतीय समाज मध्य युग की सीमाओं को पार कर आधुनिकता के दौर में आ गया। इसीलिए राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत का जनक कहा जाता है।

मध्ययुगीन तंद्रा

राजा राममोहन राय के समय तक भारत मध्ययुगीन तंद्रा में सोया हुआ था। राजा राममोहन राय ने जीवन के हर क्षेत्र में मध्ययुगीन विचारों और विश्वासों पर प्रहार किया। उन्होंने हिंदू शास्त्रों और परम्पराओं का त्याग नहीं किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इन शास्त्रों और परम्पराओं का बदलती हुई परिस्थितियों के आलोक में मूल्यांकन होना चाहिए। राममोहन राय के विचार से हिन्दू धर्म का मूल रूप एकेश्वरवाद का, वेदांत का था। बाद में हिंन्दू धर्म में अनेक देवी-देवताओं का, मूर्ति-पूजा का तथा निरर्थक कर्मकांड का समावेश हो गया था। सामाजिक कुरीतियों को, उदाहरण के लिए सती-प्रथा को धर्म का समर्थन मिलने लगा। राममोहन राय पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दू धर्म के कुछ प्रमुख ग्रंथों का बंगला में अनुवाद किया था। आधुनिक भारत में धर्मो के तुलनात्मक अध्ययन की परंपरा राजा राममोहन राय से ही आरंभ होती है। राममोहन राय ने संसार के तीन महान् धर्मो- हिन्दू धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म का तुलनात्मक अध्ययन किया और उनके बीच समन्वय के सूत्र खोजे।

धार्मिक चिंतन

राजा राममोहन राय के धार्मिक चिंतन का आधार *उपनिषद* और *ब्रह्मसूत्र* थे। वे धर्म तत्व को समझने के लिए मनुष्य की विवेक-शक्ति को आवश्यक समझते थे।

एकेश्वरवाद

अपने आरंम्भिक वर्षो में राममोहन राय अरब के दो एकेश्वरवादी विचारकों- वसील बी० अता और अमीर बी० उमैद से प्रभावित हुए थे। ये दोनों विचारक मानते थे कि आत्मज्ञान के लिए किसी ईश्वरीय ग्रंथ की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य अपने कर्त्तव्यों का उचित रीति से पालन करके आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। राममोहन राय का विचार है कि मनुष्य को अपनी विवेक-शक्ति द्वारा धार्मिक विश्वासों तथा अनुभवों का विश्लेषण करना चाहिए। संसार के सभी धर्मो में कुछ अच्छी बातें हैं और कुछ निन्दनीय। सभी धर्मो के श्रेष्ठ तत्त्वों को ग्रहण कर लेना चाहिए। अंधविश्वास अज्ञान से पैदा होते हैं। चमत्कारों में विश्वास नही करना चाहिए। मनुष्य

अपनी अंतश्चेतना के द्वारा ईश्वर का संदेश समझ सकता है। राममोहन राय अवतारों तथा पैगम्बरों के विरुद्ध थे।

सुशिक्षित मानस की आवश्यकता

राममोहन राय समझते थे कि धर्म के वास्तविक तत्त्व को समझने के लिए सुशिक्षित मानस की आवश्यकता है। वे देश की परम्परागत संस्कृत शिक्षा के विरुद्ध थे। उनका मानना था कि इस शिक्षा से लोगों को व्याकरण का ज्ञान हो जाता है और उनमें शास्त्रार्थ करने की योग्यता आ जाती है। लेकिन इस शिक्षा से ज्ञान का विस्तार नहीं होता। भारत की शैक्षिक और बौद्धिक अधोगति का एक प्रमुख कारण भारत की पुरानी शिक्षा-पद्धति है।

बहुमुखी विरासत

धर्म और शिक्षा राममोहन राय के कार्यक्रम के दो प्रधान अंग थे। इसके अलावा उन्होंने बंगाली भाषा और साहित्य, सामाजिक, आर्थिक, न्यायिक तथा राजनीतिक सुधारों की दिशा में पहल की। भारत में सती-प्रथा के विरुद्ध जनमत जागृत करने का श्रेय राजा राममोहन राय को है। उन्होंने भारत में वैधानिक आंदोलन का श्रीगणेश किया। राजा राममोहन राय समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता के पक्षधर थे। उन्होंने स्वयं कई समाचार-पत्रों का संपादन और प्रकाशन किया। भारत में आगे चल कर सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक सुधारों के क्षेत्र में जो भी काम हुआ, उसके प्रेरणा स्रोत राममोहन राय थे।

ब्रह्मसमाज का जन्म

राजा राममोहन राय की जीवंत साधना का अमृतफल था- ब्रह्म समाज। उन्होंने इस संस्था की स्थापना 1828 में कलकत्ते में की थी। ब्रह्मसमाज की बैठकों में उपनिषदों का अध्ययन होता था।

प्रभाव का विस्तार

ब्रह्मसमाज की स्थापना के कुछ समय बाद ही उसका प्रभाव बढ़ने लगा। शिक्षित मध्य वर्ग के लोग उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुए।

23 जनवरी, 1830 को राजा राममोहन राय ने ब्रह्म मंदिर का उद्घाटन किया और उसके संचालन के लिए एक ट्रस्ट की स्थापना की। ट्रस्ट के घोषणा-पत्र में कहा गया था कि जो भी सृष्टि के निर्माता और पालनकर्त्ता एक ईश्वर में विश्वास रखता है, वह पूजा-उपासना के लिए इस मंदिर का उपयोग कर सकता है। मंदिर में किसी चित्र या मूर्ति की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती थी। राजा राममोहन राय इस मंदिर को किसी

एक विशेष संप्रदाय की संपत्ति नहीं बनाना चाहते थे। राममोहन राय का लक्ष्य भारत में वेदांत की शिक्षाओं के आधार पर एकेश्वरवाद का पुनरुत्थान करना था।

देवेन्द्रनाथ टैगोर

1833 में इंगलैंड में राजा राममोहन राय की मृत्य हो गई। उनकी मृत्यु के बाद ब्रह्मसमाज संकट में पड़ गया। द्वारकानाथ टैगोर तथा पंडित रामचन्द्र विद्यावागीश किसी न किसी प्रकार ब्रह्मसमाज की दीपशिखा को जगाए रखने में सफल हुए। द्वारकानाथ टैगोर ने उसे आर्थिक सहायता दी और पंडित रामचन्द्र विद्यावागीश ब्रह्मसमाज के अनुयाइयों का आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन करते रहे।

तत्त्वबोधिनी सभा

द्वारकानाथ टैगोर के सबसे बड़े पुत्र देवेन्द्रनाथ टैगोर का राममोहन राय से संपर्क रहा था। 1838 में वे ब्रह्मसमाज में सम्मिलित हुए और उन्होंने तत्त्वबोधिनी सभा की स्थापना की। तत्त्वबोधिनी सभा में अनेक धनी मानी और प्रभावशाली व्यक्ति सम्मिलित हुए। देवेन्द्रनाथ टैगोर को ब्रह्मसमाज की स्थिति देखकर दुख हुआ। समाज के अधिकांश सदस्य घर पर मूर्तिपूजा करते थे और उनकी अवतारवाद में आस्था थी। समाज का कोई संगठन नहीं था, कोई संविधान नहीं था, कोई सदस्यता नहीं थी कोई प्रतिज्ञापन नहीं था। देवेन्द्रनाथ टैगोर ने मंदिर के लिए एक प्रतिज्ञापन की रचना की और प्रत्येक अनुयायी के लिए यह आवश्यक कर दिया कि वह वेदांत की शिक्षाओं के अनुसार अपने जीवन को ढाले तथा नित्यप्रति गायत्री मंत्र का पाठ करे। 1843 में देवेन्द्रनाथ ने बीस सहयोगियों के साथ रामचन्द्र विद्यावागीश के हाथों ब्रह्मसमाज की दीक्षा ली और प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किए। यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। इसके परिणामस्वरूप ब्रह्मसमाज आध्यात्मिक बिरादरी बन गया।

देवेन्द्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में ब्रह्मसमाज की उन्नति होने लगी। राममोहन राय की रचनाओं का दुबारा प्रकाशन हुआ और *तत्त्वबोधिनी पत्रिका* नामक एक मासिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी। इस पत्रिका के संपादक अक्षय कुमार दत्त थे। देश के विभिन्न भागों में समाज की शाखाएं खुलीं और प्रचारकों का एक जत्था तैयार किया गया। नौजवानों को धार्मिक शिक्षा देने के लिए एक विद्यालय की भी स्थापना की गई।

वेदों की ओर झुकाव

1845 में ब्रह्म समाज के नेताओं का ईसाई मिश्नरियों से धार्मिक विषयों पर वाद-विवाद हुआ। इस वाद-विवाद में ब्रह्म नेताओं ने वेदों को अपने धर्म का आधार बनाया। उन्होंने इस धर्म का नाम वेदांत रखा। वेदों को अपौरुषेय भी कहा गया। तत्त्वबोधिनी पत्रिका के संपादक अक्षक कुमार दत्त को यह नीति पंसद नहीं आई। वे

बुद्धिवादी व्यक्ति थे। इन मतभेदों को दूर करने के लिए ब्रह्मसमाज ने चार युवकों को 1845 में ही वेदों का अध्ययन करने के लिए बनारस भेजा। देवेन्द्रनाथ टैगोर स्वयं भी वेदों की शिक्षाओं के बारे में सही जानकारी पाने के लिए बनारस गए। इस अध्ययन और अनुसंधान के फलस्वरूप ब्रह्म समाज ने वेदों की अपौरुषेयता का सिद्धांत त्याग दिया। लेकिन देवेन्द्रनाथ-ब्रह्मसमाज आंदोलन को पुराने ढर्रे पर ही चलाते रहे। हिन्दुओं के प्राचीन धर्मशास्त्रों के प्रति उनकी श्रद्धा पहले जैसी बनी रही। उन्होंने उपनिषदों के कुछ उद्धरण संकलित किए जिनमें एकेश्वरवाद का प्रतिपादन था।

केशवचन्द्र सेन

1850 और 1856 के बीच ब्रह्मसमाज की गतिविधियों का क्षेत्र व्यापक हुआ। उसके नेता स्त्री-शिक्षा, विधवा-पुनर्विवाह, मद्यनिषेध और बहु विवाह विरोध जैसे कार्यक्रमों का प्रतिपादन करने लगे। ब्रह्म समाज की इस लहर के प्रतिनिधि प्रवक्ता केशवचन्द्र सेन थे। वे समाज में 1857 में एक पूर्णकालिक प्रचारक के रूप में सम्मिलित हुए थे। 1862 में वे समाज के आचार्य अथवा मुख्य धार्मिक पदाधिकारी बन गए। उन्होंने ब्रह्मसमाज में एक नई चेतन्रा का संचार किया और अंतर्जातीय विवाहों पर ज़ोर दिया। केशवचन्द्र सेन के व्यक्तितत्व के फलस्वरूप ब्रह्मसमाज के प्रभाव में वृद्धि हुई। पुरानी पीढ़ी के लोगों को विधवा पुनर्विवाह, अंतर्जातीय विवाह और स्त्रियों के बीच पर्दा-प्रथा का अंत जैसे सक्रिय समाज सुधार के कार्यक्रम पसंद नहीं थे। फलत: पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के लोगों के बीच फूट पड़ गई। नई पीढ़ी यह नहीं चाहती थी कि जनेऊ पहनने वाले ब्राह्मण प्रवचन दें। केशवचन्द्र सेन परम्परागत ब्रह्मसमाज से अलग हो गए और उन्होंने भारतीय ब्रह्मसमाज नाम से अपना एक अलग संगठन खड़ा किया। पुराने ब्रह्मसमाज का नाम आदि ब्रह्मसमाज रहा। इस विभाजन के कुछ ही समय बाद देवेन्द्रनाथ टैगोर ब्रह्मसमाज से हट गए और उनके स्थान पर राजनारायण बोस आदि ब्रह्मसमाज के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। ब्रह्मसमाज के इस विभाजन के दो मुद्दे थे। देवेन्द्रनाथ टैगोर मानते थे कि ब्राह्मण धर्म ही हिन्दू धर्म है। इसके विपरीत केशवचन्द्र सेन की मान्यता थी कि ब्रह्मधर्म व्यापक और सार्वभौम है। केशवचन्द्र सेन मूर्तिपूजा की भांति ही जाति-प्रथा को भी निदंनीय मानते थें।

ब्रह्मसमाज का अखिल भारतीय रूप

केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्मसमाज के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए 1864-68 में बम्बई, मद्रास और उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों की यात्राएं कीं। उनके प्रयत्नों से भारत के अनेक नगरों में ब्रह्मसमाज की शाखाएं स्थापित हुई। केशवचंद्र सेन ने ब्रह्मसमाज आंदोलन को अखिल भारतीय रूप दे दिया। उनका आंदोलन व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक समानता के सिद्धांत पर आधारित था। केशवचन्द्र सेन और उनके अनुयायी

राजनीति से दूर रहे और ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति की घोषणा करते रहे। ब्रिटिश सरकार ने भी केशवचन्द्र सेन की भारत और इंगलैंड दोनों देशों में सराहना की। उनकी सिफारिश पर ब्रिटिश सरकार ने 1872 में सिविल मैरिज एक्ट पास किया। इस अधिनियम के अनुसार कन्या की न्यूनतम विवाह योग्य आयु चौदह वर्ष और वर की अठारह वर्ष निर्धारित की गई।

भारतीय सुधार संघ

1870 में केशवचन्द्र सेन ने भारतीय सुधार संघ अथवा इंडियन रिफार्म्स एसोसियेशन की स्थापना की। इस संघ के पांच विभाग थे : 1. स्त्री-शिक्षा, 2. श्रमिकों की शिक्षा, 3. सस्ता साहित्य, 4. मद्यनिषेध और 5. परोपकार।

1872 में केशवचन्द्र सेन ने अपनी पुत्री का विवाह कूचबिहार के अवयस्क राजा से तय किया। वर और कन्या दोनों की आयु विवाह योग्य निर्धारित आयु से कम थी। यह विवाह भी ब्रह्मसमाज के नियमों के अनुसार न होकर हिन्दू विधि से संपन्न हुआ। ब्रह्मसमाज के नौजवानों ने केशवचन्द्र सेन की इस कार्यवाही का विरोध किया और 15 मई, 1878 को ब्रह्मसमाज में फिर विभाजन हुआ। शिवनाथ शास्त्री और आनंदमोहन बोस नए वर्ग के नेता थे और उन्होंने साधारण समाज की स्थापना की।

ब्रह्मसमाज का प्रभाव

हिन्दू धर्म की ईसाई मिश्नरियों के हमलों से रक्षा करने तथा सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों को दूर करने में ब्रह्मसमाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उसके बाद हिन्दू धर्म और समाज में सुधार करने के लिए अनेक आंदोलन उठे।

प्रार्थना समाज

महाराष्ट्र में ब्रह्मसमाज प्रार्थना समाज के रूप में उभरा। इसकी स्थापना 1867 में केशवचन्द्र सेन की प्रेरणा से हुई थी। प्रार्थना समाज के अनुयायी अपने आप को हिन्दू धर्म का अविभाज्य अंग मानते थे। प्रार्थना समाज का मुख्य आग्रह धार्मिक विश्वासों पर नहीं बल्कि समाज-सुधार के कार्यक्रमों पर था। सामाजिक सुधार के क्षेत्र में उन्होंने चार मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया। 1. जाति-प्रथा का विरोध, 2. स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए विवाह-योग्य आयु में वृद्धि, 3. विधवा पुनर्विवाह और 4. स्त्री-शिक्षा। प्रार्थना समाज के प्रमुख नेता थे न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे (1842-1901), आर० जी० भंडारकर (1837-1925) और एन० जी० चंद्रावरकर।

महाराष्ट में दलित वर्ग मिशन (द डिप्रेस्ड क्लासेज़ मिशन), सामाजिक सेवा संघ (सोशल सर्विस लीग) और दकन एजूकेशन सोसायटी ने सामाजिक और शैक्षिक सुधारों के संबंध में उल्लेखनीय कार्य किया है।

रामकृष्ण मिशन[10]

स्वामी रामकृष्ण परमहंस उन्नीसवीं सदी के भारत के सबसे बड़े संत और आध्यात्मिक पुरुष थे। ब्रह्मसमाज बंगाल के बुद्धिजीवी वर्ग को रास आया था लेकिन वहां की अधिकांश जनता चैतन्य महाप्रभु की भक्ति से प्रभावित थी। स्वामी रामकृष्ण परमहंस भक्ति के साक्षात् अवतार थे। वे पढ़े-लिखे नहीं थे, धार्मिक तर्क-वितर्क से कोसों दूर थे लेकिन उनकी आध्यात्मिक अनुभूति और साधना गहरी थी। स्वामी रामकृष्ण का जन्म 1834 में हुआ और मृत्यु केवल 52 वर्ष की अवस्था में 1886 में। वे कलकत्ते के निकट दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में पुजारी थे और उनका अधिकांश जीवन इस मंदिर में व्यतीत हुआ था। उनके लिए भारतीय चिंतन, संस्कृति और साधना अध्ययन की नहीं, अनुभव की वस्तु थी। उनकी दृष्टि में राम, कृष्ण, ईसा, अल्ला एक ही परमात्मा के विभिन्न नाम थे। रामकृष्ण ने सभी धर्मो को सच्चा माना। उन्होंने इन धर्मो द्वारा प्रतिपादित साधना-पद्धतियों का उपयोग कर अंतिम सत्य का साक्षात्कार किया। उनकी दृष्टि में धर्म के प्रतीकों अथवा बाहरी आडम्बरों का महत्व न था। वे मन की पवित्रता और निश्छलता को धर्म का सच्चा तत्व समझते थे। उन्होंने ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज की भांति मूर्ति पूजा का भी बहिष्कार नहीं किया। उनका विचार था कि यदि सच्चे मन से मूर्ति पूजा की जाए तो वह ईश्वर-भक्ति में सहायक हो सकती है। रामकृष्ण परमहंस निस्वार्थ भाव से ईश्वर की उपासना पर जोर देते थे। उनके विचार से दुखी और अभावग्रस्त मानवता की सेवा करना भी ईश्वर की ही सेवा करना था।

स्वामी विवेकानंद

रामकृष्ण परमहंस के विचारों को उनके मेधावी शिष्य विवेकानन्द ने कार्यरूप में परिणत किया। उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना द्वारा समाज सेवा का आदर्श प्रस्तुत किया।

स्वामी विवेकानंद का जीवनवृत्त

स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 ई० को मकर संक्रांति के दिन कलकत्ते के दत्त परिवार में हुआ था। उनका असली नाम नरेन्द्रनाथ था। उनके पिता विश्वनाथ दत्त बंगाल के जाने-माने वकील थे और माता भुवनेश्वरी देवी धर्मपरायण साध्वी महिला थीं। स्वामी विवेकानंद के दादा दुर्गाचरण दत्त साधु-प्रकृति के व्यक्ति थे और स्वामी विवेकानंद को आध्यात्मिक प्रवृत्ति विरासत में अपने दादा जी से प्राप्त हुई थी। स्वामी जी की बचपन से ही पूजा-पाठ में रुचि थी और धार्मिक तथा आध्यात्मिक प्रश्न उनको बेचैन किया करते थे। स्वामी जी ने आरम्भिक शिक्षा घर पर

तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा स्थापित मैट्रोपोलिटन कालिज में प्राप्त की। उन्होंने कालिज की शिक्षा प्रेसीडेन्सी कालिज तथा स्काट्स जनरल मिशनरी वोर्ड द्वारा स्थापित जनरल असेम्बली इंस्टीट्यूशन में प्राप्त की। उनके प्रधानाचार्य डब्ल्यू० डब्ल्यू० हेस्टे ने उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर' कहा था कि मैंने उनके जैसा योग्य छात्र अपने जीवन में कभी नहीं देखा। मुझे विश्वास है कि वे जीवन में नाम कमाएंगे।

स्वामी विवेकानंद का अध्ययन

स्वामी जी ने कालिज के पाठ्य विषयों के अतिरिक्त साहित्य, दर्शन, धर्म और प्राचीन एवं आधुनिक इतिहास का भी अध्ययन किया। स्वामी जी ने 1884 में बी० ए० पास कर लिया। इसी वर्ष उनके पिता चल बसे। परिवार के भरण-पोषण का भार स्वामी जी के कंधों पर आ पड़ा और उनकी आगे की पढ़ाई समाप्त हो गई।

आध्यात्मिक जिज्ञासा

स्वामी जी आरम्भ से ही जिज्ञासु युवक थे। उनके ऊपर ब्रह्मसमाज का काफी प्रभाव पड़ा था। लेकिन ब्रह्मसमाज उनकी आध्यात्मिक जिज्ञासा को शांत न कर सका। उन्होंने अनेक धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्तियों से भेंट की, पर उनकी आध्यात्मिक भूख शांत न हो सकी।

स्वामी रामकृष्ण से भेंट

1881 में स्वामी विवेकानंद ने दक्षिणेश्वर जाकर स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दर्शन किए। स्वामी रामकृष्ण ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द) की भावी संभावनाओं को भांप लिया। कहते हैं नरेन्द्र ने स्वामी रामकृष्ण से प्रश्न किया, "क्या आपने ईश्वर को देखा है।" स्वामी रामकृष्ण ने सहज भाव से उत्तर दिया, "हां, मैंने ईश्वर को देखा है, उसी तरह जैसे कि मैं तुम्हें देख रहा हूं।"

गुरु-शिष्य संबंध

रामकृष्ण और नरेन्द्र में तत्काल ही गुरु-शिष्य का संबंध स्थापित हो गया। नरेन्द्र अकसर दक्षिणेश्वर जाने लगे।

शक्तिवाद

एक बार श्री रामकृष्ण ने नरेंन्द्र को स्नेह से पुकारा और अपने पास बैठाया। उन्होने अपना हाथ नरेन्द्र के सर पर रख दिया। तब नरेन्द्र को लगा-

"उनके स्पर्श ने तत्क्षण मेरे भीतर एक अभिनव अनुभूति को जन्म दिया। अपनी खुली आखों से मैंने देखा कि कमरे की दीवारें और सारी चीजें जोरों से चक्कर

मारती हुई शून्य में विलीन हो गईं और सारा विश्व मेरे अहं को लेकर एक रहस्यमय सर्वव्यापी शून्यता में लीन होने ही जा रहा है। मैं बुरी तरह डर गया और मैंने सोचा कि, बस अब मैं मरने ही जा रहा हूं। मैं अपने को रोक न सका और चिल्ला उठा, 'अजी यह तुम मेरे साथ क्या कर रहे हो। घर में मेरे माता-पिता हैं।' यह सुन कर वह जोरों से हंसे और मेरी छाती को सहलाते हुए बोले, 'ठीक है। अभी रहने दो। समय से सब होगा।' आश्चर्य, ज्यों ही उन्होंने यह कहा त्यों ही सारा विभिन्न अनुभव गायब हो गया।"

विवेक, वैराग्य, ज्ञान

रामकृष्ण के प्रभाव से नरेन्द्र ने विवाह नहीं किया। पिता की मृत्यु के बाद नरेन्द्र ने रामकृष्ण परमहंस से प्रार्थना की कि उनके परिवार के भरण-पोषण का प्रबंध हो जाए। रामकृष्ण ने नरेन्द्र को सलाह दी कि वे स्वयं ही मां काली से अपने कष्ट निवारण की प्रार्थना करें। नरेन्द्र ने मां काली से कई बार इस प्रकार का अनुरोध करने का प्रयत्न किया लेकिन वे मां से किसी भौतिक वस्तु की मांग न कर सके। वे मां से सिर्फ यही कह सके, "मां, मुझे विवेक दो, वैराग्य दो, ज्ञान दो। मां, तुम्हारी कृपा से मैं सदा ही तुम्हें देख सकूं।"

रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु

1885 में स्वामी रामकृष्ण परमहंस को गले का कैंसर हो गया और 1886 में उनका शरीर शांत हो गया। मृत्यु से तीन दिन पहले स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र को 'शक्तिपात' द्वारा अपनी संपूर्ण शक्तियां प्रदान कीं और कहा, "आज तुझे सर्वस्व देकर मैं फकीर बन गया।" स्पर्श के साथ ही नरेन्द्र को निर्विकल्प समाधि के आनंद की अनुभूति हुई। यह वह लोकोत्तर अनुभूति थी जिसे नरेन्द्र इस जीवन में प्राप्त करना चाहते थे। अब वे नरेन्द्र न रहकर स्वामी विवेकानन्द हो गए और उनके जीवन में भक्ति, कर्म और ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित होने लगी।

भारत-यात्रा

1888 में स्वामी विवेकानंद ने सारे भारत की यात्रा की। इस यात्रा में स्वामी जी ने भारत के विभिन्न प्रांतों के रीति-रिवाजों तथा आचार-विचारों का परिचय प्राप्त किया। स्वामी जी जनता की गरीबी और अशिक्षा देखकर बहुत व्यथित हुए।

विश्व धर्म सम्मेलन

1893 में स्वामी जी ने अमरीका के शिकागों नगर में आयोजित विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लिया। शिकागो धर्म-सम्मेलन में स्वामी जी ने अपना भाषण

'अमरीका के भाइयों और बहिनो' से आरम्भ किया था। स्वामी जी के इन आरंभिक शब्दों ने ही श्रोताओं के मन पर बिजली का सा असर डाला और सभा कक्ष दो मिनट तक तालियों से गूंजता रहा। धर्म सभा में स्वामी जी का भाषण हिन्दू धर्म के आधारभूत सिद्धांतों के ऊपर हुआ था। स्वामी जी ने अपनी ओजस्वी वाणी और तर्क-युक्त शैली में यह सिद्ध किया कि हिन्दू धर्म में सांप्रदायिकता, संकीर्णता और धर्मान्धता के लिए कोई स्थान नहीं है। हिन्दू धर्म वास्तव में विश्वधर्म है। हिन्दू धर्म यह नही चाहता कि दूसरे धर्म के लोग अपना धर्म त्याग कर उसकी शरण में आएं। हिन्दू धर्म सिर्फ यह चाहता है कि सभी धर्मों के मानने वाले अपने-अपने धर्मों का सच्चे मन से पालन करें।

अमरीका में भाषण

धर्म सभा में स्वामी जी के भाषण का सारी अमरीकी जनता पर प्रभाव पड़ा। स्वामी जी को अमरीका की विभिन्न संस्थाओं और नगरों से व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया। स्वामी जी ने अनेक स्थानों पर भाषण दिए, अमरीका वासियों के मन में भारत और हिन्दू धर्म के प्रति प्रबल आकर्षण पैदा किया।

इंगलैंड में

अगस्त, 1895 में स्वामी विवेकानंद इंगलैंड गए। स्वामी जी ने अपने व्याख्यानों द्वारा इंगलैंड में भी ख्याति अर्जित की। यहीं उनकी भेंट मागरिट ई० नोबेल से हुई जो स्वामी जी की शिष्या बन गई तथा सिस्टर निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हुई।

अमरीका की दूसरी यात्रा

दिसम्बर, 1895 में स्वामी विवेकानंद को इंगलैंड से पुन: अमरीका जाना पड़ा। कुछ महीनों तक अमरीका में दूसरी बार रह कर तथा वहां हिन्दू धर्म का प्रचार करने के उपरांत स्वामी जी अप्रैल, 1896 में दूसरी बार इंगलैंड आए। इस बार इंगलैंड में स्वामी जी ने प्रसिद्ध विद्वान मैक्समूलर से भेंट की और मैक्समूलर को स्वामी रामकृष्ण परमहंस के बारे में सामग्री उपलब्ध कराई। प्रो० मैक्समूलर ने इस सामग्री के आधार पर रामकृष्ण परमहंस की जीवनी लिखी। इस यात्रा में स्वामी जी स्विट्जरलैंड तथा जर्मनी भी गए। जर्मनी में उन्होंने सुप्रसिद्ध संस्कृत दार्शनिक पाल डायसन से भेंट की।

भारत वापसी

स्वामी विवेकानंद पश्चिमी देशों में भारतीय दर्शन का प्रचार कर 1987 के आरंभ में भारत लौट आए। भारत में उनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। स्वदेश वापस आने पर उन्होने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस समय रामकृष्ण मिशन की 118 शाखाएं हैं। मिशन का प्रधान कार्य वेदांत की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप देना है। मिशन के

अपने औषधालय, विद्यालय, छात्रावास, पुस्तकालय, वाचनालय, अनाथालय और प्रकाशन-केंद्र हैं।

मृत्यु

भारत आने पर स्वामी जी अस्वस्थ रहने लगे। उन्हें मधुमेह का रोग था। 4 जुलाई, 1902 को उनका देहांत हो गया।

व्यक्तित्व के विविध पहलू

स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व के अनेक पहलू हैं। वे दार्शनिक, समाजसुधारक धर्माचार्य, राष्ट्रवादी, और शिक्षक थे।

अद्वैतवाद

दर्शन के क्षेत्र में स्वामी विवेकानंद अद्वैतवादी थे। अद्वैत वेदांत का प्रमुख तत्त्व यह है कि ब्रह्म अथवा आत्मा ही एकमात्र तत्त्व है। जगत मिथ्या है। जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है। जगत माया है। वह स्वप्न के समान है। ब्रह्मज्ञान होने पर जगत और जीवन का उसी प्रकार निराकरण हो जाता है जिस प्रकार रस्सी का ज्ञान होने पर सर्प का निराकरण हो जाता है। ज्ञान ही मोक्ष प्राप्त करने का एकमात्र साधन है। मानव मन निरपेक्ष सत्ता की जो उच्चतम धारणा कर सकता है, वही ईश्वर है। सृष्टि अनादि है। उसी प्रकार ईश्वर भी अनादि है। स्वामी जी ने अपनी रचनाओं और भाषणों में प्रकृति, माया, आत्मा, आत्मानुभूति, ज्ञान, जीवन का लक्ष्य, मोक्ष, योग, ध्यान, पुनर्जन्म, मनोविज्ञान, शिक्षा आदि विषयों पर विचार किया है। स्वामी जी ने जात-पात का विरोध किया। वे स्वाधीनता के पक्षपाती थे। उन्होंने लोकतंत्र और समाजवाद का समर्थन किया है। स्वामी जी स्त्री-शिक्षा के हिमायती थे। उन्होंने जनसमूह की शिक्षा पर बल दिया है। स्वामी जी को हिन्दू धर्म की मुख्य विशेषता उसकी सार्वभौमिकता में दिखाई देती थी। उन्होंने अंध-विश्वासों की कठोर आलोचना की। वे देश में विज्ञान की शिक्षा का प्रसार आवश्यक मानते थे। उनकी दृष्टि में धर्म और विज्ञान का समन्वय मानवता के कल्याण के लिए आवश्यक था। विवेकानंद की सबसे बड़ी देन है कि उन्होंने पराधीन भारतीयों को अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति गर्व करना सिखाया। उन्होंने भारतीयों को आत्मविश्वास का पाठ पढ़ाया और देश की सोती हुई चेतना को प्रबुद्ध किया। जहां वे भारत की आध्यात्मिक महानता और सांस्कृतिक गरिमा के प्रशंसक थे, वहीं वे परिचय की व्यावहारिकता तथा संगठन शक्ति के भी पोषक थे। वे इन दोनों तत्त्वों- भारत की आत्मा तथा पश्चिम की काया-का समन्वय कर एक नूतन मानवता की सृष्टि करना चाहते थे।

आर्यसमाज[11]

आर्यसमाज की स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती ने 1875 में की थी। वे शुद्ध भारतीय संस्कृति की उपज थे। उन्हें अंग्रेजी अथवा पाश्चात्य जीवन-शैली का ज्ञान न था। उनका जन्म काठियावाड़ (गुजरात) की मौरवी रियासत के टंकारा कस्बे में एक धर्म परायण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता शिवभक्त थे। स्वामी दयानंद का बचपन का नाम मूलशंकर था। कहते हैं शिवरात्रि के पर्व पर उन्होंने शिवमंदिर में रात को एक चूहे को शिव की मूर्ति पर चढ़ते हुए देखा। उन्होंने सोचा जो शिवमूर्ति चूहे से अपनी रक्षा नहीं कर सकती, वह अपने भक्तों की रक्षा कैसे करेगी। यहीं से स्वामी दयानंद का मूर्तिपूजा से विश्वास हट गया। स्वामी दयानंद जब छोटे थे तभी उनकी बहिन तथा चाचा की मृत्यु हो गई। इसका भी उनके मन पर बुरा प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने भक्ति का मार्ग खोजने का निश्चय किया। 21 वर्ष की आयु में वैवाहिक जीवन के बंधनों से बचने के लिए स्वामी दयानंद घर से बाहर निकल पड़े।

कुछ दिनों बाद वे पकड़े गए और पिता ने उन्हें पहरे में रख दिया। लेकिन वे दुबारा घर से भाग गए और इस बार उन्हें पकड़ने के सारे प्रयत्न विफल हुए।

गुरु की खोज

स्वामी दयानंद पन्द्रह वर्ष तक सच्चे गुरु की खोज में भटकते रहे। इस बीच उनकी अनेक योगियों, सिद्धों तथा महात्माओं से भेंट हुई। उन्होंने योगाभ्यास किया, तथा पूर्णानन्द सरस्वती नामक सन्यासी से दीक्षा ग्रहण की। वे हरिद्वार, ऋषिकेश, टिहरी, रुद्रप्रयाग, जोशीमठ, बदरीनारायण, रामपुर, मुरादाबाद, फर्रुखाबाद, कानपुर, काशी, इलाहाबाद तथा मथुरा गए।

स्वामी विरजानंद

1858 में स्वामी दयानंद की मथुरा में प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानंद से भेंट हुई। स्वामी विरजानंद पंजाब के कर्त्तारपुर नगर के निकटवर्ती किसी गांव के रहने वाले थे। अल्पायु में ही उन्होंने घर का त्याग कर सन्यास जीवन अपना लिया था और अनेक स्थानों का भ्रमण करने के बाद वे मथुरा आकर बस गए थे। यहीं 91 वर्ष की आयु में 1868 में उनका देहावसान हुआ था।

शिक्षण

जिस समय स्वामी दयानंद की स्वामी विरजानंद से भेंट हुई थी, विरजानंद जी की आयु 81 वर्ष और स्वामी दयानंद की आयु 34 वर्ष थी। स्वामी विरजानंद प्राचीन भारतीय विद्याओं के उत्कट पंडित, मनीषी शिक्षक और स्वतंत्र चिंतक थे। वे मूर्तिपूजा,

कुसंस्कारों तथा बहुदेववाद के विरुद्ध थे। स्वामी दयानंद ने विरजानंद के चरणों में बैठकर सात वर्षों (1865) तक वेदों का अध्ययन किया। स्वामी विरजानंद ने गुरु-दक्षिणा के रूप में स्वामी दयानंद से यही चाहा कि तुम संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करो और हिन्दू धर्म को उसकी विकृतियों से शुद्ध करो।[12]

1865 से स्वामी दयानंद ने धर्मोपदेश का कार्य आरंभ किया जो 1883 में उनकी मृत्यु-पर्यन्त चलता रहा।

भारत-यात्रा

स्वामी दयानंद दो वर्ष तक आगरे में रहे जहां उन्होंने अठारह-अठारह घंटों तक समाधि लगाने का अभ्यास किया। इसके बाद उन्होंने ग्वालियर, करौली, जयपुर आदि अनेक देशी रियासतों का भ्रमण किया और वहां के नरेशों को वैदिक मत की शिक्षा दी। बीच में स्वामी दयानंद अपने गुरु का दर्शन करने के लिए एक बार और आए थे। स्वामी विरजानंद अपने शिष्य की लगन को देखकर बड़े प्रसन्न हुए थे।

स्वामी दयानंद ने 1867 में हरिद्वार में कुंभ मेले के अवसर पर वैदिक धर्म का प्रचार किया। उन्होंने फर्रुखाबाद, रामगढ़, कानपुर, प्रयाग, काशी, कासगंज, जलेसर, मिर्जापुर आदि स्थानों में शास्त्रार्थ किए और वैदिक पाठशालाएं खोलीं। स्वामी जी कलकत्ते भी गए थे और वहां उनकी भेंट ब्रह्मसमाज के नेताओं- देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन से हुई थी। यद्यपि मूर्तिपूजा तथा वेदों की महत्ता के बारे में ब्रह्मसमाज और स्वामी दयानंद के विचार एक-दूसरे से मिलते थे, पर दोनों मिल कर काम करने के लिए सहमत न हो सके।

आर्यसमाज की स्थापना

स्वामी दयानंद ने अपने विचारों को संख्यागत आधार देने के लिए 10 अप्रैल, 1875 को बम्बई में आर्यसमाज की नींव डाली। आर्यसमाज के नियम ये हैं :

1. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनंत, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करने योग्य है।
3. वेद सत्यविद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4. सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर के करना चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किंतु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

बम्बई में आर्य समाज की स्थापना करने के बाद स्वामी दयानंद ने उत्तर भारत के विभिन्न शहरों में आर्य समाज का प्रचार किया और आर्य समाज मंदिरों की नींव डाली। पंजाब, राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश में स्वामी दयानंद को विशेष सफलता मिली।

हिंदुओं की दुर्दशा

स्वामी दयानंद को हिन्दुओं की दुर्दशा देखकर बहुत क्लेश पहुंचता था। हिन्दू वैदिक आदर्शों को प्रायः भूल चुके थे। उनमें अनेक सामाजिक कुरीतियां व्याप्त थीं। मध्यकाल में हिंदुओं ने बड़ी संख्या में इस्लाम स्वीकार किया था। अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई धर्म के प्रचार के कारण हिन्दू ईसाई धर्म की ओर भी आकृष्ट हो रहे थे। देश राजनीतिक पराधीनता के पाश में जकड़ा हुआ था। क्षत्रिय राजे विलासिता में डूबे हुए थे। उनमें स्वाभिमान न के बराबर था। स्वामी दयानंद ने हिन्दुओं को इन बुराइयों से उबारने की और उनमें नया आत्म-विश्वास पैदा करने की कोशिश की।

राजघरानों से संपर्क

स्वामी दयानंद ने राजस्थान के अनेक राजघरानों से संपर्क स्थापित किया। उदयपुर और जोधपुर के महाराणा उनके शिष्य बन गए।

शास्त्रार्थ

स्वामी दयानंद शास्त्रार्थ के द्वारा अपने विचारों का प्रचार करते थे। शास्त्रार्थ में दूसरे धर्मों विशेष कर इस्लाम और ईसाई धर्म के विद्वानों से उनका खुले आम तर्क-वितर्क होता था। स्वामी दयानंद ओजस्वी वक्ता थे और उन्हें तर्क में पराजित करना असंभव था।

मृत्यु

स्वामी दयानंद के विरोधियों की भी कमी न थी। स्वामी जी को कटु सत्य कहने में भी निझक न थी। स्वामी जी का देहांत 30 अक्टूबर, 1883 को मंगलवार के दिन अजमेर में हुआ था। इसके एक महीने पहले वे जोधपुर में प्रचारार्थ गए थे। वहां उन्होंने जोधपुर नरेश के आचार-विचार की आलोचना की थी। महाराज ने ऋषि के उपदेश से अपने दुष्कर्म पर पश्चाताप किया। इससे नन्हीं जान नामक एक वेश्या क्रुद्ध हो गई। उसने षड़यंत्र द्वारा ऋषि के रसोइये से भोजन में विष मिलवा दिया। स्वामी दयानंद ने अपने ब्रह्मचर्य के बल से इस विष को पचाने की कोशिश की और वे विष खाने के बाद प्रायः एक महीने तक जीवित रहे। उनको विष के प्रभाव से अतिसार का रोग लग गया। वे जोधपुर से आबू और आबू से अजमेर इलाज के लिए आए। लेकिन होनी न टल सकी। 1883 में दीपावली के दिन सायंकाल वेदमंत्रों का उच्चारण करते हुए स्वामी दयानंद ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

श्रद्धांजलियां

स्वामी दयानंद का अस्वाभाविक अंत भारतीय समाज के लिए एक बहुत बड़ा झटका था।

महादेव गोविंद रानाडे, महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, कांग्रेस के संस्थापक ए० ओ० ह्यूम, सर सैयद अहमद खां, मैडम ब्लावात्स्की और उस समय के अन्य अनेक प्रमुख व्यक्तियों ने स्वामी दयानंद की अकाल मृत्यु पर खेद प्रकट किया था और उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलियां दी थीं।

रचनाएं

स्वामी दयानांद ने छोटी बड़ी अनेक पुस्तकों की रचना की जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं :

1. **सत्यार्थ प्रकाश** : यह स्वामी दयानंद की सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक है।
2. **संस्कार विधि** : इस पुस्तक में मनुष्य जीवन के 16 संस्कारों का विवेचन है।
3. **ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका** : इस पुस्तक में स्वामी दयानंद की वेद विषयक दृष्टि का उन्मीलन है।
4. **यजुर्वेद भाष्य**
5. **ऋग्वेद भाष्य** : यह भाष्य सातवें मंडल तक ही हो पाया था।
6. **आर्याभिविनय** : इसमें 100 प्रार्थना मंत्र अर्थसहित दिए गए हैं।
7. **पंच महायज्ञविधि** : इस पुस्तक में संध्या, हवन, बलिवैश्वदेव, पितृयज्ञ

और अतिथि यज्ञ जैसे दैनिक यज्ञों की विधि का विवेचन है।

8. व्यवहार भानु : यह एक छोटी-सी पुस्तिका साधारण सदाचार के ऊपर है।
9. गोकरुणानिधि : यह एक छोटी-सी पुस्तिका पशु रक्षा और गोरक्षा के विषय में है।
10. वेदांत प्रकाश : यह संस्कृत व्याकरण का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें स्वामी दयानंद ने पाणिनी की अष्टाध्यायी का विवेचन किया है।

सत्यार्थ प्रकाश का विश्लेषण

स्वामी दयानंद के उपर्युक्त ग्रंथों में सत्यार्थ प्रकाश ग्रंथ सबसे महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में 14 अध्याय हैं जिन्हें समुल्लास कहा गया है। इन समुल्लासों का विवरण इस प्रकार है :

1. प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या।
2. द्वितीय समुल्लास में संतानों की शिक्षा।
3. तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रंथों के नाम और पढ़ने-पढ़ाने की रीति।
4. चौथे समुल्लास में विवाह और गृहस्थाश्रम का व्यवहार ।
5. पंचम समुल्लास में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम की विधि।
6. छठे समुल्लास में राजधर्म।
7. सातवें समुल्लास में वेदेश्वर विषय ।
8. आठवें समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय।
9. नवें समुल्लास में विद्या, अविद्या, बंध और मोक्ष की व्याख्या।
10. दसवें समुल्लास में आचार, अनाचार और भक्ष्य-अभक्ष्य विषय।
11. ग्यारहवें समुल्लास में देश के विभिन्न मतों का खंडन-मंडन।
12. बारहवें समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैनमत का विषय।
13. तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत का विषय।
14. चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय।
15. चौदहवें समुल्लास के अंत में स्वमत प्रकाश है। इसमें स्वामी दयानंद ने अपने बुनियादी सिद्धांतों को उजागर किया है।

स्वमत विवेचन

स्वामी दयानंद ने स्वमत विवेचन के आरम्भ में ही कह दिया है कि उनका

विचार किसी नए मत की स्थापना का नहीं है। वे अपना मत उसी को मानते हैं जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। स्वामी जी का कहना है कि जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना उनको अभीष्ट है। भारत में अनेक मतमतांतर हैं, लेकिन स्वामी जी ने उनमें से किसी के प्रति पक्षपात प्रकट नहीं किया है। भारत वर्ष या अन्य देशों में जो भी अधर्मयुक्त चाल-चलन है, स्वामीजी ने उसकी निंदा की है। उनकी दृष्टि में मनुष्य की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह मननशील हो। उसे दूसरों के सुख-दुख तथा हानि-लाभ को समझना चाहिए। उसे अपनी पूरी शक्ति से धर्मात्माओं की रक्षा करनी चाहिए और अन्यायी व्यक्तियों का विरोध। इस संबंध में उन्होंने भर्तृहरि, महाभारत, मनुस्मृति तथा अन्य धर्मशास्त्रों के उद्धरणों द्वारा अपने दृष्टिकोण की पुष्टि की है। स्वामी जी ने निम्नलिखित सिद्धांतों को अपने मत के अंतर्गत रखा है :

1. प्रथम "ईश्वर" को जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानंदादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार सर्वव्यापक, अजन्मा, अनंत, सर्वशक्तिमान, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों के कर्मानुसार सत्य-न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूं।
2. चारों "वेदों" (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मंत्रभाग) को निभ्रन्ति स्वतः प्रमाण मानता हूं। वे स्वयं प्रमाण स्वरूप हैं जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रंथ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य या दीपक अपने स्वरूप से स्वतः प्रकाशक और पृथ्वी आदि के भी प्रकाशक होते हैं, वैसे चारों वेद हैं। चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अंग, छः उपांग, चार उपवेद और 1127 वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाए ग्रंथ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और इनमें जो वेदविरुद्ध वचन हैं, उनको अप्रमाण करता हूं।
3. जो पक्षपातरहित, न्याय आचरण, सत्यभाषण आदि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध हैं, उसको "धर्म" और जो पक्षपातसहित, अन्याय आचरण, मिथ्या भाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है, उसको "अधर्म" मानता हूं।
4. जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को "जीव" मानता हूं।
5. परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्ध युक्त मानता हूं।
6. "अनादि पदार्थ" तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात्

जगत का कारण। इन्हीं को नित्य भी कहते है। जो नित्य पदार्थ हैं, उनके गुण कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।

7. द्रव्य, गुण और कर्म प्रवाह से अनादि हैं। द्रव्य वह मूल वस्तु है जिससे दूसरी वस्तुएं तैयार की जाती हैं। वैशेषिक दर्शन के अनुसार नौ द्रव्य होते हैं– पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। गुण का अर्थ है जाति-स्वभाव, धर्म। प्रकृति के तीन गुण माने गए हैं सत्व, रज और तम। कर्म का अर्थ है शास्त्रविहित नित्य-नैमित्तिक आदि कार्य।
8. "सृष्टि" उसको कहते हैं जो पृथक द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप धारण करती है।
9. सृष्टि की रचना ईश्वर ने की है। सृष्टि ईश्वर की शक्ति का प्रतीक है। सृष्टि का प्रयोजन ईश्वर की शक्ति का अनुभव करते रहना है। जीव सृष्टि में अपने कर्मो का भोग करता है।
10. सृष्टि अपने आप नहीं बनी। उसका बनाने वाला ईश्वर है।
11. मनुष्य अविद्या से ग्रस्त होने पर बंधन में पड़ता है। जब मनुष्य अज्ञानवश ईश्वर से भिन्न तत्त्वों या पदार्थो की उपासना करता है, तब वह जन्म-मरण के बंधन में पड़ता है।
12. "मुक्ति" का अर्थ है सारे दुखों से छूट कर सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में विचरण करना। जीव नियत समय तक मुक्ति के आनंद को भोगता है और इसके बाद पुनः संसार में आता है।
13. "मुक्ति" के साधन हैं ईश्वरोपासना, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि।

स्वामी दयानंद ने स्वमत प्रकाश के अंतर्गत "अर्थ", "काम", "वर्णाश्रम", "राजा", "प्रजा", "देव", "देवपूजा", "शिक्षा", "पुराण", "तीर्थ", "पुरुषार्थ", "मनुष्य", "संस्कार", "यज्ञ", "आर्य", "आयावर्त", "आचार्य", "शिष्य", "गुरु", "पुरोहित", "उपाध्याय", "शिष्टाचार", "प्रमाण", "आप्त", "परीक्षा", "परोपकार", "स्वतंत्र", "परतंत्र", "स्वर्ग", "नरक", "जन्म", "मृत्यु", "विवाह", "नियोग", "स्तुति", "प्रार्थना", "उपासना", "सगुण-निर्गुण स्तुति" आदि शब्दों की व्यारव्याएं प्रस्तुत की हैं। उनके इन सिद्धांतों का *ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका* आदि ग्रंथों में भी वर्णन है।

सामाजिक कुरीतियां

स्वामी दयानंद का यह विश्वास था कि जब तक हिन्दू धर्म और समाज की कुरीतियों का अंत नहीं होगा, तब तक भारत उन्नति नही कर सकता।

वर्ण-व्यवस्था

स्वामी दयानंद वर्ण-व्यवस्था के समर्थक थे लेकिन वे वर्ण को कर्म पर आधारित मानते थे, जन्म पर आधारित नहीं। उनके विचार से जन्म को जाति की कसौटी मानने के भयंकर दुष्परिणाम हुए थे। उनका मत था कि मनुष्य का वर्ण उसकी मानसिक प्रवृत्तियों, गुणों तथा कर्मों के आधार पर नियत किया जाए। वे समझते थे कि मनोवैज्ञानिक तथा व्यावसायिक कसौटी पर आधारित वर्ण का सिद्धांत अनेक सामाजिक संघर्षों का समाधान कर सकता है। जन्मना जाति-व्यवस्था के विरोध में आवाज उठा कर स्वामी दयानंद ने दलित वर्गों को ऊपर उठने में मदद दी। जन्म से न कोई बड़ा है और न छोटा, यह कहकर स्वामी दयानंद ने सामाजिक समानता के सिद्धात का प्रतिपादन किया।

स्वामी दयानंद ने वेदों को संपूर्ण ज्ञान का स्रोत माना। उनका कहना था कि वेदों के अध्ययन का अधिकार सब मनुष्यों को है।

शिक्षा

स्वामी दयानंद ने मानव जीवन के समुचित विकास के लिए शिक्षा को आवश्यक माना। उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ था- शरीर का निर्माण, इन्द्रियों का निग्रह और बौद्धिक शक्तियों का विकास। स्वामी दयानंद वेदों द्वारा निरूपित आश्रम-व्यवस्था को स्वीकार करते थे। उन्होंने ब्रह्मचर्य-पालन को उचित शिक्षा की एक आवश्यक शर्त माना था। स्वामी दयानंद ने प्राचीन भारत की गुरुकुल प्रणाली के पुनरुद्धार पर जोर दिया। उन्होंने नारी शिक्षा का भी पोषण किया। स्वामी दयानंद स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देने के पक्ष में थे जिससे वे आदर्श गृहणियां बन सकें और बच्चों के लालन-पालन में रचनात्मक भूमिका निभा सकें।

समाज-सुधारक

स्वामी दयानंद ने हिंदू समाज के दोषों को मिटाने की पूरी चेष्टा की। वे मूर्ति-पूजा के विरुद्ध थे। उन्होंने बाल-विवाह का विरोध किया। उनका मानना था कि विवाह के समय कन्या की आयु कम से कम सोलह वर्ष और वर की आयु कम से कम पच्चीस वर्ष होनी चाहिए। स्वामीजी के अनुसार समुद्र-यात्रा और अंतर्जातीय विवाह-वर्जित नहीं है। वे विधवा-विवाह को भी उचित मानते थे। स्वामी जी जाति-पांत और छुआछूत को हिन्दू धर्म का कोढ़ मानते थे।

पश्चिम की सक्रियता

यद्यपि स्वामी दयानंद वेदों के आधार पर भारतीय जीवन का पुनरुद्धार करना

चाहते थे लेकिन उन्होंने पश्चिम की सक्रियता, नारी-स्वतंत्रता और कर्त्तव्य-निष्ठा की सराहना की है।

नया धर्म नहीं

स्वामी जी ने किसी नए धर्म के प्रवर्तन का कभी कोई दावा नहीं किया। उनका कहना था कि जो सत्य है, उसे मानना-मनवाना और जो असत्य है, उसे तोड़ना-तुड़वाना अभीष्ट है।

राष्ट्रवाद

स्वामी दयानंद भारतीय राष्ट्रवाद के वैतालिक थे। जिस समय भारत पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शिकंजा कसता जा रहा था और भारतीय अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति हीनभाव से ग्रस्त हो रहे थे, स्वामी दयानंद ने देशवासियों के कानों में नवजागरण का मंत्र फूंका। उन्होंने लोगों को पश्चिम की चकाचौंध से दूर हटाया। भारत की महिमा के गीत गाए। वे भारत को पारसमणि और विदेशियों को लोहा मानते थे। विदेशी जैसे ही भारत रूपी पारसमणि के संपर्क में आते थे, सोना बन जाते थे।

आक्रमण की नीति

धार्मिक क्षेत्र में दयानंद की नीति बचाव की नहीं, आक्रमण की थी। उन्होंने अपने *सत्यार्थप्रकाश* नामक ग्रंथ में संसार के विभिन्न धर्मों की कठोर आलोचना की है और बहुत-सी बुद्धिविरोधी बातों को त्याज्य ठहराया है। वे वैदिक धर्म को समूची मानव-जाति के लिए उपयोगी मानते थे और उनकी इच्छा थी कि इस धर्म का सारे संसार में प्रसार हो।

स्वदेशी राज्य

स्वामी दयानंद ने स्वदेशी राज्य को सर्वोपरि और सर्वोत्तम माना है। उन्होंने कहा है कि विदेशियों का राज्य, चाहे वह मतमतान्तर के आग्रह से रहित हो, अपने और पराए के पक्षपात से शून्य हो, प्रजा पर पिता के समान कृपा रखने वाला हो और न्याय तथा दयापूर्ण हो, कभी भी पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता।

हिंदी

स्वामी दयानंद की भारतीय राष्ट्रवाद को एक महत्वपूर्ण देन यह है कि उन्होंने हिन्दी के रूप में भारत की एक संपर्क भाषा की कल्पना की थी। गुजराती होते हुए भी स्वामी दयानंद ने अपने ग्रंथों की रचना हिंदी में की। डॉ० अम्बेडकर ने स्वामी दयानंद की हिंदी को एक आदर्श शैली माना है।

अग्रवाहक

स्वामी दयानंद के विचारों और कार्यकलापों से स्पष्ट है कि उन्होंने भारत में राष्ट्रवाद की एक परम्परा स्थापित की। लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय, वी० डी० सावरकर और अरविन्द घोष ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। सामाजिक सुधार के कई कार्यक्रमों में वे गांधी जी के अग्रवाहक थे।

दयानंद के बाद

स्वामी दयानंद की मृत्यु के बाद सर्वश्री लेखराम, गुरुदत्त विद्यार्थी, लाल लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानंद और महात्मा हंसराज आदि महानुभावों ने आर्यसमाज के आंदोलन को शक्तिशाली बनाया। शिक्षा के प्रश्न पर आर्यसमाज में कालिज तथा गुरुकुल नामक दो पक्ष हो गए। कालिज पक्ष ने डी० ए० वी० कालिजों की स्थापना कर शिक्षा का प्रसार किया। गुरुकुल पक्ष के नेताओं ने 1902 में हरिद्वार के पास गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की।

दो विरोधी पहलू

आर्यसमाज के दो परस्पर विरोधी पहलू रहे हैं। उसका एक पहलू प्रतिगामी है और दूसरा प्रगतिशील। आर्यसमाज ने वेदों की निर्भ्रान्तता पर ज़ोर दिया है। अन्य धर्मों के प्रति उसका दृष्टिकोण बहुत कुछ निषेधात्मक रहा है। कभी कभी तो उसने दूसरे धर्मों के प्रति आक्रामक दृष्टिकोण अपनाया है। इन दो दोषों के कारण आर्यसमाज भारत का सच्चा राष्ट्रीय धर्म नहीं बन सका। लेकिन आर्यसमाज का एक प्रगतिशील पहलू है। आर्यसमाज के नेताओं और कार्यकर्त्ताओं ने राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़कर भाग लिया है और कुर्बानियां दी हैं। उसने ब्राह्मणों की प्रभुता, मूर्तिपूजा तथा बहुदेववाद का खंडन किया है, नारी-जाति के अभ्युत्थान तथा दलितों के उद्धार के लिए कार्य किया है। एक समय आर्यसमाज सरकार की दृष्टि में क्रांतिकारी आंदोलन था और सरकार ने उसे कुचल डालने का प्रयास किया। राष्ट्रीय जागरण के क्षेत्र में आर्यसमाज की देन ब्रह्मसमाज की अपेक्षा अधिक दूरगामी रही है।

थियोसोफी

थियोसोफी का अर्थ वह धार्मिक अथवा दार्शनिक पद्धति है जो अंतःप्रेरणा पर आधारित हो। इस शब्द का प्रयोग थियोसोफिकल सोसायटी की विचारधारा के लिए किया जाता है जिसकी स्थापना 1875 में मैडेम ब्लावात्स्की तथा एच० एस० आल्काट ने 1875 में संयुक्त राज्य अमरीका के न्यूयार्क शहर में की थी।

यह विचारधारा हिन्दू धर्म के कर्म तथा पुनर्जन्म के सिद्धांतों पर आधारित थी।

भारत में इस विचारधारा के प्रचार का श्रेय श्रीमति एनी बीसेंट (1847-1933) को है।

एनी बीसेंट

श्रीमति एनी बीसेंट एक आयरिश महिला थीं जिनका जन्म इंगलैंड में हुआ था। उनका वैवाहिक जीवन 1873 में समाप्त हो गया। ईसाई धर्म के प्रति उनके मन में अनेक आशंकाएं थीं तथा वे हिन्दूधर्म के प्रति आकृष्ट हुई। 1889 में वे थियोसोफिकल सोसायटी की सदस्या बनीं। 1891 में मैडम ब्लावात्स्की की मृत्यु के बाद उन्होंने अपने आपको थियोसोफी के प्रचार में लगा दिया।

1893 में उन्होंने शिकागो के धर्म सम्मेलन में भाग लिया था जहां उनकी स्वामी विवेकानंद से भेंट हुई थी। इसी वर्ष वे भारत आ गई और अपने जीवंत व्यक्तित्व तथा असाधारण भाषण-कला के कारण शिक्षित भारतीयों में लोकप्रिय हो गई।[13]

हिन्दू विश्वविद्यालय

श्रीमति बीसेंट ने 1898 में बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल की स्थापना की जो आगे चल कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बना। 1907 में आल्काट की मृत्यु के बाद वे थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्ष निर्वाचित हुई। 1914 में उन्होंने *द कामनवील* और *न्यू इंडिया* नामक दो पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया। 1914 में श्रीमति बीसेंट ने लंदन में होमरूल की स्थापना की। 1916 में उन्होंने मद्रास में अखिल भारतीय होमरूल लीग का उद्घाटन किया। श्रीमति बीसेंट ने लोकमान्य तिलक के सहयोग से भारत में होमरूल आंदोलन चलाया।[14]

होमरूल आंदोलन

होमरूल आंदोलन एक वैधानिक आंदोलन था और इसका लक्ष्य भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करना था। श्रीमति बीसेंट चाहती थीं कि इंगलैंड और भारत एक दूसरे के निकट आएं। वे समझती थीं कि ब्रिटिश साम्राज्य का भाग्य भारत के साथ जुड़ा हुआ है और भारत को होमरूल देकर संतुष्ट कर देना ब्रिटिश शासकों के लिए बुद्धिमानी की बात है। श्रीमति बीसेंट का होमरूल आंदोलन आयरलैंड के होमरूल आंदोलन से प्रभावित था। 1917 में भारतमंत्री मोंटेग्यू की भारत में उत्तरदायी शासन के शनैः शनैः विकास की घोषणा के बाद होमरूल आंदोलन मुरझा गया। एनी बीसेंट का यश इस समय अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गया था और उन्हें 1917 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षा निर्वाचित किया गया।[15] जब 1920 में कांग्रेस में गांधी-युग आरंभ हुआ, श्रीमति बीसेंट कांग्रेस से हट गई।

एनी बीसेंट की रचनाएं

श्रीमती बीसेंट ने शिक्षा, धर्म, दर्शन और राजनीति पर अनेक पुस्तकों की रचना की। उनकी मुख्य पुस्तकें हैं– *इंडिया बाउंड आर फ्री हाउ इंडिया राट फार गीडम, इंडियन आइडियल्स, इंडिया– ए नेशन, इन डिफेन्स आफ हिन्दूज़्म* । श्रीमति बीसेंट ने गीता का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। उन्होंने हिन्दू धर्म के प्रायः सभी पहलुओं पर कुछ न कुछ लिखा है। उन्होंने अपनी रचनाओं में हिन्दूधर्म का गौरव गान किया है।

ईश्वरीय योजना

श्रीमति बीसेंट मानती थीं कि मानव जाति के विकास की एक ईश्वरीय योजना है। उनके विचार से धर्म और विज्ञान में कोई विरोध नहीं है। दोनों का लक्ष्य मानव का कल्याण करना है। श्रीमति बीसेंट की पुनर्जन्म तथा एकेश्वरवाद में आस्था थी। वे आत्मा को परमात्मा का एक अंश मानती थीं।

स्वतंत्र विचारक

श्रीमति बीसेंट स्वतंत्र विचारक थीं। उन्होंने स्वतंत्र चिंतन पर बल दिया है।

भारत मातृभूमि

श्रीमति बीसेंट भारत को अपनी मातृभूमि मानती थीं। उन्हें भारत से सच्चा प्रेम था। उनकी दृष्टि में भारत के पतन का मुख्य कारण था– भारत की आध्यात्मिक अवनति।

राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक आधार

श्रीमति बीसेंट ने भारतीय राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक आधार दिया। उनके अनुसार राष्ट्रीयता का उपयोग है अपनी विशेषताा के अनुसार संसार की सेवा करना। वे मानती थीं कि यदि अनेक आपदाओं के बावजूद भारत आज भी जीवित है, तो इसका कारण उसकी आध्यात्मिकता है।

नारी जागृति

श्रीमति बीसेंट ने भारतीय नारियों को जागृत करने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने *वीमेन्स इंडियन ऐसोसियेशन* की स्थापना की।

व्यक्तित्व की छाप

श्रीमति बीसेंट ने धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज, राजनीति इन सभी क्षेत्रों में काम किया और अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ी। भारत के राष्ट्रीय विकास में उनका योग

कभी भुलाया नहीं जा सकता।[16]

वहाबी आंदोलन

भारतीय नवजागरण के प्रभाव से मुसलमान भी अछूते नहीं रहे और उनमें भी सुधार की भावना जागृत हुई। सैयद अहमद बरेलवी ने अरब के वहाबी आंदोलन का संदेश भारत में प्रसारित किया। उन्होने ईश्वर की एकता पर बल दिया और कहा कि कुरान की व्याख्या करने का सबको अधिकार है। वहाबी आंदोलन की भावना अत्यंत कट्टर और प्रतिक्रियावादी थी। 1830 से 1860 तक वहाबी आंदोलन ब्रिटिश शासकों के लिए एक सिरदर्द बना रहा। 1857 के स्वाधीनता संग्राम में वहाबियों ने महत्वपूर्ण भाग लिया था और लोगों के मन में ब्रिटिश विरोधी भावनाएं जागृत की थी। वहाबी आंदोलन मुख्य रूप से मुलसमानों का आंदोलन था और वह भारत मे मुस्लिम राज की स्थापना करना चाहता था। यह आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन का रूप न ले सका।

अलीगढ़ आंदोलन[17]

मुस्लिम समाज सुधारकों में सर सैयद अहमद खां का नाम शीर्ष पर है। उन्होंने अलीगढ़ आंदोलन चलाया और मुसलमानों को पाश्चात्य शिक्षा व संस्कृति का ज्ञान-प्राप्त करने का उपदेश दिया। वे पर्दा-प्रथा के विरोधी और स्त्री-शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने 1875 में मुहम्मडन एंग्लो-ओरिएंटल कालिज की नीव डाली जिसने बाद में अलीगढ़ विश्वविद्यालय का रूप धारण किया।

सर सैयद अहमद खां : दो पक्ष

सर सैयद अहमद खां के जीवन के दो पक्ष हैं। शुरू में वे राष्ट्रवादी थे। आगे चल कर वे घोर संप्रदायवादी बन गए और उन्होंने हिन्दू मुस्लिम पृथक्ता का वह बीज बो दिया जो आगे चल कर द्विराष्ट्र सिद्धांत के रूप में उभरा और जिसके फलस्वरूप भारत का विभाजन हुआ। अपनी इस विभाजनकारी नीति के फलस्वरूप वे ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे।

जीवन-झांकी

सर सैयद के पूर्वज ईरानी थे और मुगल दरबार मे उनकी प्रतिष्ठा थी। 1857 की क्रांति में सर सैयद ने अंग्रेजों का साथ दिया था। उन्होंने अंग्रेजों को यह समझाने की कोशिश की कि क्रांति के लिए मुसलमान उत्तरदायी नहीं हैं। सर सैयद ने इस्लाम को ईसाई धर्म के निकट सिद्ध करने के लिए कई लेख प्रकाशित किए तथा मुसलमानों और ब्रिटिश शासकों की मैत्री को दोनों के लिए शुभ बताया।

विद्रोह के कारण

सर सैयद अहमद खां ने 1858 में उर्दू में भारतीय विद्रोह के कारण विषय पर पुस्तक लिखी थी जो बाद में अंग्रेजी में भी अनूदित हुई। इस पुस्तक में सर सैयद ने बताया कि 1857 के विद्रोह का मुख्य कारण यह था कि ब्रिटिश शासकों और जनता के बीच भेद की खाई बहुत चौड़ी हो गई थी। जनता को विधि निर्माण के कार्य से दूर रखा गया था। शासकों और शासितों के बीच विचारों का कोई आदान-प्रदान नही होता था। इस दूरी के परिणामस्वरूप लोग अंग्रेजों को धीमा जहर, बालू की रस्सी और आग की चिन्गारी समझने लगे थे। सरकार ने ऐसे अनेक कानून और नियम बनाए थे जो जनता की आकांक्षाओं और परम्पराओं के प्रतिकूल थे। सरकार जनता की वास्तविक स्थिति और इच्छाओं के प्रति अनभिज्ञ थी। ब्रिटिश सरकार ने देश के सुशासन की ओर ध्यान नहीं दिया। सेना का प्रशासन संतोषजनक नहीं था जिससे सैनिकों में असंतोष फैल गया।

ब्रिटिश इंडियन असोसियेशन

सर सैयद ने 1886 में ब्रिटिश इंडियन असोसियेशन की स्थापना की जिसका उद्देश्य भारतीयों तथा ब्रिटिश शासकों के बीच संपर्क की वृद्धि करना था।

कांग्रेस का विरोध

सर सैयद ने इंडियन नेशनल कांग्रेस का विरोध किया और मुसलमानों को उससे अलग रहने की सलाह दी।

प्रिंसिपल बेक

सर सैयद अहमद खां को राष्ट्रवादी से राजभक्त बनाने में अलीगढ़ कालिज के प्रिंसिपल थियोडोर बेक का विशेष हाथ था।

देवबंद आंदोलन[18]

देवबंद आंदोलन मुसलमानों का पुनरुत्थानवादी आंदोलन था। इस आंदोलन के दो लक्ष्य थे : 1. मुसलमानों में कुरान तथा हदीस की शिक्षाओं का प्रचार, और 2. विदेशी शासकों के विरुद्ध जिहाद की भावना को बनाए रखना।

देवबंद विद्यालय

मोहम्मद कासिम वानोतवी (1832-1880) तथा रशीद अहमद गंगोही (1828-1905) ने 1866 में उत्तरप्रदेश के जिला सहारनपुर के देवबंद में एक मुस्लिम विद्यालय की स्थापना की थी। इस विद्यालय का उद्देश्य मुस्लिम समाज के लिए धार्मिक

नेताओं को तैयार करना था। यह विद्यालय अंग्रेजी शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति के विरुद्ध था। देवबंद विद्यालय में भारत के विभिन्न भागों के ही नहीं अनेक मुस्लिम देशों के विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते थे।

कांग्रेस को समर्थन

देवबंद के उलेमाओं ने 1885 में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना का स्वागत किया। ये लोग सर सैयद अहमद खां के सुधारवादी प्रयत्नों के विरुद्ध थे।

समन्वय

देवबंद स्कूल के एक नेता महमूद उल-हसन (1851-1920) ने इस्लामी सिद्धांतों और राष्ट्रीय आकांक्षाओं के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया।

सिख सुधार आंदोलन[19]

उन्नीसवी सदी के बुद्धिवादी और प्रगतिशील विचारों का सिखों के ऊपर प्रभाव पड़ा। 1873 में अमृतसर में सिंह सभा आंदोलन की नींव पड़ी। इस आंदोलन के दो मुख्य उद्देश्य थे। एक, यह आंदोलन सिख समाज में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार करना चाहता था। दो, यह आंदोलन ईसाई प्रचारकों से सिख धर्म की रक्षा करने के लिए कृतसंकल्प था।

अकाली आंदोलन

अकाली आंदोलन सिह सभा आंदोलन की ही उपज था। इस आदोलन ने सिख गुरुद्वारों को भ्रष्टाचार में लिप्त महंतों के चंगुल से आज़ाद किया।

पारसी सुधार आंदोलन

नवजागरण की जो लहर सारे भारत में उठ रही थी, उसकी लपेट में पारसी समुदाय भी आया। 1851 में पारसियों का धार्मिक सुधार संघ बना जिसका लक्ष्य था पारसियों की सामाजिक स्थिति में सुधार करना और ज़रथुश्त धर्म को उसके शुद्ध रूप में प्रतिष्ठित करना। नोरोजी फर्दून जी, दादाभाई नोरोजी और के० आर० कामा इस आंदोलन के अग्रदूत थे। पारसियों के रीति-रिवाजों में सुधार किया गया और स्त्रियों की दशा सुधारने के प्रयत्न किए गए। कालोत्तर में पारसी समाज पर पाश्चात्य संस्कृति का सबसे तीखा रंग चढ़ा।

नवजागरण का प्रभाव

उन्नीसवी शताब्दी के धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों ने राष्ट्रीय जागृति के यज्ञ मे महत्वपूर्ण आहुति दी। विदेशी शासन में भारत तीव्र गति से

अध:पतन की ओर बढ़ रहा था। धार्मिक तथा सामाजिक सुधार-आंदोलनों ने इस प्रवृत्ति को रोका। सदियों से परतंत्रता की चक्की में पिसते-पिसते भारतवासियों में जो मानसिक और आध्यात्मिक दुर्बलता आ गई थी, सुधार आंदोलनों ने उन्हें इस दुर्बलता से उबारा।

सामाजिक भूमिकासुधार आंदोलनों ने भारत की सामाजिक कुरीतियों को दूर किया, जनता के अंध विश्वासों को तोड़ा और उसमें जांच-पड़ताल करने की भावना भर दी। इन आंदोलनों ने भारतीयों को बताया कि उनके धर्म में कौन सी बातें अच्छी हैं जिन्हें वे स्वीकार करें और कौन-सी बातें बुरी हैं जिन्हें वे त्यागें। यह धार्मिक सुधार आंदोलनों का ही फल था कि भारत अंध-विश्वासों के घने कुहरे से बाहर निकला और उसने जीवन और जगत की विभिन्न समस्याओं को तर्क, विज्ञान और विवेक के प्रकाश में देखना आरम्भ किया।

अतीत का गुणगान

प्राय: सभी सुधार आंदोलनों ने भारत के भूतकालीन वैभव का चित्र उपस्थित किया। भारतीय जनता ने जब इस चित्र से अपनी वर्तमान स्थिति का मिलान किया तब उसे अपार वेदना हुई। कहां तो भूतकाल का जगद्‌गुरु भारतवर्ष और कहां वर्तमान काल का पराधीन, निर्धन और अशिक्षित भारतवर्ष। स्वाभाविक है कि धार्मिक आंदोलनों ने भारतीय जनता के मन में अपनी वर्तमान दयनीय अवस्था से छुटकारा पाने की अदम्य लालसा उत्पन्न कर दी। इस प्रकार धर्म-सुधार आंदोलनों ने राष्ट्रवाद की भावना को धार्मिक क्षेत्र में व्यक्त किया।

राष्ट्रवाद को देन

यह याद रखने योग्य है कि राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानंद और स्वामी विवेकानंद जैसे समाज सुधारक उच्च कोटि के राष्ट्रवादी और देशभक्त थे। उन्होंने अपने अनुयाईयों को देशभक्ति का पुनीत पाठ पढ़ाया। राजा राममोहन राय को आधुनिक भारत का जनक कहा गया है। यद्यपि वे ब्रिटिश शासन के प्रशंसक थे, फिर भी वे यह बात अच्छी तरह समझते थे कि अंग्रेज शासकों ने हिन्दुस्तानियों के साथ क्या-क्या अन्याय किए हैं। स्वामी दयानंद के राष्ट्रप्रेम के बारे में तो किसी प्रकार का संदेह किया ही नहीं जा सकता। उन्होंने तो यहां तक कहा था कि विदेशियों का राज्य कितना भी अच्छा क्यों न हो, वह सुखदायक नहीं होता। स्वदेशी राज्य ही अच्छा होता है। स्वामी विवेकानंद की रचनाओं में भी स्वदेश-प्रेम की धारा छिपी पड़ी है। नवयुवकों के लिए उनका संदेश था, मेरे तरुण मित्रों बलवान बनो। तुम्हारे लिए मेरी यही सलाह है। तुम *भगवद्‌गीता* के स्वाध्याय की अपेक्षा फुटबाल खेलकर कहीं अधिक

सुगमता से मुक्ति पा सकते हो। जब तुम्हारी रगें और पट्ठे अधिक दृढ़ होंगे, तब तुम *भगवद्गीता* के उपदेशों पर अधिक अच्छी तरह चल सकोगे। *गीता* का उपदेश कायरों को नहीं बल्कि अर्जुन को दिया गया था जो बड़ा शूर, पराक्रमी और क्षत्रिय-शिरोमणि था।

सामाजिक सुधार

भारतीय नवजागरण का एक महत्वपूर्ण पहलू है– सामाजिक सुधार। इतिहास के दौर में भारतीय समाज में अनेक सामाजिक कुरीतियां पैदा हो गई थीं जिन्होंने भरतीय समाज को अंदर से खोखला कर दिया। मुस्लिम आक्रमणकारियों के सम्मुख हिदुओं की पराजय का एक प्रमुख कारण उनके सामाजिक संगठन की कमजोरियां थीं।

राजा राममोहन राय का लोकश्रेय

राजा राममोहन राय भारत में समाज सुधार के अग्रदूत थे। उनके समाज-दर्शन का मूलमंत्र था– लोकश्रेय अर्थात् जनता का कल्याण।

सती प्रथा का विरोध

समाज-सुधार के क्षेत्र में राजा राममोहन राय का सबसे बड़ा काम सती प्रथा के विरोध में आंदोलन खड़ा करना और ब्रिटिश सरकार के सहयोग से उसे कानूनन समाप्त करना था।

सती-प्रथा का उद्भव

सती का अर्थ है– पतिव्रता स्त्री, वह स्त्री जो पूरी तरह पति के प्रति समर्पित हो और जिसका चरित्र निष्कलंक हो। पति-समर्पण की गहरी भावना के कारण पति के शव के साथ जल जाने वाली स्त्री को सती कहा जाने लगा।

मुस्लिम शासकों की नीति

मुस्लिम शासकों विशेष कर मुगल सम्राट अकबर ने सती प्रथा को बंद करने की कोशिश की थी लेकिन वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके थे।

ब्रिटिश नीति

ब्रिटिश शासकों की शुरू में यह नीति रही थी कि वे हिंदुओं और मुसलमानों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करें। इसीलिए उन्होंने अपने शासन के आरम्भिक दिनों में सती के मामले में भी उदासीनता का रुख अपनाया। सती-प्रथा वीभत्स थी। जो स्त्रियां अपने पति के साथ सती नहीं होना चाहती थीं उन्हें जबरन पति के शव के साथ चिता में बैठा दिया जाता था। इस जघन्य प्रथा का एक कारण यह था कि विधवाएं अपने पति की संपत्ति में कोई हिस्सा न पा सकें।

सती–प्रथा का अंत

1828 में लार्ड विलियम बैंटिक गवर्नर जनरल बन कर भारत आए। उन्होंने सती-प्रथा के सभी पहलुओं पर विचार करने के उपरांत 4 दिसम्बर, 1829 को इसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया। रूढ़िवादी दल ने सरकार के सती विरोधी कानून के विरोध में प्रिवी कौंसिल में अपील की। पर यह अपील रद्द कर दी गई।

सामाजिक सुधारों की लहर

"राजा राममोहन राय ने बंगाल में सामाजिक सुधारों की जो लहर पैदा की थी, उसके फलस्वरूप आगे के कुछ वर्षो में भारत में अनेक सामाजिक सुधार हुए। इन सुधारों में मुख्य थे– कन्या वध का अंत, विधवाओं का पुनर्विवाह, बाल विवाह का अंत, स्त्रियों की शिक्षा, दासता का अंत, अस्पृश्यता निवारण, पर्दा-प्रथा का अंत, दलितों का उद्धार, देवदासी प्रथा का अंत। जिर्न संस्थाओं ने इस क्षेत्र में विरोध रूप से काम किया, वे हैं : ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफी, रामकृष्ण मिशन, इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस, कैलकटा फीमेल जुवेनाइल सोसायटीं, बोम्बे सोशल रिफार्म असोसियेशन, हिन्दू असोसियेशन, हरिजन सेवक संघ, आल इंडिया वूमेन कान्फ्रेंस, आल इंडिया डिप्रेस्ड क्लासेस असोसियेशन। समाज–सुधारों के क्षेत्र में अग्रणी व्यक्ति हैं : राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशव चन्द्र सेन, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, महादेव गोविंद रानाडे, श्रीमति एनी बीसेंट, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, बहराम जी मलाबारी, महात्मा गांधी, बी० आर० अम्बेडकर, प्रो० डी० के० कर्वे और वीरसालिंगम पांतुलु।[20]

सारांश

भारतीय इतिहास में अठारहवीं सदी का समय देश के लिए घोर अवनति और अधोगति का समय है। 1707 में मुगल सम्राट् औरंगज़ेब की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद ही मुगल साम्राज्य का विघटन आरम्भ हो गया। यूरोप की अनेक व्यापारिक संस्थाओं ने भारत में अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाना शुरू किया। देश के अनेक रजवाड़ों और लोगों ने विदेशियों की मदद की।

भारत का संकट सिर्फ राजनीति का न था। उसका सबसे बड़ा संकट आत्मा का था। वह अपने प्राचीन इतिहास, संस्कृति और वैभव को भूल चुका था। भारत का शरीर शिथिल था और मन डरा हुआ।

उन्नीसवीं सदी में पाश्चात्य शिक्षा, साहित्य और समाचार-पत्रों के विकास ने भारतीय नवजागरण की भूमिका तैयार की।

पाश्चात्य विचारों के फलस्वरूप भारत में समाज सुधार के अनेक आंदोलनों ने

जन्म लिया जिनमें मुख्य थे :

1. ब्रह्मसमाज
2. प्रार्थना समाज
3. रामकृष्ण मिशन
4. आर्यसमाज
5. थियोसोफी
6. वहाबी आंदोलन
7. अलीगढ़ आंदोलन
8. देवबंद आंदोलन
9. सिख सुधार आंदोलन
10. पारसी सुधार आंदोलन

इन आंदोलनों के विभिन्न नेताओं राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे, आर० जी० भंडारकर, एन० जी० चन्द्रावरकर, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, सिस्टर निवेदित्ता, स्वामी दयानंद, स्वामी श्रद्धानंद, महात्मा हंसराज, लेखराम, लाला लाजपत राय, श्रीमति एनी बीसेंट, लोकमान्य तिलक, सर सैयद अहमद खां ने भारतीय समाज में नए प्राणों का संचार किया और जनता में जागृति पैदा की। उन्होंने भारत की सामाजिक कुरीतियों को दूर किया और शिक्षा के प्रसार में योग दिया। नवजागरण के अधिकांश नेता कट्टर देशभक्त थे और इसका उनके अनुयाइयों पर भी प्रभाव पड़ा।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1 जिस समय औरंगज़ेब की मृत्यु हुई, उसकी आयु 89 वर्ष थी। उसकी मृत्यु के तुरंत बाद उसके तीन पुत्रो मुअज्ज़म, मुहम्मद आज़म और कामबख्श मे उत्तराधिकार के लिए युद्ध छिड़ गया। उत्तराधिकार युद्ध में मुअज्ज़म विजयी हुआ और वह बहादुर शाह प्रथम के नाम से गद्दी पर बैठा। इस समय उसकी आयु 63 वर्ष थी।

2 औंरगज़ेब की मृत्यु के समय मुगल साम्राज्य वैभव के उच्चतम शिखर पर तो था, लेकिन उसके पतन के भी चिन्ह दिखाई देने लगे थे। राजपूत, सिख, मराठे सभी मुगल साम्राज्य के दुश्मन हो गए थे और उन्होंने उसके पतन मे योग दिया। अवध, बंगाल और दक्षिण के मुगल सूबेदार स्वतंत्र हो गए। बाजीराव प्रथम ने 1737 मे दिल्ली पर आक्रमण किया और इसके दो वर्ष बाद 1739 मे नादिरशाह ने। इससे मुगल साम्राज्य की जर्जर अवस्था दिन के उजाले की तरह साफ हो गई।

3. "The Mughal Empire and with it the Maratha overlordship of Hindustan fell because of the rottenness at the core of Indian society. The rottenness showed itself in the form of military and political helplessness. The country could not defend itself; royalty was hopelessly depraved or imbecile; the nobles were selfish and short-sighted; corruption, in efficiency and treachery disgraced all branches of the public service.In the midst of this decay and confusion, our literature, art and even true religion had perished."J.N. Sarkar, *Fall of the Mughal Empire*, Vol.IV. pp.343-344.

4. "1813 में ईस्ट इंडिया कंपनी के चार्टर के नवीकरण के बाद के वर्षो मे भारत की शिक्षा विषयक नीति के बारे में सबसे पहली बार एक बहुत बड़ा वाद-विवाद हुआ। इस वाद-विवाद में दो प्रकार की विचारधाराएं कार्य कर रही थीं। एक प्राच्य विचारधारा कहलाई और दूसरी अंग्रेजी भाषा की समर्थक। सामान्यत. जहां प्राच्य विचारधारा के पक्षपाती भारत के प्राचीन ज्ञान और साहित्य को पुनर्जीवित करके उसकी उन्नति करना चाहते थे, वहां अंग्रेजी के पक्षपाती या आधुनिकतावादी अंग्रेजी भाषा द्वारा ही आधुनिक विज्ञान की शिक्षा देने के पक्ष मे थे। राजा राममोहन राय अंग्रेजी के कट्टर पक्षपाती थे और शासनाधिकारियों में लार्ड मैकाले अग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनवाने के लिए सबसे अधिक उत्सुक थे। उन्होने इस बारे में अपनी एक प्रसिद्ध टिप्पणी लिखी, जिसके बाद 1835 मे लार्ड विलियम बैंटिक ने एक प्रस्ताव पारित किया कि भविष्य में शिक्षा के लिए नियत सारी धनराशि भारतीयों को अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान का ज्ञान देने मे ही व्यय की जाएगी। इसके बाद कई दशाब्दियों तक उपर्युक्त शिक्षा नीति और शिक्षा नीति के उस वक्तव्य के आधार पर ही जिसे *चार्ल्स वुड का 1854 का पत्र* नाम दिया गया है, भारत की शिक्षा-पद्धति निर्धारित होती रही।"

भारत सरकार, *राजभाषा आयोग का प्रतिवेदन,* 1956, पृ० 22 ।

5. इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए, विश्व प्रकाश गुप्त तथा मोहिनी गुप्त, *राजा राममोहन राय– व्यक्ति और विचार,* दिल्ली, 1996, अध्याय 8, *शिक्षा,* पृ० 96-104 ।

6. देखिए R.C. Majumdar (Ed.) *The History and Culture of Indian People*, Vol. XI. *Struggle for Freedom*, Ch. XLI. *Literature, pp. 912-974.*

इस अध्याय के विभिन्न अंशों की रचना अधिकारी विद्वानों डॉ० एस० के० बेनर्जी, डा० एस० के० चटर्जी, डा० बी० आर० त्रिवेदी, प्रो० डब्ल्यू० एस० कुलकर्णी, डॉ० के० आर० श्रीनिवास आयंगर, डॉ० आर० एस० मुगाली, डॉ० पी० के० परमेश्वरन नायर, डॉ० वी० आर० राघवन, डा० एम० डब्लयू० मिर्जा ने की है।

7 ईस्ट इंडिया कपनी के शासन के आरम्भिक वर्षो मे निम्नलिखित पत्र प्रकाशित

हुए : *बंगाल गजट* अथवा *कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर* (1780), *द कैलकटा गजट* (1784), *द बंगाल जर्नल* (1785), *द ओरिएंटल मैगजीन आफ कैलकटा* या *कैलकटा एम्यूज़मेंट* (1785), *द कैलकटा क्रानिकिल* (1786), *मद्रास कूरियर* (1788), *द बोम्बे हेरल्ड* (1789)।

8. भारत में समाचार-पत्रों की स्थिति के संबंध में निम्नलिखित पुस्तके दृष्टव्य है : Margarita Barns, *The Indian Press* (1940), Reed Gates, *The Indian Press Year Book* (Annual) H. P. Ghosh, *The Newspaper in India* (1952); *Report of the Press Commission*, 3 parts (published by Manager of Publications, New Delhi).

9. ब्रह्मसमाज के विषय में विशेष जानकारी के लिए देखिए, Debajyoti Burman and Kalidas Nag, *English works of Raja Rammohun Roy*, 7 Vols. Calcutta, 1945-1951; R. N. Chatterjee, *Rammohun Roy and Modern India*, Calcutta, 1911, P. K. Das, *Raja Rammohun Roy and Brahmnism*, Calcutta, 1970; Shastri, S. N., *History of Brahm Samaj*, 2 Vols., Calcutta, 1909-1912.

10. स्वामी रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण मिशन के कार्यकलापो पर हिंदी, अग्रेजी और बंगला भाषाओं मे प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। हिंदी और अग्रेजी में प्रकाशित कुछ चुनी हुई पुस्तकों की सूची नीचे दी जा रही है।

रोमा रोलां, *विवेकानंद का जीवन और सार्वभौम सिद्धांत*, रामकृष्ण मिशन, धन्तौली, नागपुर, टी० एस० अविनाशलिंगम, *शिक्षा (विवेकानंद की)* रामकृष्ण आश्रम, धन्तौली, नागपुर 1971, सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, *विवेकानंद चरित्र*, रामकृष्ण आश्रम, धन्तौली, नागपुर, 1971, चक्रवर्ती शरतचन्द्र, *विवेकानंद जी के संग मे*, प्रभात प्रकाशन चावड़ी बाजार, दिल्ली, स्वामी तेजस्वानंद, *रामकृष्ण संघ आदर्श और इतिहास*, रामकृष्ण मठ, धन्तौली, नागपुर, 1974, *स्वामी विवेकानन्द, विवेकानंद साहित्य* (सपूर्ण दस खंड), अद्वैत आश्रम मायावती, पिथौरागढ़, हिमालय, 1973।

Vivekananda, *Complete Works of Swami Vivekananda* (Eight Volumes), Advaita Ashrama, Calcutta; Arora, The *Social and Political Philosophy of Swami Vivekananda*, Calcutta, 1968; Swami Abhedananda, *Swami Vivekananda and his Works*, 3rd ed., Ramkrishna Vedanta Math, Calcutta, 1950; T. S. Avinashlingam, *Vivekananda on Education*, Madras; Marie Louice Burke, *Swami Vivekananda in America*, Calcutta, 1966; Trilochan Das, *Social Philosophy of Swami Vivekananda*, Cacutta, 1949; Bhupendranath, *Swami Vivekananda, Patriot and Prophet*, Calcutta, 1954; *Eastern and Western Disciples, Life of Swami Vivekananda*, Calcutta. 1961; Swami Gambhirananda, *History of Ramkrishna Math and Mission*, Calcutta; Swami Nikhilananda, *The Gospel of Shri*

Ramkrishna, Madras; Swami Rangnathanda, *Swami Vivekananda – His Life and Mission*, Calcutta; Romain Rolland, *Swami Vivekananda.*

11. आर्यसमाज के इतिहास और विचारधारा को समझने के लिए स्वामी दयानंद, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी तुलसीराम, पं० लेखराम, पं० भीमसेन शर्मा, स्वामी नित्यानंद, पं० गुरुदत्त, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, पं० क्षेमकरणदास, महात्मा नारायण स्वामी, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, पं० नरदेव शास्त्री, श्री पाद दामोदर सातवलेकर, तथा डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार के ग्रंथ उपयोगी हैं। डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने सात खंडों में आर्यसमाज का विस्तृत इतिहास लिखा है।

12. "... उनका (दयानन्द का) जीवन आग्नेय था। उनका हृदय विशाल था। वे धृति के आकार थे। उन्होने खुले हृदय से संकल्प किया। वस्तुत: धर्मप्रचार का व्रत तो बीज रूप से वह उसी समय कर चुके थे जब घर से निकले। परंतु अब उनका लक्ष्य अधिक निश्चित हो गया।" गंगाप्रसाद उपाध्याय, *आर्यसमाज,* मथुरा, संवत् 1981 ।

13. "She was comparatively speaking, a new figure in the political field but her activities as the head of the Theosophical Society had made her name quite familiar in India. She came to this country in 1893 and devoted herself to the cause of social and educational uplift with undaunted energy. Gradually she came to realize that no real improvement could be effected without raising the political status of India. She was equally convinced that the Indian National Congress, under the guidance of its moderate leaders, was not likely to achieve much. With characteristic energy she plunged herself into the political struggle." R. C. Majumdar (Ed.), *The history and Culture of Indian People,* Vol. XI, *Struggle for Freedom,* p.249.

14. "She was nothing, if not extraordinary, in whatever she took up, and her short period of political activity of less than five years was marked by an 'indomitable will, concentrated purposefulness, undaunted courage and indefatigable zeal.' Her superb oratory and matchless literary gifts enabled her to reach the foremost rank in politics in an incredibly short time." R. C. Majumdar, *Ibid.,* p.251.

15. श्रीमती बीसेट का काग्रेस के अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण उस समय की स्थिति को देखते हुए अत्यंत जोशीला है। उन्होने अपने भाषण में कहा था :

"Thank God that India's eyes are opening, that myraids of her people realize that they are men, with a man's right to manage his own affairs. India is no longer on her knees for boons; she is on her feet

for rights. It is because I have taught this, that the English in India misunderstood me, and call me seditious; it is because I have taught this, that I am President of this Congress to-day."

Quoted in R. C. Majumdar, *Ibid,* p. 257.

16. भारतीय राजनीति पर होमरूल आंदोलन के प्रभाव के संबंध मे इतिहासकार आर० सी० मजूमदार ने लिखा है :

"The Home Rule movement marked the beginning of a new phase in India's struggle for freedom. It placed before the country a concrete scheme of Self-Government, bereft of the verbiage with which the Congress, led by the Moderates, surrounded this political goal. It also emphasized the point that if the Congress really wanted to achieve this goal it must cease to be a club arm-chair politicians taking to public work only to the extent of which their leasure permitted them, instead it should be guided by leaders who were prepared to place their whole time and energy at the service of their country. This new ideal of a political leader soon commended itself to the whole country and developed a new standard of public life." *Ibid*, p. 260.

17. मुस्लिम राजनीति और पाकिस्तान के निर्माण से संबंधित सभी पुस्तको मे अलीगढ़ आंदोलन का विवेचन है। कुछ विशिष्ट पुस्तकें है :

Lal Bahadur, *Muslim League,* Agra, 1954; M. S. Jain, *The Aligarh Movement, Its Origin and Development,* (1858-1906), Agra, 1965; Ram Gopal, *Indian Muslims – A Political History (1958-1947),* London, 1959; A Richard Symond, *The Making of Pakistan,* London, 1950.

18. देवबंद स्कूल के लिए देखिए, Ziya-Ul-Hasan Faruqi, The *Deoband School and the Demand for Pakistan,* Bombay, 1963.

19. सिख सुधार आंदोलन के बारे में देखिए, Gopal Singh (Ed.), *Punjab—Past, Present and Future,* Harbans Singh (Ed.), 1944; *The Encyclopaedia of Sikhism,* Vol.I, 1992; Kailash Chander Gulati, *The Akali . Past and Present,* 1974; Mohinder Singh, *The Akali Movements,* Delhi, 1978; K. L. Tuteja, *Sikh Politics*, 1984, Ruchi Ram *Sahni, Struggle for Reform in Sikh Shrines,* Teja singh, *Gurdwara Reform Movement and the Sikh Awakening,* 1922; Kushwant Singh, *A History of the Sikkhs,* 2 Vols., 1966.

20. भारत मे समाज-सुधारो की प्रगति के लिए देखिए : Aziz Ahmad, *Islamic Modernism in India and Pakistan,* C. H. Heimsath, Indian *Nation-*

alism and Hindu Social Reform: Kenneth Jones. *Arya Samaj: Hindu Consciousness in the 19th Century;* V. A. Narain, *Social History of India – The Nineteenth Century;* S. Natrajan, *A Century of Social Reform in India:* Manilal Parekh, *Brahm Samaj;* M.G. Ranade, *Religious and Social Reforms,* Sunit Surkar, *Bibliographical Survey of Social Reform Movements in the 18th and 19th Centuries* (I. C. H. R. 1975); H. C. E. Zackaria, *Renaiscent India.*

खण्ड : दो

जीवन-प्रवाह

4

बाल्यकाल और शिक्षा

परिवार का वातावरण

सुभाष चन्द्र बोस का जन्म 23 जनवरी, 1897 को कटक (उड़ीसा) में हुआ था। उनके पिता जानकीनाथ बोस थे और माता प्रभावती। वे अपने चौदह भाई-बहिनों में छठे पुत्र और नवीं संतान थे।[1] उनके पिता मूलतः तो बंगाल के रहने वाले थे लेकिन उन्नीसवीं सदी के अंत में वकालत करने के लिए कटक में आकर बस गए थे।

सुभाषचन्द्र बोस के जन्म के समय कटक की आबादी 20,000 थी। वह प्राचीन काल से कलिंग नरेशों की राजधानी रहा था। पुरी, कोणार्क, खंडगिरी, उदयगिरी और भुवनेश्वर जैसे प्राचीन ऐतिहासिक-धार्मिक नगर कटक के आस-पास थे। वह उड़ीसा में ब्रिटिश शासन का प्रधान केंद्र था और उड़ीसा के अनेक छोटे-बड़े राजाओं ने वहां अपने महल बना रखे थे। कटक में शहर और देहात दोनों के गुण पाए जाते थे।

सुभाष का परिवार न समृद्ध था और न निर्धन। वह मध्य वर्ग का परिवार था। सुभाषचन्द्र के माता-पिता मितव्ययी थे और उन्होंने अपने बच्चों को अनुशासन में रख कर पाला-पोसा। बच्चों को किसी प्रकार के अभाव का सामना नहीं करना पड़ा। न उनके लिए ऐसी सुविधाएं जुटाई गई कि वे बिगड़ जाते। माता-पिता दोनों का बच्चों पर आतंक रहता था। चूंकि सुभाषचन्द्र बोस का परिवार बड़ा था, इसलिए बचपन में उन्हें यह लगता था कि उनका अपना कोई महत्व नहीं है। वे परिवार मे अपने आपको उपेक्षित भी अनुभव करते थे। लेकिन सुभाषचन्द्र मेहनत से कभी नही घबराए और हमेशा यह समझते थे कि जीवन में सफलता पाने के दो ही उपाय हैं– परिश्रम तथा धैर्य। परिवार में अतिथियों का क्रम बना रहता था। इससे सभी बच्चों में हृदय की विशालता का भाव पैदा हुआ। घर में नौकर-चाकरों की भी कमी नही थी और कई

नौकर तो आजीवन घर से बंधे रहे। बहुतों को बूढ़े होने पर घर की ओर से पेंशनें मिलती रहीं।

परिवार का इतिहास

बोस कायस्थ होते हैं। सुभाषचन्द्र बोस का परिवार बहुत पुराना परिवार है। उनकी वंशावली में 27 पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है। उनके सबसे पुराने पूर्वज दशरथ बोस थे। वही बोस वंश के संस्थापक थे। दशरथ बोस के दो पुत्र थे–कृष्ण और परम। परम पूर्वी बंगाल में जाकर बस गए। कृष्ण पश्चिमी बंगाल में रहे। दशरथ बोस की पांचवी पीढ़ी में मुक्ति बोस हुए। उन्होंने कलकत्ता के दक्षिण में 14 मील की दूरी पर महीनगर को अपना आवास-केंद्र बनाया। इसलिए सुभाष का परिवार महीनगर वाले बोस कहलाता था। दशरथ बोस की ग्यारहवीं पीढ़ी में महीपति बोस हुए। वे बंगाल के मुसलमान राजा के वित्त और युद्ध मंत्री बने। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर राजा ने उन्हें 'सुबुद्धि खां' की उपाधि दी। यह उल्लेखनीय है कि बंगाल के मुस्लिम राजा अपनी उपाधियों में संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते थे। राजा ने महीपति को उनके पुश्तैनी गांव महीनगर के पास सुबुद्धिपुर गांव भी जागीर में दिया। महीपति के दस पुत्र थे। उनका चौथा पुत्र ईशान खां राजदरबार में पिता का उत्तराधिकारी बना। ईशान खां के तीन पुत्र थे। तीनों को राजा की सेवा में ऊंचे पद मिले। उनके दूसरे पुत्र गोपीनाथ को बंगाल के तत्कालीन नरेश हुसैन शाह (1493-1519) ने अपना वित्तमंत्री और नौ-सेनापति नियुक्त किया। राजा ने उन्हें पुरन्दर खां की उपाधि तथा पुरन्दरपुर गांव जागीर में दिया।[2] पुरन्दर कुशल प्रशासक और सेनापति होने के साथ ही समाज़-सुधारक और कवि भी थे। उन्होंने अनेक भक्ति-गीत लिखे थे। सत्रहवीं शताब्दी में महामारी और बाढ़ के कारण बोस परिवार का पुश्तैनी गांव महीपुर उजड़ गया और बोस परिवार कोडालिया गांव आकर रहने लगा। कोडालिया गांव अपनी सांस्कृतिक विरासत के लिए प्रसिद्ध है। यहां के अनेक पंडितों ने ब्रह्मसमाज की स्थापना और उन्नति में योग दिया। उनमें से कई लेखक, संपादक, पत्रकार और सार्वजनिक कार्यकर्ता बन कर उभरे। उनमें से कुछ उल्लेखनीय नाम हैं : पंडित आनंद चन्द्र वेदांत वागीश, पंडित द्वारकानाथ विद्याभूषण, पंडित शिवनाथ शास्त्री, भारत चन्द्र शिरोमणि, काली कुमार चक्रवर्ती, अघोर चक्रवर्ती, कालीप्रसन्न बोस, हरिकुमार चक्रवर्ती, सत्कारी बेनर्जी। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी एम० एन० राय भी इसी स्थान के रहने वाले थे।

कोडालिया में बोस-वंशज कम से कम दस पीढ़ियों तक रहे। सुभाषचन्द्र बोस के पिता जानकी नाथ बोस पुरन्दर खां की तेरहवीं पीढ़ी और दशरथ बोस की छब्बीसवीं पीढ़ी में हुए थे। सुभाष के पितामह हरनाथ के चार पुत्र थे– जदुनाथ, केदारनाथ, देवेन्द्रनाथ और जानकी नाथ। परम्परा से सुभाषचन्द्र बोस का परिवार

शाक्त[3] था लेकिन हरनाथ वैष्णव[4] थे। उन्होंने वार्षिक दुर्गा पूजा के अवसर पर बकरे का बलिदान बंद कर दिया था। हरनाथ के चारों पुत्र जीविका की खोज में भिन्न भिन्न स्थानों को चले गये। सबसे बड़े पुत्र जदुनाथ ने ब्रिटिश सरकार की नौकरी की और अपना काफी समय शिमला में बिताया। दूसरे पुत्र केदारनाथ स्थायी रूप से कलकत्ता आकर रहने लगे। तीसरे पुत्र देवेन्द्रनाथ ने सरकार के शिक्षा-विभाग में नौकरी की और वे प्रिंसिपल के पद से सेवा-निवृत्त हुए। नौकरी से अवकाश ग्रहण करने पर वे कलकत्ते में बस गए।

सुभाषचन्द्र बोस के पिता जानकीनाथ का 28 मई, 1860 को जन्म हुआ था। उनकी माता प्रभावती 1869 में पैदा हुई थीं। जानकी नाथ का अपने समय के अनेक प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी नेताओं से परिचय था। इन नेताओं में केशवचन्द्र सेन[5] तथा उनके भाई कृष्णबिहारी सेन भी थे। जानकी नाथ ने कुछ समय कलकत्ते के एल्बर्ट कालिज में अध्ययन-कार्य भी किया था। 1885 में वे कटक चले गए तथा उन्होंने वकालत शुरू की। 1901 में वे कटक नगरपालिका के पहले गैर सरकारी अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 1905 में वे सरकारी वकील और पब्लिक प्रोसेक्यूटर बने। 1912 में वे बगाल की विधानपरिषद के सदस्य बने और सरकार ने उन्हें रायबहादुर का खिताब दिया। 1917 में उनका जिला मजिस्ट्रेट से मतभेद हो गया और उन्होंने सरकारी वकील तथा पब्लिक प्रोसेक्यूटर के पद से इस्तीफा दे दिया। 1930 में सरकार की दमनकारी नीति के विरोध में उन्होंने रायबहुादर की उपाधि भी त्याग दी।

जानकीनाथ बोस ने नगरपालिका और जिला बोर्ड की स्थानीय राजनीति में भाग लेने के अलावा शैक्षिक और सामाजिक संस्थाओं में भी काम किया। वे गरीब छात्रों की आर्थिक सहायता करते थे और उन्होंने अपने पैतृक गांव में एक धर्मार्थ चिकित्सालय तथा पुस्तकालय की स्थापना की। वे इंडियन नेशनल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में जाते थे। हां, उन्होंने सक्रिय राजनीति में कभी भाग नहीं लिया। जानकीनाथ बोस स्वदेशी के समर्थक थे। जब 1921 में असहयोग आंदोलन आरम्भ हुआ, जानकी बाबू ने कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमो विशेष कर खादी और राष्ट्रीय शिक्षा में काम किया। वे धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे। उन्होंने जीवन में दो बार दीक्षा ग्रहण की थी। एक बार शाक्त गुरु से और दूसरी बार वैष्णव गुरु से। वे स्थानीय थियोसोफी समिति के प्रधान भी रहे थे। उनके मन में गरीबों के प्रति हमदर्दी थी और उन्होंने अपनी मृत्यु से पहले अपने बूढ़े नौकरों तथा आश्रितों के लिए गुजारे का प्रबंध कर दिया था।[6]

सुभाषचन्द्र बोस की माता प्रभावती उत्तरी कलकत्ता के हढखोला नामक गांव के दत्त परिवार से संबंधित थीं। इस परिवार ने ब्रिटिश शासन के आरम्भिक दिनों में अपने धन ऐश्वर्य तथा योग्यता के कारण कलकत्ता में बड़ा नाम कमाया था। प्रभावती के पितामह काशीनाथ दत्त उत्तरी कलकता से छह मील दूर बर्नागोर नामक छोटे से कस्बे

में जाकर बस गए थे। वहां उन्होंने एक शानदार मकान बनाया। वे सुशिक्षित व्यक्ति थे और एक अंग्रेजी फर्म में ऊंचे पद पर काम करते थे। दत्त परिवार में अपने समय के अनेक जाने-माने पुरुष हुए– सर रमेश चन्द्र मित्तर, रायबहादुर हरि वल्लभ बोस, उपेन्द्रनाथ बोस, चन्द्रनाथ घोष, चुन्नीलाल बोस। प्रभावती के पिता गंगानारायण दत्त ने अपनी बेटी का हाथ जानकीनाथ के हाथ में देने से पहले उनकी परीक्षा ली थी। प्रभावती अपने पिता की सबसे बड़ी संतान थीं। उनके नौ भाई तथा छह बहिनें थीं।[7]

बंगाल का नवजागरण

सुभाष के जन्मकाल के समय भारतीय समाज तीव्र परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था। भारत में बंगाल पहला प्रांत था जो अंग्रेजों की अधीनता में आया। स्वदेशी सरकार के पतन के साथ ही उसकी सामंती व्यवस्था भी नष्ट हो गई। उसकी जगह अब एक नई व्यवस्था ने ली। अंग्रेज भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आए थे लेकिन यहां के शासक बन बैठे। पर उनकी संख्या थोड़ी थी और वे भारतीयों के सहयोग के बिना शासन नहीं चला सकते थे। जो पढ़े-लिखे भारतीय अंग्रेजों के साथ मिल गए, समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गई।

ब्रिटिश शासन में लम्बे समय तक मुसलमानों की कोई पूछ न थी। बंगाल में अंग्रेजों ने मुसलमानों के हाथों से सत्ता छीनी थी। इसलिए मुसलमान अंग्रेजों से रुष्ट थे। वे अंग्रेजों के प्रशासन और संस्कृति से अलग रहे।

बंगाल पर अंग्रेजों का शासन स्थापित हो जाने के बाद अनेक समाज-सुधारक और लोकनेता सामने आए। इनमें सबसे प्रमुख थे राजा राममोहन राय (1772-1833)। राजा राममोहन राय ने 1828 में ब्रह्मसमाज की स्थापना की थी। ब्रह्मसमाज हिन्दुओं का एक सुधारवादी आंदोलन था और वेदांत के आधार पर धर्म का पुनर्गठन करना चाहता था। उन्नीसवीं सदी के शुरु में बंगाल में नवजागरण की लहर उठी और ब्रह्मसमाज उसका अग्रणी था। महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर (1818-1905) और केशवचन्द्र सेन (1838-1884) ब्रह्मसमाज के प्रमुख नेता थे। राजा राममोहन राय पश्चिमी संस्कृति के समर्थक थे और उन्होंने देश में पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली का प्रवर्तन करने में अंग्रेज शासकों के साथ सहयोग किया था।[8]

शशधर तारक चूड़ामणि, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद और अरविन्द घोष बंगाली नवजागरण के प्रमुख ज्योतिर्वह थे।

अंग्रेजी शासन में बंगाल में एक नए ज़मींदार-वर्ग का उदय हुआ। ये लोग सरकार के लिए कर जमा करते थे। उन्हें सरकार का संरक्षण प्राप्त था। महाराजा जतीन्द्र मोहन टैगोर और राजा विनय कृष्ण देव बहादुर इस वर्ग के प्रतिनिधि थे।

इस काल में ऐसे अनेक लोग थे जो ब्रिटिश सरकार की नौकरी में रहते हुए

भी देश भक्त थे। बंकिम चन्द्र चटर्जी (1838-1894) और डी० एल० राय ऐसे ही व्यक्ति थे। बंकिम चन्द्र ने सरकारी नौकरी में रहते हुए भी 'बंदे मातरम्' गीत की रचना की थी। 1905 में बंगाल का विभाजन होने पर बंगाल में राजनीतिक परिपक्वता आई।

स्कूल में

जब सुभाषचन्द्र बोस की आयु पांच साल की हुई, उन्हें स्कूल पढ़ने के लिए भेजा गया (जनवरी, 1902)। यह उनके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण दिन था और इस अवसर पर उनकी प्रसन्नता का कोई अंत न था। सुभाष का स्कूल मिश्नरी स्कूल था। उसमें अधिकतर यूरोपीय और आंग्ल भारतीय लड़के-लड़कियां पढ़ते थे। सुभाष के सभी भाई-बहिन इसी स्कूल मे पढ़े थे। स्कूल में अधिकांश अध्यापक आंग्ल-भारतीय थे। स्कूल में सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान पर ही ज़ोर नहीं दिया जाता था। खेल-कूद, अनुशासन, नियमितता, स्वच्छता जैसे विषयों की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाता था। अध्यापक बच्चों की पढ़ाई में व्यक्तिगत रुचि लेते थे। यद्यपि सुभाष अपने स्कूल के प्रशंसक थे, पर उनका विचार था कि स्कूल में दी जाने वाली शिक्षा भारतीय परिस्थितियो के अनुकूल नहीं थी। बाइबिल का अध्ययन अनिवार्य था। स्कूल का पाठ्यक्रम कुछ ऐसा था कि बच्चे अग्रेजी रहन-सहन में ढल जायें। बच्चों को इंगलैड के भूगोल और इतिहास की तो शिक्षा दी जाती थी, लेकिन भारतीय भूगोल और इतिहास से वे प्रायः अपरिचित रहते थे। उन्हें लैटिन तो पढ़ाई जाती थी, पर संस्कृत उनके लिए परायी थी। स्कूल में भारतीय पुराण कथाओं और भाषाओं की सर्वथा उपेक्षा की जाती थी।[9] सुभाष अपनी कक्षा में प्रथम आते थे।

सुभाष पी० ई० स्कूल में कुल सात साल 1902 से 1909 तक पढे। जनवरी 1909 में उन्होंने रैवेन्शा कालिजिएट स्कूल कटक में दाखिला लिया। इस स्कूल में स्कूल के प्रधान अध्यापक बाबू बेनी माधव दास के सौम्य व्यक्तित्व का सुभाष पर गहरा प्रभाव पड़ा। सुभाष अनेक वर्षो तक अपने प्रिय अध्यापक के साथ पत्र-व्यवहार करते रहे थे। इस काल में सुभाष ने स्वामी विवेकानंद की रचनाओं का भी अध्ययन किया और उनसे उन्हें अपना जीवन-लक्ष्य निर्धारित करने में सहायता मिली। इस समय सुभाष की आयु 15 वर्ष की थी। विवेकानंद की रचनाओं का अध्ययन करने के बाद सुभाष ने उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस के विचारों की जानकारी प्राप्त की। स्वामी विवेकानंद को तो लिखित रचनाएं और संकलित भाषण तथा पत्र पढ़ने को मिल गए। लेकिन रामकृष्ण परमहंस निरक्षर थे। उनकी वाणी को उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया है। रामकृष्ण व्यावहारिक योगी थे। उन्होंने अपने शिष्यों के चरित्र गठन पर जोर दिया तथा मानव-सेवा द्वारा ईश्वर-सेवा का प्रतिपादन किया।

स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण की शिक्षाओं ने तरुण सुभाष को योग-साधना

की ओर उन्मुख कर दिया। उन्होंने पहले तो पुस्तकों के माध्यम से योग के मार्ग पर बढ़ने की कोशिश की लेकिन जब इसमें विशेष सफलता नहीं मिली तब वे गुरु की खोज में जुट गए। उन्हें कोई गुरु नहीं मिला और विवेकानंद की शिक्षाओं के अनुसार वे समाज-सेवा के कार्य में कूद पड़े। इसी समय उनका कुछ क्रांतिकारियों से भी परिचय हुआ। मार्च, 1913 में उन्होंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा दी और वे सारे विश्वविद्यालय में दूसरे स्थान पर आए। सुभाष के माता-पिता ने उन्हें कालिज की पढ़ाई के लिए कलकत्ता भेज दिया।

प्रेसीडेन्सी कालिज

सुभाषचन्द्र बोस ने कलकत्ते में प्रेसीडेन्सी कालिज में दाखिला लिया। अब तक उन्होंने अपने मन में यह निश्चित कर लिया था कि वे अपनी आध्यात्मिक उन्नति करने के साथ मानवता की भी सेवा करेंगे। वे दर्शन शास्त्र का गहन अध्ययन करना चाहते थे जिससे कि जीवन की आधारभूत समस्याओं का हल कर सकें। स्वामी रामकृष्ण और विवेकानंद उनके आदर्श थे। उनको यह स्पष्ट लगने लगा था कि जीवन का एक अर्थ है और उस अर्थ को समझने के लिए संयम तथा अनुशासन आवश्यक हैं। इस संयम और अनुशासन में काम-वासना पर नियंत्रण रखना एक आवश्यक तत्त्व था।

प्रेसीडेन्सी कालिज कलकत्ता का सबसे अच्छा कालिज माना जाता था। इसमें सभी तरह के विद्यार्थी पढ़ते थे- राजाओं के लड़के, धनिकों के लड़के, पढ़ाकू छात्र, क्रांतिकारी छात्र। कालिज का मुख्य होस्टल ईडन हिन्दू होस्टल था जो राजद्रोह तथा क्रांतिकारी गतिविधियों का अड्डा माना जाता था।

प्रेसीडेन्सी कालिज के पहले दो वर्षो में सुभाष चन्द्र ने समाज-सेवा के कार्यो में दिलचस्पी ली। उन्होंने अपने सहयोगी छात्रों के साथ अनेक स्थानों की यात्रा की और अपने समय के विशिष्ट पुरुषों से परिचय प्राप्त किया। उदाहरण के लिए 1914 में उन्होंने कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर के दर्शन किए। टैगोर ने उनसे ग्राम-सुधार के बारे में बात की। इन दिनों अरविन्द घोष का बंगाल के तरुणों पर भारी प्रभाव था। कांग्रेस में अरविन्द घोष वामपंथी विचारों के प्रतिनिधि माने जाते थे और देश के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की बात करते थे। उनके विचार अपने युग से आगे बढ़े हुए थे। उनके जीवन में राजनीति और आध्यात्मिकता का अपूर्व समन्वय था जिसके कारण उनका व्यक्तित्व गौरवपूर्ण बनने के साथ-साथ रहस्यमय भी बन गया था।

इन दिनों सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी भी बंगाल के प्रमुख नेता थे। इंडियन नेशनल कांग्रेस के निर्माण में उनका सराहनीय योग रहा था।

1914 में सुभाष ने अपने एक मित्र के साथ ऋषिकेश, हरिद्वार, मथुरा, वृंदावन,

बनारस और गया जैसे तीर्थ स्थानों की यात्रा की। इस यात्रा में उन्होंने अनेक साधुओं तथा संगठनों को भी निकट से देखा। साधुओं की जीवन-शैली को देखकर सुभाष का मन उनकी ओर से फिर गया। इस यात्रा में उन्हें कोई गुरु न मिल सका। घर वापस पहुंचने पर वे बीमार पड़ गए। तभी प्रथम विश्वयुद्ध शुरू हो गया। विश्वयुद्ध ने सुभाष को सिखा दिया कि स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए सैनिक शक्ति कितनी आवश्यक है।

1915 में सुभाष ने इंटरमीडिएट की परीक्षा दी। इसमें उन्हें प्रथम श्रेणी तो मिली लेकिन योग्य विद्यार्थियों की सूची में उनका स्थान बहुत नीचे था। उन्हें इस पर पश्चाताप हुआ और उन्होंने भविष्य में पढ़ाई की ओर अधिक ध्यान देने का निश्चय किया।

बी० ए० में सुभाष ने दर्शन शास्त्र का विषय चुना। यह उनका प्रिय विषय था और वे मनोयोग से अध्ययन में लीन रहने लगे।

तभी जनवरी, 1916 में एक आकस्मिक घटना घटी जिसने सुभाष की जीवनधारा पलट दी। उनका अपने कालिज के एक यूरोपीय अध्यापक से झगड़ा हो गया और उन्हें कालिज से निकाल दिया गया।[10] मार्च, 1916 में वे कटक लौट आए। कटक में उन्होंने अपना अधिकांश समय समाज-सेवा में व्यतीत किया और आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया में दक्षता प्राप्त की। सुभाष ने कलकत्ता जाकर सेना में भरती होने की भी कोशिश की लेकिन आंखों की कमज़ोरी के कारण उन्हें फेल कर दिया गया।

1917 में सुभाष को कलकत्ता के स्काटिश चर्च कालिज में दाखिला मिल गया। लेकिन इसके कुछ समय कुछ समय बाद ही वे प्रादेशिक सेना में भरती हो गए और उन्होंने एक साल तक सैनिक जीवन का अनुभव प्राप्त किया। 1919 में सुभाष ने बी० ए० परीक्षा पास की। वे प्रथम श्रेणी में पास हुए। लेकिन योग्यता-सूची में उनका नाम दूसरे स्थान पर था। वे एम० ए० प्रयोगात्मक मनोविज्ञान में करना चाहते थे लेकिन उनके पिता ने इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए उन्हें इंगलैंड भेज दिया। सुभाष 15 सितम्बर, 1919 को इंगलैंड के लिए रवाना हो गए।

कैम्ब्रिज में

जिस समय सुभाष भारत से इंगलैंड के लिए रवाना हुए थे, भारत की राजनीतिक स्थिति बदलने लगी थी। इसके कुछ समय पहले ही अमृतसर में जलियांवाला कांड हुआ था। वहां की खबरें शेष भारत में नहीं पहुंचने दी गई थीं।

इगलैड पहुंचने पर सुभाष ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय का खुला वातावरण सुभाष को रास आया। आई० सी० एस० की परीक्षा

में सुभाषचन्द्र वोस को चौथा स्थान मिला। इससे उनके घर वालों को तो प्रसन्नता हुई लेकिन उनके अपने मन में अंतर्द्वंद्व मच गया। वे विदेशी सरकार की नौकरी करना नहीं चाहते थे। उन्होंने इस विषय में अपने बड़े भाई शरत चन्द्र से पत्र-व्यवहार किया और फरवरी 1921 में इंडियन सिविल सर्विस से त्याग-पत्र दे दिया।[11]

सी० आर० दास से पत्र-व्यवहार

जिस समय सुभाष लंदन में आई० सी० एस० परीक्षा से त्याग-पत्र देने का विचार कर रहे थे, उन्होंने बंगाल के तथा भारत के मूर्धन्य नेता देशबन्धु चितंरजन दास से पत्र-व्यवहार किया था। उन्होंने श्री दास को लंदन से दो पत्र लिखे थे। पहला पत्र 16 फरवरी, 1921 को और दूसरा पत्र 2 मार्च, 1921 को। इन पत्रों में सुभाप ने देशबन्धु को अपना परिचय दिया था और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने की इच्छा व्यक्त की थी। सुभाष ने लिखा था कि वे भारत आने पर तीन क्षेत्रों- अध्यापन, पत्रकारिता, और समाज सेवा में काम करना चाहेंगे। उन्होंने यह विचार भी व्यक्त किया था कि कांग्रेस पार्टी ने विभिन्न राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में कोई सुनिश्चित नीति निर्धारित नही की है। सुभाष का विचार था कि कांग्रेस को अपना अलग से एक अनुसंधान विभाग स्थापित्त करना चाहिए था जो विभिन्न विषयों के ऊपर आंकड़े तथा नवीनतम सामग्री एकत्रित करे। इस सामग्री के आधार पर पुस्तकों का प्रकाशन हो और कांग्रेस अपने कार्यक्रम तथा नीतियां तैयार करे।[12] देशबन्धु ने सुभाष के पत्रों का उत्तर दिया था और कहा था कि भारत में उत्साही तथा समर्पित कार्यकर्त्ताओं का अभाव है। जव सुभाष भारत वापस लौटेंगे, उनके पास काम की कमी नहीं होगी।[13] जुलाई, 1916 में सुभाष भारत वापस आ गए।

सारांश

सुभाष चन्द्र बोस का जन्म 23 जनवरी, 1897 को कटक (उड़ीसा) में हुआ था। उनके पिता जानकीनाथ बोस थे और माता प्रभावती। सुभाष का परिवार मध्यवर्ग का परिवार था। पिता सरकारी वकील थे। माता-पिता दोनों धार्मिक संस्कारों के व्यक्ति थे। सुभाष के चौदह भाई-बहन थे। वे अपने माता-पिता की नवीं संतान थे।

सुभाप के पूर्वज बंगाल के मुस्लिम शासकों के यहां उच्च पदों पर नियुक्त थे।

सुभाष के जन्म के समय भारतीय समाज तीव्र परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था। बंगाल पर अंग्रेजों का शासन स्थापित होने के बाद अनेक समाज-सुधारक और लोकनेता सामने आए। इनमें सवसे प्रमुख थे- राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद अरविंद घोष, बंकिम चन्द्र चटर्जी आदि।

सुभाष की प्रारम्भिक शिक्षा कटक के एक मिश्नरी स्कूल में हुई। वे इस स्कूल

में 1902 से 1909 तक पढ़े। 1909 में उन्होने कटक के रैवेन्शा कालिज में दाखिला लिया। कालिज के प्रधान अध्यापक बाबू बेनीमाधव दास के सौम्य व्यक्तित्व का सुभाष पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस काल में ही सुभाष का स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस की रचनाओं से परिचय हुआ जिन्होने उनके जीवन पर स्थायी छाप छोड़ी। सुभाष ने रामकृष्ण और विवेकानंद की शिक्षाओं से प्रभावित होकर योगमार्ग पर चलने की कोशिश की लेकिन इसमें उन्हें विशेष सफलता नही मिली। सुभाष ने आध्यात्मिक साधना के लिए गुरु को खोजने का भी प्रयास किया, पर इसमें भी वे सफल न हो सके। मार्च, 1913 में सुभाषचन्द्र बोस ने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की। वे सारे विश्वविद्यालय में दूसरे स्थान पर आए।

सुभाषचन्द्र बोस ने कलकत्ते में प्रेसीडेन्सी कालिज में दाखिला लिया। यहां वे छात्र नेता बन गए।

1915 में सुभाष ने इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की। बी० ए० में उन्होंने दर्शनशास्त्र का विषय चुना। जनवरी 1916 में उनका अपने कालेज के एक अंग्रेज अध्यापक से झगड़ा हो गया और उन्हे कालिज से निकाल दिया गया। 1917 में उन्हें कलकत्ते के स्काटिश चर्च कालिज में दाखिला मिल गया। 1919 में उन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की। उनके पिता ने उन्हें आई० सी० एस० की परीक्षा पास करने के लिए इंगलैंड भेज दिया। सुभाष बोस ने आई० सी० एस० की परीक्षा अवश्य पास की लेकिन देश सेवा की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने फरवरी 1921 में आई० सी० एस० से त्यागपत्र दे दिया। इंगलैंड में रहते हुए सुभाष ने उस समय के मूर्धन्य भारतीय नेता देशबंधु चितरंजन दास से पत्र-व्यवहार किया। देशबन्धु ने सुभाष को आश्वासन दिया कि जब सुभाष भारत लौटेंगे, उनके पास काम की कमी नहीं रहेगी। जुलाई 1916 में सुभाष भारत वापस लौट आए।

संदर्भ और पाठ-टिप्पणियां

1 सुभाषचन्द्र बोस के भाई-बहिनो के नाम हैं : प्रमिला बाला मित्र, सरला बाला डे, सतीश चन्द्र, शरत चन्द्र, सुरेश चन्द्र, सुधीर चद्र, सुनील चन्द्र, तरुबाला राय, सुभाष चंद्र, मलिना दत्त, प्रतिभा मित्र, कनकलता मित्र, शैलेश चन्द्र, सतोष चद्र।
सुभाष बोस के पूरे वंश-वृक्ष के लिए देखिए, परिशिष्ट 1, *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स*, खंड 1, पृ० 240-241 ।

2. पुरन्दर खां के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखिए, *पुरन्दर खां और महीनगर समाज* लेख जो *नेताजी क्लेक्टेड वर्क्स* , खंड 1 के परिशिष्ट 4 मे दिया गया है। इस लेख के लेखक हैं नगेन्द्रनाथ बोस।

3 शक्ति के उपासक शाक्त कहलाते हैं।

4 विष्णु के उपासक ।

5. केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाज के प्रमुख नेता थे। 1850 और 1856 के बीच में ब्रह्मसमाज की गतिविधियों का क्षेत्र व्यापक हुआ और उसके नेता स्त्री-शिक्षा, विधवा-पुनर्विवाह, मद्य-निषेध और बहुविवाह विरोध जैसे कार्यक्रमो की वकालत करने लगे। ब्रह्मसमाज की इस लहर के प्रतिनिधि वक्ता केशवचन्द्र सेन थे।
6. सुभाषचन्द्र बोस ने अपने पिता जानकी नाथ बोस की स्वयं संक्षिप्त जीवनी लिखी थी। मूल रूप से यह जीवनी बंगला में लिखी गई थी। इसका अनुवाद *नेताजी क्लेक्टेड वर्क्स*, खंड 1 की परिशिष्ट 3 में दिया गया है। पृ० 244-246 ।
7. सुभाप की माता प्रभावती का वंश-वृक्ष *नेताजी क्लेक्टेड वर्क्स*, खंड 1 के परिशिष्ट 2 में अकित है। पृ० 242-243 ।
8. भारत के लिए अग्रेजी शिक्षा की सार्थकता का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज राजा राममोहन राय का वह पत्र है जो उन्होंने 11 दिसम्बर, 1823 को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड एम्सहर्ट को लिखा था। पत्र की पृष्ठभूमि यह थी कि ब्रिटिश सरकार हिंदू पंडितों की देख-रेख में एक संस्कृत स्कूल की स्थापना करना चाहती थी। राजा राममोहन राय ने सरकार के इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि इस तरह के स्कूल में और इस तरह की शिक्षा से भारतीयों को कोई लाभ नही होगा। इस तरह के स्कूल मध्य काल में यूरोप में भी थे और लार्ड बेकन ने उनका विरोध किया था। ये स्कूल नौजवानो को व्याकरण की बारीकियां पढ़ाते हैं और उन्हें अध्यात्म के गोरखधंधो मे उलझा देते हैं। इन विपयो के ज्ञान से न तो व्यक्ति को कोई लाभ होता है और न समाज को। भारतीयो की वास्तविक उन्नति वैज्ञानिक शिक्षा द्वारा ही सभव है। विस्तार के लिए देखिए, विश्वप्रकाश गुप्त तथा मोहिनी गुप्त, *राजा राममोहन राय : व्यक्ति और विचार*, दिल्ली, 1996, पृ० 96-104 ।
9. "Though there was order and system in the education that was imparted, the education itself was hardly adapted to the needs of Indian students. Too much importance was attached to the teaching of the Bible, and the method of teaching it was as unceientific as it was uninteresting. Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol. I, p. 23.
10. सुभाषचन्द्र बोस का प्रेसीडेन्सी कालिज में अंग्रेज अध्यापक ओटेन से जो झगड़ा हुआ था, उसका पूरा विवरण *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स*. खंड 1 की पांचवी और छठी परिशिष्टों मे दिया गया है। सरकार ने इस कांड की जांच के लिए सर आसुतोष मुकर्जी की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की थी। परिशिष्ट 5 में समिति की रिपोर्ट है और परिशिष्ट 6 में इस कांड के बारे में सुभाषचन्द्र बोस का अपना विवरण। पृ० 224-268 ।
11 सुभाषचन्द्र बोस ने अपने बड़े भाई शरत् चन्द्र बोस को 22.9.1920, 16.2.1921, 23.2.1921, 6 4.1921, और 24.4 1921 को आई० सी० एस० के बारे मे पत्र

लिखे थे और उन्हे सूचित किया था कि यह नौकरी उनके मन के अनुकूल नहीं है। सुभाष ने 22.4.1921 को भारत-मंत्री मोटेग्यू को अपना त्याग-पत्र भेज दिया था। पत्र उन्होंने अपने हाथ से लिखा था और उसकी फोटो कापी *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स,* खंड I के पृ० 233 पर दी गई है।

12. *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स,* खंड 1, पृ० 210-217 ।
13. सुभाषचन्द्र बोस ने शरत चन्द्र को लंदन से लिखे गए अपने पत्र दिनांक 28 अप्रैल, 1921 में सी० आर० दास के उत्तर का उल्लेख किया है। *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स,* खंड 1, पृ० 235 ।

5

राजनीति में प्रवेश

गांधी जी से भेंट

सुभाप वोस इंगलैंड में आई० सी० एस० से इस्तीफा देने के वाद 16 जुलाई, 1921 को वम्बई पहुंचे और उन्होंने उसी दिन दोपहर को महात्मा गांधी से मुलाकात की। गांधी जी का असहयोग आदोलन पूरे जोरों पर था और वे देश के सर्वोच्च राजनीतिक नेता थे। गांधी जी का यह वर्चस्व 1947 में आजादी प्राप्त होने के कुछ समय पहले तक वना रहा।

सुभाप वोस ने इंगलैंड में रहते हुए संसार के अन्य भागों के क्रांति-आंदोलनों तथा क्रांतिकारी नेताओं की कार्य-पद्धतियों का अध्ययन किया था और वे भारतीय राजनीति में पूरी तरह उतरने से पहले महात्मा गांधी के विचारों तथा कार्य-पद्धति की जानकारी प्राप्त कर लेना चाहते थे।[1]

सुभाप वोस ने गांधी जी से अपनी पहली मुलाकात का अपनी पुस्तक *द इंडियन स्ट्रगल* में सजीव विवरण दिया है। वोस सीधे इंगलैंड से आए थे। उनकी आयु 24 वर्ष की थी जव कि गांधी जी की आयु इस समय 52 वर्ष की थी। सुभाप और गांधी जी की आयु में 28 वर्ष का अंतर था।

गांधी जी राजनीति और जीवन की कई अग्नि-परीक्षाओं से गुजर चुके थे और आग में तपकर कुंदन वन चुके थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में जातीय भेदभाव का सफलतापूर्वक सामना किया था। वे अपने सत्याग्रह-सिद्धांत का विकास कर चुके थे और 1914 में भारत आकर चंपारण और खेड़ा में इस पद्धति का सफलतापूर्वक उपयोग कर चुके थे। रौलट एक्ट, जलियांवाला वाग और खिलाफत प्रश्न ने गांधी जी को भारतीय राजनीति के केंद्र में खड़ा कर दिया था।

सुभाष बोस ने असहयोग आंदोलन के बारे में गांधी जी से कई प्रश्न पूछे। गांधी जी ने उनका शांतिपूर्वक उत्तर भी दिया। लेकिन सुभाष बोस को गांधी जी के उत्तरों से संतोष नहीं हुआ। गांधी जी ने एक वर्ष में स्वराज प्राप्त करने का वायदा किया था। सुभाष यह नहीं समझ सके कि एक वर्ष मे स्वराज कैसे प्राप्त हो जाएगा। अंग्रेज भारत क्यों छोड़ेंगे? सुभाष बोस का विचार था कि संभवत: गांधी जी के मन में भी आंदोलन की पूरी कल्पना नहीं थी। गांधी जी ने सुभाष को सलाह दी कि वे देशबंधु चिंतरजन दास से मिलें।[2]

देशबंधु चित्तरंजन दास

सुभाष बोस 1916 में देशबन्धु से मिल चुके थे। उस समय वे कालिज से निकाल दिए गए थे। उन्होंने इंगलैंड से देशबंधु को पत्र लिखे थे और उनका उत्तर भी पाया था। देशबंधु सुभाष के राजनीतिक गुरु बन गए और 1925 में अपनी मृत्यु तक बंगाल के सबसे प्रमुख राजनीतिक नेता और राष्ट्रीय आंदोलन के एक मुख्य कर्णधार बने रहे। देशबंधु उच्च जाति के बंगाली थे और उनका जन्म 1870 में ढाका के निकट विक्रमपुर में हुआ था। उनके परिवार का ब्रह्मसमाज से संबंध रहा था और परिवार के कई सदस्यों ने वकालत के पेशे को अपनाया था। देशबंधु ने कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालिज में शिक्षा पाई थी और उन्होने इंगलैंड से बैरिस्टरी पास की थी। उन्होंने कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकालत शुरू की थी और इस पेशे मे काफी नाम कमाया। वे वैष्णव धर्म से प्रभावित थे और उन्होंने कई काव्यग्रंथ लिखे थे जिनमे *सागर संगीत* सबसे प्रसिद्ध था।

स्वदेशी आंदोलन के दिनों में देशबंधु उग्रवादियों के साथ रहे थे। उन्होंने 1909 में अरविंद घोष तथा अन्य कई राजनीतिक बदियों के मुकदमे लड़े थे। वकालत में जवाहर लाल नेहरू के पिता मोती लाल नेहरू उनके प्रतिद्वंदी थे। बाद में मोतीलाल नेहरू उनके राजनीतिक सहयोगी बने और दोनों ने मिल कर स्वराज दल का निर्माण किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में बंगाली क्रातिकारियों ने भारतीय स्वतन्त्रता के नाम पर कई अंग्रेजों की हत्याएं कीं। ब्रिटिश सरकार ने भारत रक्षा अधिनियम के अधीन इन क्रांतिकरियों को अनिश्चित्त काल के लिए कारागार में डाल दिया। 1916 में श्रीमति एनी बीसेंट और लोकमान्य तिलक ने होमरूल आंदोलन चलाया। 1917 में बंगाल के उदारवादी नेता सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी ने देशबन्धु को बंगाल प्रांतीय कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया। देशबन्धु ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अखिल भारतीय दृष्टि का परिचय देते हुए स्वशासन की मांग की।[3]

सुभाष की देशबंधु से भेंट

कलकत्ता पहुंचकर सुभाष बोस देशबंधु से मुलाकात करने के लिए उनके घर

में सुभाषचन्द्र बोस को चौथा स्थान मिला। इससे उनके घर वालों को तो प्रसन्नता हुई लेकिन उनके अपने मन में अंतर्द्वंद्व मच गया। वे विदेशी सरकार की नौकरी करना नहीं चाहते थे। उन्होंने इस विषय में अपने बड़े भाई शरत चन्द्र से पत्र-व्यवहार किया और फरवरी 1921 में इंडियन सिविल सर्विस से त्याग-पत्र दे दिया।[11]

सी० आर० दास से पत्र-व्यवहार

जिस समय सुभाष लदन में आई० सी० एस० परीक्षा से त्याग-पत्र देने का विचार कर रहे थे, उन्होंने बंगाल के तथा भारत के मूर्धन्य नेता देशबन्धु चितरंजन दास से पत्र-व्यवहार किया था। उन्होंने श्री दास को लंदन से दो पत्र लिखे थे। पहला पत्र 16 फरवरी, 1921 को और दूसरा पत्र 2 मार्च, 1921 को। इन पत्रों में सुभाष ने देशबन्धु को अपना परिचय दिया था और राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने की इच्छा व्यक्त की थी। सुभाष ने लिखा था कि वे भारत आने पर तीन क्षेत्रों- अध्यापन, पत्रकारिता, और समाज सेवा में काम करना चाहेंगे। उन्होंने यह विचार भी व्यक्त किया था कि कांग्रेस पार्टी ने विभिन्न राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में कोई सुनिश्चित नीति निर्धारित नहीं की है। सुभाष का विचार था कि कांग्रेस को अपना अलग से एक अनुसंधान विभाग स्थापित करना चाहिए था जो विभिन्न विषयों के ऊपर आंकड़े तथा नवीनतम सामग्री एकत्रित करे। इस सामग्री के आधार पर पुस्तकों का प्रकाशन हो और कांग्रेस अपने कार्यक्रम तथा नीतियां तैयार करे।[12] देशबन्धु ने सुभाष के पत्रों का उत्तर दिया था और कहा था कि भारत में उत्साही तथा समर्पित कार्यकर्त्ताओं का अभाव है। जब सुभाष भारत वापस लौटेंगे, उनके पास काम की कमी नहीं होगी।[13] जुलाई, 1916 में सुभाष भारत वापस आ गए।

सारांश

सुभाष चन्द्र बोस का जन्म 23 जनवरी, 1897 को कटक (उड़ीसा) में हुआ था। उनके पिता जानकीनाथ बोस थे और माता प्रभावती। सुभाष का परिवार मध्यवर्ग का परिवार था। पिता सरकारी वकील थे। माता-पिता दोनों धार्मिक संस्कारों के व्यक्ति थे। सुभाष के चौदह भाई-बहन थे। वे अपने माता-पिता की नवीं संतान थे।

सुभाष के पूर्वज बंगाल के मुस्लिम शासकों के यहां उच्च पदों पर नियुक्त थे।

सुभाष के जन्म के समय भारतीय समाज तीव्र परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था। बंगाल पर अंग्रेजों का शासन स्थापित होने के बाद अनेक समाज-सुधारक और लोकनेता सामने आए। इनमें सबसे प्रमुख थे- राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद अरविंद घोष, बंकिम चन्द्र चटर्जी आदि।

सुभाष की प्रारम्भिक शिक्षा कटक के एक मिशनरी स्कूल में हुई। वे इस स्कूल

में 1902 से 1909 तक पढ़े। 1909 में उन्होंने कटक के रैवेन्शा कालिज में दाखिला लिया। कालिज के प्रधान अध्यापक बाबू बेनीमाधव दास के सौम्य व्यक्तित्व का सुभाष पर गहरा प्रभाव पड़ा। इस काल में ही सुभाष का स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस की रचनाओं से परिचय हुआ जिन्होने उनके जीवन पर स्थायी छाप छोड़ी। सुभाष ने रामकृष्ण और विवेकानंद की शिक्षाओं से प्रभावित होकर योगमार्ग पर चलने की कोशिश की लेकिन इसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली। सुभाष ने आध्यात्मिक साधना के लिए गुरु को खोजने का भी प्रयास किया, पर इसमें भी वे सफल न हो सके। मार्च, 1913 में सुभाषचन्द्र बोस ने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की। वे सारे विश्वविद्यालय में दूसरे स्थान पर आए।

सुभाषचन्द्र बोस ने कलकत्ते में प्रेसीडेन्सी कालिज में दाखिला लिया। यहां वे छात्र नेता बन गए।

1915 में सुभाष ने इंटरमीडिएट की परीक्षा पास की। बी० ए० में उन्होंने दर्शनशास्त्र का विषय चुना। जनवरी 1916 में उनका अपने कालेज के एक अंग्रेज अध्यापक से झगड़ा हो गया और उन्हें कालिज से निकाल दिया गया। 1917 में उन्हें कलकत्ते के स्काटिश चर्च कालिज में दाखिला मिल गया। 1919 में उन्होंने बी० ए० परीक्षा पास की। उनके पिता ने उन्हे आई० सी० एस० की परीक्षा पास करने के लिए इंगलैड भेज दिया। सुभाष बोस ने आई० सी० एस० की परीक्षा अवश्य पास की लेकिन देश सेवा की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने फरवरी 1921 में आई० सी० एस० से त्यागपत्र दे दिया। इंगलैंड में रहते हुए सुभाष ने उस समय के मूर्धन्य भारतीय नेता देशबंधु चितरंजन दास से पत्र-व्यवहार किया। देशबन्धु ने सुभाष को आश्वासन दिया कि जब सुभाष भारत लौटेंगे, उनके पास काम की कमी नहीं रहेगी। जुलाई 1916 में सुभाष भारत वापस लौट आए।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. सुभाषचन्द्र बोस के भाई-बहिनों के नाम हैं : प्रमिला बाला मित्र, सरला बाला डे, सतीश चन्द्र, शरत चन्द्र, सुरेश चन्द्र, सुधीर चंद्र, सुनील चन्द्र, तरुबाला राय, सुभाष चद्र, मलिना दत्त, प्रतिभा मित्र, कनकलता मित्र, शैलेश चन्द्र, संतोष चंद्र।
   सुभाष बोस के पूरे वंश-वृक्ष के लिए देखिए, परिशिष्ट 1, *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स*, खंड 1, पृ० 240-241 ।
2. पुरन्दर खां के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखिए, *पुरन्दर खां और महीनगर समाज* लेख जो *नेताजी क्लेक्टेड वर्क्स* , खंड 1 के परिशिष्ट 4 में दिया गया है। इस लेख के लेखक है नगेन्द्रनाथ बोस।
3. शक्ति के उपासक शाक्त कहलाते है।
4. विष्णु के उपासक ।

5. केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाज के प्रमुख नेता थे। 1850 और 1856 के बीच में ब्रह्मसमाज की गतिविधियों का क्षेत्र व्यापक हुआ और उसके नेता स्त्री-शिक्षा, विधवा-पुनर्विवाह, मद्य-निषेध और बहुविवाह विरोध जैसे कार्यक्रमों की वकालत करने लगे। ब्रह्मसमाज की इस लहर के प्रतिनिधि वक्ता केशवचन्द्र सेन थे।

6. सुभाषचन्द्र बोस ने अपने पिता जानकी नाथ बोस की स्वयं संक्षिप्त जीवनी लिखी थी। मूल रूप से यह जीवनी बंगला में लिखी गई थी। इसका अनुवाद *नेताजी क्लेक्टेड वर्क्स,* खंड 1 की परिशिष्ट 3 में दिया गया है। पृ० 244-246 ।

7. सुभाष की माता प्रभावती का वंश-वृक्ष *नेताजी क्लेक्टेड वर्क्स,* खंड 1 के परिशिष्ट 2 में अंकित है। पृ० 242-243 ।

8. भारत के लिए अंग्रेजी शिक्षा की सार्थकता का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज राजा राममोहन राय का वह पत्र है जो उन्होने 11 दिसम्बर, 1823 को तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड एम्सहर्ट को लिखा था। पत्र की पृष्ठभूमि यह थी कि ब्रिटिश सरकार हिंदू पंडितों की देख-रेख में एक संस्कृत स्कूल की स्थापना करना चाहती थी। राजा राममोहन राय ने सरकार के इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि इस तरह के स्कूल मे और इस तरह की शिक्षा से भारतीयो को कोई लाभ नहीं होगा। इस तरह के स्कूल मध्य काल में यूरोप में भी थे और लार्ड बेकन ने उनका विरोध किया था। ये स्कूल नौजवानों को व्याकरण की बारीकियां पढ़ाते हैं और उन्हें अध्यात्म के गोरखधंधों में उलझा देते हैं। इन विषयों के ज्ञान से न तो व्यक्ति को कोई लाभ होता है और न समाज को। भारतीयों की वास्तविक उन्नति वैज्ञानिक शिक्षा द्वारा ही संभव है। विस्तार के लिए देखिए, विश्वप्रकाश गुप्त तथा मोहिनी गुप्त, *राजा राममोहन राय : व्यक्ति और विचार,* दिल्ली, 1996, पृ० 96-104 ।

9. "Though there was order and system in the education that was imparted, the education itself was hardly adapted to the needs of Indian students. Too much importance was attached to the teaching of the Bible, and the method of teaching it was as unceientific as it was uninteresting. Subhash Chandra Bose. *Netaji Collected Works.* Vol. I, p. 23.

10. सुभाषचन्द्र बोस का प्रेसीडेन्सी कालिज में अंग्रेज अध्यापक ओटेन से जो झगड़ा हुआ था, उसका पूरा विवरण *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स* खंड 1 की पांचवी और छठी परिशिष्टों मे दिया गया है। सरकार ने इस कांड की जांच के लिए सर आसुतोष मुकर्जी की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की थी। परिशिष्ट 5 में समिति की रिपोर्ट है और परिशिष्ट 6 में इस कांड के बारे मे सुभाषचन्द्र बोस का अपना विवरण। पृ० 224-268 ।

11 सुभाषचन्द्र बोस ने अपने बड़े भाई शरत् चन्द्र बोस को 22.9.1920, 16 2.1921, 23.2.1921, 6.4.1921, और 24.4.1921 को आई० सी० एस० के बारे में पत्र

लिखे थे और उन्हे सूचित किया था कि यह नौकरी उनके मन के अनुकूल नहीं है। सुभाष ने 22.4.1921 को भारत-मंत्री मोटेग्यू को अपना त्याग-पत्र भेज दिया था। पत्र उन्होने अपने हाथ से लिखा था और उसकी फोटो कापी *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स,* खड I के पृ० 233 पर दी गई है।

12. *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स,* खंड 1, पृ० 210-217 ।

13. सुभाषचन्द्र बोस ने शरत चन्द्र को लंदन से लिखे गए अपने पत्र दिनांक 28 अप्रैल, 1921 मे सी० आर० दास के उत्तर का उल्लेख किया है। *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स,* खंड 1, पृ० 235 ।

5

राजनीति में प्रवेश

गांधी जी से भेंट

सुभाष बोस इंगलैड में आई० सी० एस० से इस्तीफा देने के बाद 16 जुलाई, 1921 को बम्बई पहुंचे और उन्होंने उसी दिन दोपहर को महात्मा गांधी से मुलाकात की। गांधी जी का असहयोग आदोलन पूरे जोरों पर था और वे देश के सर्वोच्च राजनीतिक नेता थे। गांधी जी का यह वर्चस्व 1947 मे आजादी प्राप्त होने के कुछ समय पहले तक बना रहा।

सुभाप बोस ने इंगलैंड में रहते हुए संसार के अन्य भागों के क्रांति-आंदोलनों तथा क्रांतिकारी नेताओं की कार्य-पद्धतियों का अध्ययन किया था और वे भारतीय राजनीति में पूरी तरह उतरने से पहले महात्मा गांधी के विचारों तथा कार्य-पद्धति की जानकारी प्राप्त कर लेना चाहते थे।[1]

सुभाष बोस ने गांधी जी से अपनी पहली मुलाकात का अपनी पुस्तक *द इंडियन स्ट्रगल* में सजीव विवरण दिया है। बोस सीधे इंगलैंड से आए थे। उनकी आयु 24 वर्ष की थी जब कि गांधी जी की आयु इस समय 52 वर्ष की थी। सुभाष और गांधी जी की आयु में 28 वर्ष का अंतर था।

गांधी जी राजनीति और जीवन की कई अग्नि-परीक्षाओं से गुजर चुके थे और आग में तपकर कुंदन बन चुके थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में जातीय भेदभांव का सफलतापूर्वक सामना किया था। वे अपने सत्याग्रह-सिद्धांत का विकास कर चुके थे और 1914 में भारत आकर चंपारण और खेड़ा में इस पद्धति का सफलतापूर्वक उपयोग कर चुके थे। रौलट एक्ट, जलियांवाला बाग और खिलाफत प्रश्न ने गांधी जी को भारतीय राजनीति के केंद्र में खड़ा कर दिया था।

सुभाष बोस ने असहयोग आंदोलन के बारे में गांधी जी से कई प्रश्न पूछे। गांधी जी ने उनका शातिपूर्वक उत्तर भी दिया। लेकिन सुभाष बोस को गांधी जी के उत्तरों से संतोष नहीं हुआ। गांधी जी ने एक वर्ष में स्वराज प्राप्त करने का वायदा किया था। सुभाष यह नही समझ सके कि एक वर्ष में स्वराज कैसे प्राप्त हो जाएगा। अंग्रेज भारत क्यों छोड़ेंगे? सुभाष बोस का विचार था कि संभवतः गांधी जी के मन में भी आंदोलन की पूरी कल्पना नहीं थी। गांधी जी ने सुभाष को सलाह दी कि वे देशबंधु चिंतरजन दास से मिलें।[2]

देशबंधु चितरंजन दास

सुभाष बोस 1916 में देशबन्धु से मिल चुके थे। उस समय वे कालिज से निकाल दिए गए थे। उन्होंने इंगलैंड से देशबंधु को पत्र लिखे थे और उनका उत्तर भी पाया था। देशबंधु सुभाष के राजनीतिक गुरु बन गए और 1925 में अपनी मृत्यु तक बंगाल के सबसे प्रमुख राजनीतिक नेता और राष्ट्रीय आंदोलन के एक मुख्य कर्णधार बने रहे। देशबंधु उच्च जाति के बंगाली थे और उनका जन्म 1870 में ढाका के निकट विक्रमपुर में हुआ था। उनके परिवार का ब्रह्मसमाज से संबंध रहा था और परिवार के कई सदस्यों ने वकालत के पेशे को अपनाया था। देशबंधु ने कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालिज मे शिक्षा पाई थी और उन्होने इंगलैड से बैरिस्टरी पास की थी। उन्होने कलकत्ता उच्च न्यायालय में वकालत शुरू की थी और इस पेशे में काफी नाम कमाया। वे वैष्णव धर्म से प्रभावित थे और उन्होने कई काव्यग्रंथ लिखे थे जिनमें *सागर संगीत* सबसे प्रसिद्ध था।

स्वदेशी आंदोलन के दिनों में देशबंधु उग्रवादियों के साथ रहे थे। उन्होंने 1909 में अरविंद घोष तथा अन्य कई राजनीतिक बंदियों के मुकदमे लड़े थे। वकालत में जवाहर लाल नेहरू के पिता मोती लाल नेहरू उनके प्रतिद्वंदी थे। बाद में मोतीलाल नेहरु उनके राजनीतिक सहयोगी वने और दोनों ने मिल कर स्वराज दल का निर्माण किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में बंगाली क्रातिकारियों ने भारतीय स्वतंत्रता के नाम पर कई अंग्रेजों की हत्याए की। ब्रिटिश सरकार ने भारत रक्षा अधिनियम के अधीन इन क्रांतिकरियों को अनिश्चित काल के लिए कारागार में डाल दिया। 1916 मे श्रीमति एनी बीसेंट और लोकमान्य तिलक ने होमरूल आंदोलन चलाया। 1917 मे वंगाल के उदारवादी नेता सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी ने देशबन्धु को बगाल प्रांतीय कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया। देशवन्धु ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अखिल भारतीय दृष्टि का परिचय देते हुए स्वशासन की मांग की।[3]

सुभाष की देशबंधु से भेंट

कलकत्ता पहुचकर सुभाष बोस देशबधु से मुलाकात करने के लिए उनके घर

गए। देशबंधु उस समय देहातों के दौरे पर गए थे। सुभाष उनसे मिलने के लिए दुबारा उनके घर गए। देशबंधु उस समय भी घर नहीं थे। कहीं बाहर गए हुए थे। उनकी गैर-हाज़िरी में उनकी धर्मपत्नी श्रीमति वासंती देवी ने सुभाष का स्वागत किया। कुछ देर बाद देशबंधु घर वापस आए। सुभाष उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें लगा कि उन्हें उनका गुरु मिल गया है। सुभाष ने तत्काल ही देशबंधु के चरण-चिन्हों पर चलने का संकल्प किया।[4]

सुभाष बोस 1921 में राष्ट्रीय आंदोलन में सम्मिलित हुए। यह समूचे देश में उत्तेजना का समय था। लग रहा था कि देश सोते से जाग रहा है। बंगाल के मुस्लिम कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम की राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कविताओं ने बंगाल के तरुणों को मातृभूमि का दीवाना बना दिया था। ऐसे समय में सुभाष बोस ने देशबंधु से कुछ निश्चित काम मांगा। बोस भी बंगाल की जनता के लिए सर्वथा अपरिचित नहीं थे। 1916 में वे एक अंग्रेज अध्यापक के साथ मारपीट करने के अपराध में कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालिज से निकाल दिए गए थे। उन्होंने इंगलैंड में आई० सी० एस० की परीक्षा पास की थी और फिर राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़ने के विचार से उससे त्याग-पत्र दे दिया था। वे एक जाने-माने बंगाली परिवार से संबद्ध थे। उनका व्यक्तित्व दबंग, भव्य और आकर्षक था। उन्होंने तेज दिमाग पाया था। कर्मठता उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। खतरों से जूझने में उन्हें आनंद आता था। उनमें जन्मजात नेता होने के सभी गुण विद्यमान थे।

नेशनल कालिज के प्रिंसिपल

देशबंधु ने सुभाष को बंगाल नेशनल कालिज का प्रिंसिपल, राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल का कप्तान और *बंगलार कथा* नामक बंगाली साप्ताहिक का संपादक बनाया। सुभाष बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी में विधिवत सम्मिलित हुए और उसका प्रचार-कार्य करने लगे। इसके साथ ही उन्होंने भवानीपुर सेवक समिति के माध्यम से रचनात्मक कार्य का भी श्री गणेश किया। शीघ्र ही उनका बंगाल तथा देश के विभिन्न कांग्रेसी नेताओं से संपर्क स्थापित हो गया। उनका भवानीपुर स्थित मकान राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने वाले कार्यकर्त्ताओं का अड्डा बन गया। उनके मकान पर हर रविवार को सभाएं होने लगीं। सुभाष बोस के अंतरंग मित्र दिलीप कुमार राय अकसर इन सभाओं में गीत गाते थे। सुभाष बोस ने नेशनल कालिज में प्रिंसिपल का पद पूरी जिम्मेदारी से निभाया।[5] यदि कभी छात्र कक्षा में नहीं आते थे, तब भी वे उसमें उपस्थित रहते थे। नेशनल कालिज का पाठ्यक्रम उपलब्ध नहीं है। लेकिन सुभाष की उत्तरकालीन रचनाओं से ज्ञात होता है कि वे बंगाली साहित्य को महत्त्व देते थे और स्वामी विवेकानंद की ही भांति यह मानते थे कि सार्थक शिक्षा में शरीर के स्वास्थ्य की ओर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

पत्रकारिता

सुभाषचन्द्र बोस का बंगाली पत्र *आत्मशक्ति* और अंग्रेजी दैनिक *फारवर्ड* से भी निकट संबंध रहा था। *आत्मशक्ति* 1922 में और *फारवर्ड* 1923 में आरम्भ हुआ था।

असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम

1921 में सुभाष ने असहयोग आंदोलन के कार्यक्रमों तथा प्रदर्शनों का भी आयोजन किया था। इन कार्यक्रमों में मुख्य थे :

1. सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों का त्याग कर दिया जाए।
2. स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अपने पदों से त्याग-पत्र दे दें।
3. सरकारी उत्सवों तथा सभाओं में शामिल न हुआ जाए।
4. सरकारी विद्यालयों का बहिष्कार किया जाए और उनके स्थान पर राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की जाए।
5. सरकारी अदालतों का बहिष्कार किया जाए और आपसी विवादों को निबटाने के लिए पंचायती अदालतें स्थापित की जाएं।
6. सैनिक, क्लर्क और मज़दूर मैसोपोटामिया में ब्रिटिश सरकार की नौकरी पर जाने से इंकार कर दें।
7. विधानसभाओं का बहिष्कार किया जाए, उम्मीदवार चुनावों में खड़े न हों। मतदाता किसी को वोट न दें।
8. विदेशी माल और शराब का बहिष्कार किया जाए। घर-घर से सूत की कताई और कपड़े की बुनाई शुरू हो।
9. छुआछूत का अंत किया जाए।
10. हिन्दू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा दिया जाए।[6]

1921 के कलकत्ता और फिर नागपुर अधिवेशन में गांधी ने असहयोग के साथ ही सविनय अवज्ञा आंदोलन का प्रस्ताव भी कांग्रेस से पास करा लिया। कलकत्ते में श्रीमति सी० आर० दास तथा अन्य कई महिलाओं को गिरफ्तार कर लिया गया। लेकिन लोगों में इससे इतना रोष फैला कि सरकार ने उन्हें छोड़ दिया।

प्रिंस आफ वेल्स की भारत-यात्रा का बहिष्कार

17 नवबंर, 1921 को प्रिंस आफ वेल्स भारत आए। सारे देश में उनकी यात्रा का बहिष्कार हुआ। कलकत्ते में मुकम्मिल हड़ताल हुई। हड़ताल का संगठन करने वालों में सुभाष प्रमुख थे। सारे देश में करीब 25,000 कांग्रेसी कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हुए। देशबंधु चाहते थे कि सुभाष जेल न जाएं और बाहर ही रह कर काम करें। उपेन्द्रनाथ

बेनर्जी ने उन दिनों सुभाष की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है कि काम करते समय वे थकना तो जानते ही नहीं थे। जिस काम को हाथ में लेते उसे पूरा कर के छोड़ते थे।[7]

देशबंधु बंगाल में कांग्रेस आंदोलन के डिक्टेटर

नवंबर, 1921 में कांग्रेस ने असहयोग आंदोलन को चलाने के लिए विभिन्न प्रांतों में डिक्टेटर नियुक्त किए। देशबंधु बंगाल के डिक्टेटर बने। उन्होंने सारे बंगाल का दौरा किया और नौजवानों का आह्वान किया कि उनकी असली माता भारतमाता है जो बेड़ियों में जकड़ी हुई है। बेटों का कर्त्तव्य है कि वे अपनी मां को आज़ाद करें। भारतमाता की यह कल्पना बंकिम चन्द्र ने दी थी।[8] अरविंद घोष ने इसका प्रचार किया था और अब देशबंधु चितरंजन दास ने उसे जनमानस पर गहराई से अंकित किया। सुभाष बोस भी इस भावना से प्रभावित हुए थे।

सुभाषचन्द्र बोस की गिरफ्तारी

नवंबर हड़ताल के बाद ब्रिटिश सरकार ने अपने दमन-चक्र में तेजी की। राष्ट्रीय समाचार-पत्रों का कहना था कि यह आंदोलन की सफलता का संकेत था। सारे देश में कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवकों की धर-पकड़ शुरू हो गई। 10 दिसम्बर, 1921 को बोस तथा देशबंधु दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें छः महीनों के कारावास का दंड मिला। सुभाष की गिरफ्तारी पर उनके पिता जानकीनाथ बोस को गर्व हुआ। वे बलिदान की सार्थकता समझते थे। उनका विचार था कि इस प्रकार के बलिदानों से स्वराज का पथ प्रशस्त होगा।[9]

सुभाष 1921-1922 में आठ महीने जेल में देशबंधु के साथ रहे। दो महीने तो वे प्रेसीडेन्सी जेल में बराबर की कोठरियों में थे। शेष छह महीने उन्हें अलीपुर जेल में एक बड़े हाल में रखा गया। वहां उनके साथ उनके कुछ अन्य मित्र भी थे। सुभाष ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि इन कुछ महीनों उन्होंने देशबंधु की प्राणपण से सेवा की। उनकी व्यक्तिगत सुख-सुविधाओं का ध्यान रखा। जेल के आठ महीनों में सुभाष को देशबंधु के गुणों का सच्चा परिचय मिला। देशबंधु परिहास प्रिय थे। वे अपने सहयोगियों को सदा प्रसन्न देखना चाहते थे। उनका अंग्रेजी और बंगला भाषा का ज्ञान विस्तृत था। देशबंधु बहुत सी बातें भूल जाते थे लेकिन साहित्य के क्षेत्र में उनकी स्मृति आश्चर्यजनक थी।[10]

पंडित मदनमोहन मालवीय की मध्यस्थता

जनवरी, 1922 में पंडित मदनमोहन मालवीय ने कांग्रेस और सरकार के बीच मध्यस्थता करने का प्रयास किया। सरकार ने भारतीय समस्या पर विचार करने के लिए

एक गोलमेज़ परिषद का सुझाव रखा। गांधी जी ने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया। देशबंधु इस समय जेल में थे। उनकी इच्छा थी कि सरकार के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जाए। लेकिन जेल में रहते हुए वे कुछ न कर सके। बाद में उन्होंने अपने एक वक्तव्य में गांधी जी के दृष्टिकोण पर आपत्ति की और अपना रोष प्रकट किया।"

दिसम्बर, 1921 में कांग्रेस का अहमदाबाद में अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन के अध्यक्ष देशबन्धु निर्वाचित किए गए थे लेकिन चूंकि वे जेल में थे इसलिए उनका अध्यक्षीय भाषण गांधी जी ने पढ़ा। इस अधिवेशन में उत्तरप्रदेश के एक नेता हसरत मोहानी ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पेश किया था लेकिन गांधी जी की कोशिश से वह अस्वीकृत हो गया। अहमदाबाद अधिवेशन में असहयोग आंदोलन को और तेज करने का निर्णय हुआ। गांधी जी को अधिकार दिया गया कि वे सविनय अवज्ञा आंदोलन भी शुरू कर सकते हैं।

चौरी–चौरा कांड और आंदोलन का स्थगन

गांधी जी इस दिशा में आगे की कार्यवाही की सोच ही रहे थे कि 5 फरवरी, 1922 को उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी–चौरा नामक स्थान पर क्रोध में उत्तावली भीड़ ने थाने में आग लगा दी जिसमें पुलिस के 22 सिपाहियों की मृत्यु हो गई। गांधी जी हिंसा की इस घटना से विचलित हो गए। उन्हें लगा कि देश अभी उनकी अहिंसक लड़ाई के लिए तैयार नहीं है। उन्होंने तत्काल आंदोलन स्थगित कर दिया। आंदोलन का इस प्रकार स्थगित किया जाना जनता और नेताओं दोनों को नागवार गुजरा। देशबंधु चितरंजन दास और पडित मोतीलाल नेहरू ने आंदोलन को स्थगित करने के गांधीजी के निर्णय की आलोचना की। 10 मार्च, 1922 को गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गए।

गांधी जी का मुकदमा

गांधी जी पर अहमदाबाद के जिला मजिस्ट्रेट ब्रूमफील्ड की अदालत में मुकदमा चला। जज ब्रूमफील्ड और अभियुक्त गांधी जी दोनो ने ही अपूर्व गरिमा का परिचय दिया। 14 मार्च, 1922 को गांधी जी ने अदालत में अपना ऐतिहासिक वक्तव्य दिया। यह वक्तव्य मानव इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों– पेरीक्लीज के अंत्येष्टि भाषण, सुकरात के अंतिम वक्तव्य, अमरीका की स्वातंत्र्य–घोषणा और अब्राहम लिंकन के गेट्सबर्ग भाषण– में गिना जा सकता है। इस वक्तव्य में गांधी जी के संपूर्ण जीवन का सार निहित है।

मुकदमा महात्मा गांधी और श्री शंकरलाल घेलाभाई बैंकर के ऊपर चला था। गांधी जी *यंग इंडिया* पत्र के संपादक थे और श्री शंकरलाल इसके मुद्रक और

प्रकाशक। मुकदमा भारतीय दंड संहिता की धारा 124 के आधार पर चला था। गांधी जी पर आरोप था कि उन्होंने अपने तीन लेखों– *टैम्परिंग विद लायल्टी* (राजभक्ति में दरार), *द पज़ल एंड इट्स साल्यूशन* (पहेली और उसका समाधान) और *शेकिंग द मेन्स* (जागरण का मंत्र) – में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लोगों में असंतोष भड़काया है। ये लेख *यंग इंडिया* के 29 सितम्बर, 1921, 15 दिसम्बर 1921 और 23 फरवरी, 1922 के अंकों में प्रकाशित हुए थे। गांधी जी ने न्यायाधीश के सामने दिए गए अपने वक्तव्य में अपना अपराध स्वीकार किया और बताया कि वे किस प्रकार राजभक्त से राजद्रोही बने। गांधी जी ने अदालत को बताया कि उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन दक्षिण अफ्रीका में 1893 में आरंभ किया था। उस देश की ब्रिटिश सरकार से उनका संपर्क सुखद न था। चूंकि वे भारतीय थे, अतः मनुष्य के नाते उन्हें कोई अधिकार प्राप्त न था। लेकिन उन्होंने समझा कि मूलतः ब्रिटिश सरकार अच्छी है। यदि उसमें कुछ दोष है, तो वह व्यवस्था का दोष है। प्रयत्न करने पर ये दोष दूर किए जा सकते हैं। अतः गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार के दोषों की आलोचना करते हुए भी उसे पूरा सहयोग दिया। जब 1899 में बोअर युद्ध के समय ब्रिटिश सरकार के सामने संकट आया, तब गांधी जी ने स्वयं सेवकों की एक टुकड़ी संगठित कर के युद्ध में घायलों की सेवा की। इसी प्रकार 1906 में जुलू युद्ध के समय भी वे सरकार के काम आए। उन्हें दोनों अवसरों पर सरकार की ओर से पदक मिले और उनकी प्रशंसा की गई। दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी ने जो काम किया था, उसके लिए लार्ड हार्डिंज ने उन्हें कैसरे-हिंद स्वर्ण पदक दिया था। 1914 में जब इंगलैंड और जर्मनी के बीच युद्ध आरम्भ हुआ, तब गांधी जी ने इंगलैंड में प्रवासी भारतीयों विशेषकर भारतीय विद्यार्थियों की एक स्वयंसेवक सेना एकत्रित की। 1918 में उन्होंने ब्रिटिश सरकार के युद्ध-प्रयत्नों में सहायता देने के लिए रंगरूटों की भर्ती की और यह काम करते-करते अपने स्वास्थ्य को भी दांव पर लगा दिया। इन सारी सेवाओं का लक्ष्य यह था कि उनके देशवासियों को साम्राज्य में बराबर की हिस्सेदारी मिले।

लेकिन गांधी जी के मनोरथ पूरे नहीं हुए। रौलट एक्ट पहला आघात था। उसके बाद पंजाब में जलियांवाला हत्याकांड हुआ। लोगों को तरह-तरह की यातनाएं दी गई। ब्रिटिश सरकार ने तुर्की की अखंडता के बारे में भारत के मुसलमानों से जो वायदे किए थे, उनका पालन नहीं किया गया।

इन सबके बावजूद 1919 की अमृतसर कांग्रेस में गांधी जी ने मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों पर अमल करने की वकालत की। उन्हें आशा थी कि सरकार पंजाब के घावों पर मलहम लगाएगी और मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों की कमियों को दूर करेगी।

लेकिन गांधी जी की सारी आशाएं धूल में मिल गई। सरकार ने खिलाफत के बारे में अपना वायदा नहीं निभाया। पंजाब के क्रूर कांड पर लीपापोती करने की

कोशिश की गई। अपराधियों को दंड देने के बजाय पुरस्कार दिए गए। सांविधानिक सुधारों की कमियां ज्यों की त्यों बनी रहीं।

इन सारे अनुभवों के बाद गांधी जी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अंग्रेजों ने भारत को राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से नितांत असहाय बना दिया है। भारत पूरी तरह अपाहिज हो गया है। यदि उस पर बाहर से कोई हमला हो तो वह उसका मुकाबला नहीं कर सकता। स्थिति कुछ ऐसी थी कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज पाने में कई पीढ़ियां लगेंगी। अंग्रेजों के भारत आने से पहले भारत के कुटीर उद्योग विकसित थे। अंग्रेजों ने इन उद्योगों को नष्ट कर दिया। शहरों और गांवों के बीच भेद की दीवार खड़ी हो गई है। शहर वालों को गांव वालों की कठिनाइयों का कोई ज्ञान नहीं है। भारतीय अदालतों में यूरोपीयों के मुकाबले भारतीयों को कोई न्याय नहीं मिलता।

गांधी जी ने घोषणा की कि अहिंसा उनके जीवन और उनके द्वारा संचालित आंदोलन का मूलमंत्र है। असहयोग आंदोलन के द्वारा उन्होंने ब्रिटिश सरकार की सेवा की है और उसे उसकी त्रुटियों का ज्ञान करा दिया है। गांधी जी ने न्यायाधीश महोदय के सामने दो ही विकल्प रखे। यदि न्यायाधीश उन्हें दोषी मानते हैं तो उन्हें कड़े से कड़ा दंड दिया जाए। यदि न्यायाधीश उन्हें दोषी न मानते हों और शासन-व्यवस्था के संबंध में उनकी आलोचना से सहमत हों तो अपने पद से त्याग-पत्र दे दें।[12]

न्यायाधीश ब्रूमफील्ड ने गांधी जी को छह वर्ष का कारावास-दंड दिया।

गांधी जी की गिरफ्तारी और सज़ा के बाद असहयोग आंदोलन शिथिल पड़ गया।

असहयोग आंदोलन का महत्व

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में असहयोग आंदोलन मील का पत्थर है। इसने राष्ट्रीय आंदोलन के एक युग का अंत किया और दूसरे का आरंभ। इस आंदोलन की पूरी रूपरेखा गांधी जी ने बनाई थी। इस आंदोलन का संचालन भी उन्होने किया था। उनके नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन क्रांतिकारी आंदोलन बना, वह जन-आंदोलन बना। देश के सभी वर्गों ने आंदोलन में भाग लिया। खद्दर के कपड़े पहनना और जेल जाना गौरव का विषय बन गया। लोगों में स्वाभिमान और त्याग की भावना पैदा हुई। जनता में सरकारी खिताबों के प्रति कोई आदर नहीं रहा। लोगों के मन से सरकार के प्रति भय जाता रहा। आंदोलन शहरों तक सीमित न रह कर गांव-गांव मे पहुंच गया। गांवों की दुरवस्था की ओर लोगों का ध्यान गया। विदेशी शिक्षा और भाषा के प्रति लोगों का मोह टूटा। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की नींव पड़ी। देशी भाषाओं का महत्व स्वीकार किया जाने लगा। देश में अभूतपूर्व एकता के दर्शन हुए। हिंदुओं और मुसलमानों में सौहार्द पनपा।[13]

असहयोग आंदोलन की त्रुटियां

लेकिन असहयोग आंदोलन में कुछ त्रुटियां भी थी। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में खिलाफत के प्रश्न को मिलाना पंथ-निरपेक्षता के सिद्धांत के प्रतिकुल था। तुर्की के नेता मुस्तफा कमाल कूाशा ने तुर्की को आधुनिक पंथ-निरपेक्ष राज्य बनाया और खिलाफत का अंत कर दिया। इससे भारत में खिलाफत आंदोलन की जड़ ही कट गई। असहयोग आंदोलन के अचानक समाप्त होने से हिंदू-मुस्लिम एकता को आघात पहुंचा। 1923 और 1927 के बीच देश में अनेक स्थानों पर सांप्रदायिक दंगे हुए।[14]

असहयोग आंदोलन के दिनों में कांग्रेस ने विधान-मंडलों के चुनावों में भाग नहीं लिया। लेकिन चुनाव हुए और अधिकतर अवसरवादी तथा सरकार के पिट्ठू विधान मंडलों में पहुंच गए।

असहयोग आंदोलन के दिनों में सुभाष बोस बंगाल में देशबंधु चितरंजन दास की कमान में काम कर रहे थे। जिस समय गांधी जी ने असहयोग आंदोलन समाप्त किया, उस समय सुभाप तथा देशबंधु कलकत्ते की अलीपुर जेल में थे। देशबंधु का विचार था कि गांधी जी ने असहयोग आंदोलन अचानक ही समाप्त कर के राजनय का परिचय नहीं दिया। गांधी जी ने आंदोलन का श्रीगणेश और संचालन तो अच्छे ढंग से किया था लेकिन जैसे ही आदोलन अपने शिखर पर पहुंचा गांधी जी साहस खो बैठे।[15]

असहयोग आंदोलन की रवीन्द्रनाथ टैगोर ने आलोचना की थी। टैगोर का विचार था कि चर्खा चलाकर आज़ादी नहीं पाई जा सकती। उनके विचार से विदेशी कपड़ों की होली जलाने से भी कोई लाभ नहीं था।

सुभाष गांधी जी के असहयोग कार्यक्रम से पूरी तरह सहमत नहीं थे। वे चर्खे के उत्साही भक्त न थे। वे राजनीतिक प्राणी थे और राजनीति को राजनीति की तरह चलाना चाहते थे।

कांग्रेस ने हकीम अजमल खां, मोतीलाल नेहरू, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी और विट्ठल भाई पटेल की एक समिति बनाई थी जिसने सविनय अवज्ञा आंदोलन की सफ़लता असफलता की जांच की थी। समिति का निष्कर्ष था कि आदोलन का विद्यालयों और अदालतों के बहिष्कार का कार्यक्रम असफल रहा था। अब यह आंदोलन बाहर से जारी रखा जाए या कांग्रेस विधानमंडलों के भीतर जाकर सरकार के साथ असहयोग का मार्ग अपनाए इस पर सदस्यों में मतभेद था। सुभाषचन्द्र बोस का जीवन और राष्ट्रीय आंदोलन का आगामी चरण इसी समस्या को सुलझाने के प्रयास थे।

सारांश

सुभाषचन्द्र बोस इंगलैंड में आई० सी० एस० से इस्तीफा देने के बाद 16 जुलाई, 1921 को बम्बई पहुंचे। उन्होंने उसी दिन गांधी जी से भेंट की। इस भेंट का उनके

ऊपर अनुकूल असर नहीं पड़ा।

सुभाषचन्द्र बोस ने कुछ दिनों बाद कलकत्ते में देशबंधु चितरंजन दास से भेंट की और उनके अनुयायी बन गए।

देशबंधु ने सुभाष को नेशनल कालिज का प्रिंसिपल, राष्ट्रीय स्वयंसेवक दल का कप्तान और *बंगलार कथा* नामक बंगाली साप्ताहिक का संपादक बनाया। सुभाष बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी में विधिवत सम्मिलित हुए और उसका प्रचार कार्य करने लगे। शीघ्र ही उनका बंगाल तथा देश के विभिन्न कांग्रेसी नेताओं से संपर्क हो गया।

सुभाष ने नेशनल कालिज में प्रिंसिपल का पद पूरी ज़िम्मेदारी से निभाया।

सुभाष बोस का बंगाली पत्र *आत्मशक्ति* और अंग्रेजी दैनिक *फारवर्ड* से भी निकट संबंध रहा।

1921 में देशबंधु के नेतृत्व में सुभाष ने असहयोग आंदोलन के कार्यक्रमों तथा प्रदर्शनों में सक्रिय भाग लिया।

17 नवंबर, 1921 को प्रिंस आफ वेल्स भारत आए। सारे देश में उनकी यात्रा का बहिष्कार हुआ। कलकत्ते में प्रिंस की भारत-यात्रा के विरोध में सुभाष बोस ने हड़ताल का आयोजन किया। इस हड़ताल के बाद सरकार ने अपने दमन चक्र में तेजी की। 10 दिसम्बर, 1921 को बोस तथा देशबंधु दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया। सुभाष बोस की गिरफ्तारी पर उनके पिता जानकीनाथ बोस को उन पर गर्व हुआ।

सुभाष बोस 1921-1922 में आठ महीने जेल में देशबंधु के साथ रहे। इस बीच दोनों को एक-दूसरे को जानने का अवसर मिला।

जनवरी, 1922 में पंडित मदनमोहन मालवीय ने कांग्रेस तथा सरकार के बीच मध्यस्थता का प्रस्ताव किया। सरकार ने भारतीय समस्या को सुलझाने के लिए एक गोलमेज परिषद का सुझाव रखा। देशबंधु इस समय जेल में थे। वे सरकार के इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के पक्ष में थे। लेकिन गांधी जी ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

दिसम्बर, 1921 में कांग्रेस का अहमदाबाद में अधिवेशन हुआ। अधिवेशन में असहयोग आंदोलन को और तेज करने का निर्णय किया गया।

5 फरवरी, 1922 को उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी-चौरा नामक स्थान पर भीड़ ने 22 पुलिसकर्मियों की हत्या कर दी। इस पर गांधी जी ने असहयोग आंदोलन बंद कर दिया। सुभाष बोस, देशबंधु चितरंजन दास, पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय आदि नेताओं ने गांधीजी के इस कदम की तीव्र आलोचना की।

10 मार्च, 1922 को गांधी जी गिरफ्तार कर लिए गए। उन पर मुक़दमा चला।

इस अवसर पर उन्होंने एक ऐतिहासिक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने बताया कि वे कट्टर राजभक्त से कट्टर राजद्रोही कैसे बने थे। न्यायाधीश ने उन्हें छह वर्ष का कारावास-दंड दिया। गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद असहयोग आंदोलन मुरझा गया।

असहयोग आंदोलन ने देश में असाधारण जागृति उत्पन्न की। इसने भारतीय राजनीति में एक युग का अंत किया और दूसरे का आरंभ।

असहयोग आंदोलन में तीन त्रुटियां थी : 1. इसमें सारी शक्ति एक व्यक्ति-महात्मा गांधी के हाथों में केंद्रित कर दी गई थी। 2. भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में खिलाफत के प्रश्न को मिलाना पंथ-निरपेक्षता के सिद्धांत के प्रतिकूल था। 3. असहयोग आंदोलन के आरंभ में गांधी जी ने वायदा किया था कि एक साल में स्वराज मिल जाएगा। सुभाष बोस के विचार से इस प्रकार का वायदा बचपना था।

सदंर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. Subhash Chandra Bose, *The Indian Struggle, Netaji Collected* Works, Vol.2 pp. 57-58.
2. Ibid., pp.58-59.
3. "We can frankly tell the Anglo-Indian community that there are no Extremists among us, no Moderates. The Hindus and Mahommedans of Bengal are all nationalists – they are neither Extremists nor Moderates... we shall accept no Self-Government, no Home Rule unless it recognises and includes within it the tuning millions of India... We want Home Rule, broad based on the will of the people." C. R. Das, *India for Indians*, 3rd ed. Madras, 1921, pp.13-14.
4. "During the course of our conversation I began to feel that here was a man who knew what he was about – who could give all that he had and who could demand from others all they could give – a man to whom youthfulness was not a shortcoming but a virtue. By the time our conversation came to an end my mind was made up. I felt that I had found a leader and I meant to follow him." Subhash Chandra Bose, *Indian Struggle,* p.60
5. "Subhash's dutifulness, his devotion to work was unique, unsual. When the National College was established, Subhash became its principal. He did everything with equal zeal, from arranging the benches, chairs, tables in the classrooms to teaching the boys. With meticulous care he used to do the book-keeping for the college, taking care of every single farthing earned or spent by the college. This work of accountancy often kept him busy late in the night and

Subhash never cared – the job must be done thoroughly and well." Upendra Nath Bannerjee, Quoted by Leonard A.Gordon, *Brothers Against the Raj – A Bibliography of Sarat and Subhash Chandra Bose,* p.85.

6. विश्वप्रकाश गुप्त तथा मोहिनी गुप्त, *महात्मा गांधी : व्यक्ति और विचार,* दिल्ली, 1996, पृ० 34 ।

7. "Never in my life did I see such a tireless worker. Laxity is almost an universal trait of the Bengalis. We are rather fond of taking our time in doing anything, we procrastinate. Subhash was entirely differnet. He had, what in English is called 'Buldog tenacity'. He nevar gave up something in the middle and once a job was started by him, it was to be finished. A must for him. And hardship was no problem for him; he was ready to go without food, rest, sleep to finish the job. So he was also not ready to tolerate the laxity of others working with him and any sign of it in others made him mad..." Upendra Nath Bannerjee. Quoted by Leonard A. Gordon, *Brothers against Raj : A Biography of Saı at and Subhash Chandra Bose*, p.88.

8. बंकिम चन्द्र चटर्जी द्वारा लिखित *वन्दे मातरम्* आज हमारा राष्ट्रगीत है। यह गीत उनकी पुस्तक *आनंदमठ* (1882) से लिया गया है। राष्ट्रीय आंदोलन के दिनों में झंडा सलामी, सम्मेलन आदि शुरू होने से पहले यह राष्ट्रीय गीत गाया जाता था। गीत इस प्रकार है :

सुजलां, सुफलां, मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलां मारतम्
वन्दे मातरम्।
शुभ ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्
फुल्ल कुसुमित द्रुमदत्त शोभिनीम्
सुहासिनीम, सुमधुर भाषिणीम्
सुखदाम्, वरदाम्, मातरम्।
त्रिंश कोटि कंठ, कलकल निनाद कराले
द्वित्रिंश कोटि भुजैधृत खर कर वाले
कि वोले मां तुमि अबले
वहुबल धारिणीम्, नमामि तारिणीम्
रिपुदल वारिणीम्, मातरम्
वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्।

9. सुभाष के पिता श्री जानकीनाथ बोस ने 12 दिसम्बर, 1921 को श्री शरतचन्द्र को सम्बोधित अपने पत्र में लिखा था :

"We are proud of Subhash and proud of you all... I am not at all sorry as I believe in the doctrine of sacrifice, in fact I was expecting it almost daily. Your mother has taken the incident in a bold spirit and thinks that such sacrifices will ultimately lead to Swaraj. Please convey to dear Subhash our heart felt blessings." Quoted by Leonard A. Gordon, *op. cit.*, p, 89.

10. Quoted in Leonard A. Gordon, *Ibid*, pp. 89-90.

11. "I myself led people to prison. I started the movement in Bengal. I sent my son first to jail. My son was followed by my wife, and then I went to prison because I knew there was electricity there. I knew that the spirit of resistance that manifested itself was mighty and the proudest Government did bend to it. You bungled it and mismanaged it. Now you turn round and ask people to spin and do the work of the charkha alone. The proudest Government did bend to you. The terms came to me and I forwarded them to the headquarters, because at that time I was in jail. If I had not been in jail, I would have forced the country to accept them. After they had been accepted, you would have seen a different state of things." C. R. Das as quoted by Gordon, *Ibid.,* p.90.

12. महात्मा गांधी के मुकदमे की पोंटिअस पाइलेट के सामने आयोजित ईसामसीह के मुकदमे और यूनानी न्यायाधीशों के सामने आयोजित सत्यवीर सुकरात के मुकदमे से की गई है। गांधी जी ने अपने वक्तव्य के अंत में कहा था :

"The only course open to you, the judge and the assessors, is either to resign your posts and thus dissociate yourselves from evil if you feel that the law you are called upon to administrator is evil and that in reality. I am innocent, or to inflict on me the severest penalty if you believe that the system and the law you are assisting to administer are good for the people of this country and that my activity is therefore injurious to the public weal." Mahatma Gandhi, Quoted by Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.2. pp.83-84.

13. सुभाषचन्द्र बोस ने असहयोग आंदोलन की सफलताओं के बारे में लिखा है :

"The year 1921 undoubtedly gave the country a highly organised party organisation. Before that the Congress was a constitutional party and mainly a talking body. The Mahatma not only gave it a new constitution and a nation-wide basis – but what is more important, convented it into a revolutionary organisation. The tricolour national flag – red, green and white – was adopted all over the

country and assumed great importance. Uniform slogans were repeated everywhere and a uniform policy and ideology gained currency from one end of India to the other. The English language lost its importance and the Congress adopted Hindi (or Hindustani) as the *lingura Franca* for the whole country. Spontaneously, Khadi became the official uniform for all Congressmen. In short, all the features of a modern political party became visible in India. The credit for such achievements naturally belongs to the leader of the movement – Mahatma Gandhi." Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.2, pp. 77-78.

14. सुभाषचन्द्र बोस ने असहयोग आदोलन की कुछ त्रुटियो की ओर भी इशारा किया है। इस आदोलन की सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि एक व्यक्ति – महात्मा गांधी के हाथों में अत्यधिक शक्ति सौप दी गई थी। जब तक देशबंधु, लाला लाजपत राय, पडित मोतीलाल नेहरू जैसे व्यक्ति जीवित थे, वे महात्मा गांधी पर कुछ नियंत्रण लगा सकते थे। उनकी मृत्यु के बाद काग्रेस की सारी बुन्दि एक व्यक्ति को हस्तातरित हो गई। जो सदस्य इस व्यक्ति के विरोध मे आवाज उठाता वह बागी था। दूसरे, एक साल मे स्वराज का वायदा बचपना था। तीसरे, भारतीय राजनीति मे खिलाफत के प्रश्न को लाना अनुचित था। *Ibid.*, pp.78-79.

15. "...what has to be regretted is that he did not show sufficient diplomacy and precedence when the crucial hour arrived. In this connection I am reminded of what the Deshbandhu used frequently to say about the virtues and failings of Mahatma Gandhi's leadership. According to him, mahatma opens a compaign in a brilliant fashion; he works it up with unerring skill; he moves from success to success till he reaches the zenith of his campaign but after he loses his nerve and begins to falter." Subhash Chandra Bose as quoted by Leonard A. Gordon, *Brothers Against the Raj— A Biosraphy of Sarat and Subhash Chandra Bose*, p.92.

6

स्वराज दल की राजनीति

राजनीतिक शांति

असहयोग आंदोलन का अंत होने के प्राय: एक साल बाद तक भारत का राजनीतिक समुद्र शांत रहा। लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन की जलधारा निष्क्रियता के मरुथल में हमेशा के लिए सूख नहीं गई। इस काल में कांग्रेस अधिकतर रचनात्मक कार्यों में लगी रही। कांग्रेस के नेता यह भी सोचते रहे कि अब आगे क्या किया जाए। सुभाष जुलाई, 1922 में जेल से छूटे। उन्होंने दोनों मोर्चों पर कार्य किया।

युवक कांग्रेस

सितम्बर, 1923 में सुभाष अखिल भारतीय युवक कांग्रेस सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष बने। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० मेघनाथ साहा इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे।

बाढ राहत कार्य

इन्हीं दिनों बंगाल के कई जिलों में बाढ़ आ गई। बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी ने सुभाष को बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करने के लिए भेजा। सर पी० सी० रे ने बंगाल राहत समिति की स्थापना की। सुभाष ने 1, 000 कार्यकर्त्ताओं के साथ बाढ़ग्रस्त लोगों की सहायता का प्रबंध किया। वे छह सप्ताह तक बाढ़ राहत कार्यों में लगे रहे।[2] अपना काम पूरा करने के बाद वे कलकत्ता वापस आ गए।

परिवर्तनवादी बनाम अपरिवर्तनवादी

इस बीच देशबंधु पंजाब में स्वास्थ्य लाभ कर रहे. थे। उन्होंने कांग्रेस को एक नया कार्यक्रम दिया। उनका कहना था कि कांग्रेसियों को चुनावों में भाग लेकर

विधानमंडलों के भीतर प्रवेश करना चाहिए और वहां सरकार के प्रति असहयोग की नीति अपनानी चाहिए। उनके विचार से यह असहयोग आंदोलन का ही एक रूप था।[3] जो लोग देशबंधु की नीति के कायल थे वे परिवर्तनवादी कहलाए। जो उनकी इस नीति के विरोधी तथा गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को लागू रखने के पक्ष में थे, वे अपरिवर्तनवादी कहलाए। गांधी जी और अपरिवर्तनवादियों की राय थी कि यदि कांग्रेसियों ने एक बार विधानमंडलों में प्रवेश कर लिया, तो वे मंत्री-पद के लालची हो जाएंगे और उनका जुझारूपन समाप्त हो जाएगा।

कांग्रेस का गया अधिवेशन

कांग्रेस का गया अधिवेशन दिसम्बर, 1922 में हुआ। इसके अध्यक्ष देशबंधु थे। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कांग्रेसियों के कौसिल-प्रवेश के बारे में अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने अपना यह मंतव्य भी सामने रखा कि स्वराज भारत की 98 प्रतिशत जनता के लिए होना चाहिए।

स्वराज दल की स्थापना

कांग्रेस अधिवेशन के अंतिम दिन कौंसिल-प्रवेश के प्रस्ताव पर मतदान हुआ। अपरिवर्तनवादियों को 1,748 मत तथा परिवर्तनवादियों को 890 मत प्राप्त हुए। देशबंधु ने अपने अध्यक्ष पद से और मोतीलाल नेहरू ने महासचिव-पद से त्याग-पत्र दे दिए। अगले दिन अर्थात् 1 जनवरी, 1923 को उन्होंने स्वराज दल के निर्माण की घोषणा की। देशबंधु इस दल के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सुभाष की जिम्मेदारियां

देशबंधु आयु, अनुभव और योग्यता में गांधी जी से किसी प्रकार कम न थे। उनमें लोगों को पहचानने की और उनसे काम लेने की अद्भुत क्षमता थी। वे कई व्यक्तियों को राजनीति मे लाए। सुभाष बोस उनके शिष्य थे ही। उनके कुछ अन्य प्रमुख अनुयायी थे- जे० एम० सेन गुप्ता, नलिनी रंजन सरकार, बी० एन० ससमल, निर्मल चन्द्र चुंदर, तुलसी गोस्वामी, शतुर चन्द्र बोस, डॉ० बी० सी० राय, किरण शंकर रे, अनिल बरन राय, प्रताप चन्द्र गुहा राय, मौलाना अकरम खां और सत्यरंजन बख्शी। देशबंधु की इन सारे व्यक्तियों में सुभाष के ऊपर विशेष कृपा दृष्टि थी। उन्होंने 1922 के अत से अक्तूबर, 1924 तक सुभाष को अधिक उत्तरदायित्व के काम सौपे। सुभाष का *बांगलार कथा* तथा *फारवर्ड* पत्रों से घनिष्ठ संबंध था। इन दोनों पत्रों ने देशबंधु के कौसिल-प्रवेश के कार्यक्रम का प्रबल समर्थन किया।

भारत में साम्यवादी विचारधारा

1920-1930 के बीच भारतीय राजनीति मे साम्यवादी विचारधारा विकसित

हुई। 1917 की रूसी क्रांति ने समूचे एशिया के जनमानस को प्रभावित किया। 1919 में तीसरी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की स्थापना हुई और उसने औपनिवेशिक जगत के स्वतंत्रता-आंदोलनों को प्रभावित किया। बंगाल के एक क्रांतिकारी एम० एन० राय का अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन से निकट संबंध रहा था।[4] उनकी रचनाएं भारत में चाव से पढ़ी जाने लगीं। भारत के कुछ प्रमुख नेताओं– जवाहर लाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू और रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सोवियत रूस की यात्रा की और उसके बारे में अनुकूल लेख लिखे। सुभाषचन्द्र बोस तथा शरत चन्द्र बोस दोनों भाइयों ने बर्ट्रेंड रसेल की पुस्तक *रोड्स टु फ्रीडम* (1918) का अध्ययन किया था।

क्रांतिकारियों से संपर्क

सुभाष बोस ने जब से राजनीति में भाग लेना आरम्भ किया था, ब्रिटिश सरकार का खुफिया विभाग उन पर नज़र रखने लगा था। उनका क्रांतिकारियों से संपर्क था।

मजदूर संगठन

1920 की दहाई के प्रारम्भिक वर्षों में स्वराज दल तथा अन्य वामपंथी दलों का इस बात पर ज़ोर था कि जनता को संगठित किया जाए। देशबंधु, सुभाष तथा अन्य स्वराजी नेता शहरों के रहने वाले थे और वे शहरों की समस्याओं पर ही ध्यान दे सकते थे। इसलिए उन्होंने सबसे पहले शहरों के मज़दूरों को संगठित करने का प्रयत्न किया। देशबंधु 1922 में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।[5] उन्होंने 1924 में खड़गपुर में रेल मज़दूरों की हड़ताल को सुलझाने की कोशिश की। इसी तरह उन्होंने जमशेदपुर में मज़दूरों की शिकायतों को दूर करने का भी प्रयत्न किया। उन दिनों टाटा आयरन और स्टील कंपनी के सभी महत्वपूर्ण पदों पर अंग्रेज अफसर नियुक्त थे। देशबंधु ने मांग की थी कि ये सब पद भारतीयों को दिए जाएं।

इन दिनों सुभाष बोस ने भी मज़दूरों की समस्याओं में अपनी दिलचस्पी दिखाई। उन्होंने दक्षिण कलकत्ता में मज़दूरों का एक संघ बनाने की कोशिश की। कुछ साल बाद वे ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अध्यक्ष भी निर्वाचित हुए थे। उन्होंने जमशेदपुर के मज़दूरों के हितों की रक्षा के लिए भी काम किया था। सुभाष श्रमिक संघों को राष्ट्रीय आंदोलन में खींचने के इच्छुक थे।

बंगाल कांग्रेस का सचिव-पद

1922 के बीच में जेल से छूटने के बाद सुभाष ने बंगाल कांग्रेस के संगठन में अधिक जिम्मेदारी उठानी शुरू की। 1923 में वे बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सचिव बन गए।

उन्होंने बंगाल के विभिन्न भागों में राजनीतिक सभाओं तथा युवक सम्मेलनों में भाषण देना आरंभ किया। वे देश के अन्य भागों में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठकों में भी भाग लेने लगे। अब वे राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक नेता के रूप में उभरने लगे थे। जिन दिनों स्वराजवादियों और गांधीवादियों के बीच कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर विवाद चल रहा था, सुभाष स्वराजवादियों के साथ थे। जहां अखिल भारतीय स्तर पर गांधीवादियों का बहुमत था, बंगाल में स्वराजवादी बहुमत में थे। सुभाष बोस ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में स्वराज दल की नीतियों और कार्यक्रमों के बारे में अनेक लेख लिखे।

सुभाष के रचनात्मक कार्य

यद्यपि सुभाष कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर गांधी जी से सहमत नहीं थे, फिर भी उन्होंने मई, 1923 में दक्षिण कलकत्ता सेवक समिति नामक एक गांधीवादी संस्था के पुनर्गठन में योग दिया। यह संस्था खादी का उत्पादन करती थी, सामाजिक सेवा का काम करती थी और एक पुस्तकालय चलाती थी। सुभाष इस संस्था के सचिव और कोषाध्यक्ष बने। उन्होने दक्षिण कलकत्ता सेवाश्रम नामक एक अनाथालय के सचिव के रूप में भी कार्य किया। उन्होंने विभिन्न जिलों में युवक सम्मेलनों मे दिए गए अपने भाषणों में नौजवानों को प्रेरणा दी कि वे राष्ट्रीय आंदोलन में आगे आएं, रचनात्मक कार्य में भाग लें और गांवों के बारे में विधिवत् सूचना एकत्रित करें।

मुसलमानों का सहयोग

देशबंधु का विचार था कि बंगाल में स्वराज पार्टी की सफलता के लिए मुसलमानों का सहयोग आवश्यक था क्योंकि बंगाल मुस्लिम बहुल प्रांत था। 1923 में देशबंधु ने बंगाल के मुस्लिम नेताओं के साथ एक समझौता किया। उन्होंने वायदा किया कि बंगाल में जिन सत्ता-केन्द्रों पर स्वराजवादी सत्तारूढ़ होंगे, वहां नई नौकरियों में 60 प्रतिशत स्थान मुसलमानों को मिलेंगे। यह क्रम उस समय तक चलता रहेगा जब तक कि मुसलमान अपनी जनसंख्या के अनुपात में स्थान नहीं पा लेते। देशबंधु ने मुसलमानों को कलकत्ता नगर निगम में स्वराज दल के सत्तारूढ़ होने पर और भी ज्यादा नौकरियां देने का वचन दिया। जब यह समझौता बंगाल प्रांतीय कांग्रेस के सामने आया, तब गांधीवादियों ने इसका विरोध किया लेकिन देशबंधु के प्रभाव से वह पास हो गया। मुसलमानों ने इसे देशबंधु की पंथ-निरपेक्ष नीति का संकेत माना और जब तक वे जीवित रहे उन्हें अपना समर्थन दिया।[6] देशबंधु मुसलमानों के प्रति इस प्रकार की नीति अखिल भारतीय स्तर पर अपनाना चाहते थे, लेकिन इस दिशा में वे सफल नहीं हो सके।

क्रांतिकारियों के प्रति नीति

देशबंधु उन क्रांतिकारियों को भी कांग्रेस में लेने के पक्षधर थे जो अब अहिंसात्मक रीति से काम करने के लिए तैयार थे। देशबंधु के प्रभाव से बंगाल कांग्रेस कमेटी ने तो इस आशय का प्रस्ताव पास कर दिया लेकिन कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन में वह अस्वीकृत हो गया।

द्वैध शासन

भारतीय शासन अधिनियम, 1919 के अंतर्गत प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली की स्थापना की गई थी। इस व्यवस्था के अनुसार प्रांतीय प्रशासन को दो भागों में बांटा गया था। एक भाग में संरक्षित विषय सम्मिलित थे। इन विषयों को गवर्नर की कार्यकारिणी परिषद के सदस्यों के नियंत्रण में रखा गया था। ये सदस्य गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थे। प्रांतीय विधानमंडल का इन सदस्यों के ऊपर नियंत्रण नहीं था। दूसरे भाग में हस्तांतरित विषय सम्मिलित थे। इन विषयों को मंत्रियों की अधीनता में रखा गया था। ये मंत्री विधानमंडल के सदस्यों में से चुने जाते थे और अपने कार्यों और नीतियों के लिए सदन के प्रति उत्तरदायी थे। बंगाल की विधान परिषद में 140 सदस्य थे। इनमें से 114 तो निर्वाचित सदस्य थे और 26 मनोनीत। निर्वाचित सदस्यों में 39 सदस्य मुसलमानों में से थे। 57 स्थान हिन्दुओं के लिए थे। यूरोपीयों, आंग्ल-भारतीयों, व्यापारियों तथा कुछ और विशिष्ट वर्गों के लिए भी स्थान रखे गए थे।

1920 के निर्वाचन

1920 के निर्वाचनों में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया था। उदारवादियों, मुसलमानों तथा ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्त स्वतंत्र उम्मीदवारों ने चुनावों में भाग लिया था। मंत्रिमंडल में तीन भारतीय सदस्य थे। इनमें सबसे प्रमुख मंत्री सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी थे। वे स्वशासन मंत्री थे और उनके प्रयत्नों से कलकत्ता म्युनिसिपल विधेयक पास हुआ। इस कानून के फलस्वरूप कलकत्ता नगर निगम में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत हो गया।

1920-23 के बीच बंगाल विधान परिषद कुछ विशेष काम न कर सकी। उसके सदस्यों का न तो अपना कोई दलगत संगठन था और न कोई निश्चित कार्यक्रम।

स्वराजवादियों की सफलता

1923 के बंगाल विधान परिषद के निर्वाचनों में स्वराजवादियों को 47 स्थान मिले। अनेक स्थानों पर स्वतंत्र उम्मीदवार विजयी हुए जो स्वराज दल के प्रति सहानुभूति रखते थे। परिषद में देशबंधु स्वराजवादियों के नेता थे। गवर्नर ने उन्हें मंत्रिपद देना चाहा लेकिन उन्होंने अस्वीकार कर दिया। 1924 के पहले अधिवेशन

में स्वराजवादियों ने एक प्रस्ताव पेश किया कि मंत्रियों का वेतन एक रुपया प्रतिवर्ष कर दिया जाए। इस प्रस्ताव के पक्ष में 63 और विपक्ष में 62 मत पड़े। स्वराजवादियों ने 1924 से 1926 तक मंत्रियों को कारगर ढंग से काम नहीं करने दिया। उन्होंने बजट की भी कड़ी आलोचना की और कुछ अवसरो पर विभिन्न विभागों की आवश्यक मांगों को रद्द कर दिया।

केंद्रीय विधानसभा में पंडित मोती लाल नेहरू स्वराज दल के नेता थे। उन्होने 1924 और 1925 में कई अवसरों पर सरकार मत-विभाजन में पराजित किया।

कलकत्ता नगर-निगम

कलकत्ता नगर निगम अधिनियम 1924 में लागू हुआ। कौंसिलर और एल्डरमैन के लिए निर्वाचन हुए। कौसिलरों ने मेयर को निर्वाचित किया और मेयर ने मुख्य कार्य-अधिकारी को नियुक्त किया। देशबंधु मेयर बने। मुख्य कार्य-अधिकारी निगम के दिन-प्रति-दिन के प्रशासन के लिए उत्तरदायी था। सुभाष बोस ने 14 अप्रैल, 1924 को कलकता नगर निगम के मुख्य कार्य-अधिकारी का पद संभाल लिया। बोस अपने वेतन का केवल आधा भाग 3,000 रु० वार्षिक ही वेतन के रूप में लेते थे और उसका भी अधिकांश परोपकार के कामों में खर्च कर देते थे।

देशबंधु का गौरव-काल

देशबंधु ने कलकत्ता नगर निगम के मेयर के रूप मे गरीबों के हित के लिए अनेक योजनाएं चालू कीं- उनके लिए मकान बनवाए, नि:शुल्क प्राइमरी शिक्षा का प्रबंध किया, नि.शुल्क डाक्टरी सहायता की व्यवस्था की, सस्ते दूध, स्वच्छ पानी, और परिवहन जैसी सुविधाएं सुलभ कीं। इन कार्यक्रमों को अमली जामा पहनाना सुभाष की जिम्मेदारी थी। यह देशबन्धु चितरंजन दास के जीवन का सबसे गौरवमय समय था। वे बंगाल विधान परिषद में स्वराज दल के नेता थे, बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे, कलकत्ते के मेयर थे और अखिल भारतीय स्वराज पार्टी के एक प्रमुख नेता थे।[7]

सुभाष बोस नगर निगम के कार्य-अधिकारी

सुभाष बोस ने कलकत्ता नगर निगम के कर्मचारियों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया। उन्होंने निगम के दफ्तरों में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग को बढ़ावा दिया। इस काल में सुभाष बोस की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि उन्होंने निगम के कर्मचारियों के लिए मजदूर सहकारी स्टोरों की स्थापना की, भविष्य निधि का प्रबंध किया और कर्मचारी संघ की नींव रखी। सुभाष बोस के प्रयत्नों से निगम का एक साप्ताहिक पत्र भी निकलना आरंभ हुआ जिसका नाम था- *कलकत्ता म्युनिसिपल गज़ट*। उन्होंने निगम का एक वाणिज्यिक संग्रहालय भी बनाया।

पुनः गिरफ्तारी

सुभाष बोस कलकत्ता नगर निगम के मुख्य कार्य-अधिकारी के रूप में सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे। तभी सरकार ने 24 अक्तूबर, 1924 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनके विरुद्ध कोई ठोस आरोप नहीं था। उन्हें क्रांतिकारी होने के संदेह में गिरफ्तार किया गया था। उन्हें बिना मुकदमा चलाए अनिश्चित काल के लिए जेल में डाल दिया गया।[6]

मांडले जेल में

सुभाष बोस छह सप्ताह तक तो कलकत्ते की जेल में रहे। इसके बाद उन्हें कलकत्ते से 100 मील दूर बेरहामपुर जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। इसके दो महीने बाद बोस को बर्मा की मांडले जेल में भेज दिया गया।

सारांश

असहयोग आंदोलन का अंत होने के बाद भारतीय राजनीति में निष्क्रियता आ गई। इस काल में कांग्रेस अधिकतर रचनात्मक कार्यों में लगी रही।

सितम्बर, 1923 में सुभाष अखिल भारतीय युवक कांग्रेस सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष बने।

इन्हीं दिनों बंगाल के कई जिलों में बाढ़ आ गई। सुभाषचन्द्र ने बाढ़-पीड़ित लोगों की सहायता की। देशबन्धु चितरंजन दास का विचार था कांग्रेसियों को चुनावों में भाग लेकर विधानमंडलों के भीतर प्रवेश करना चाहिए और वहां सरकार के प्रति असहयोग की नीति अपनानी चाहिए।

कांग्रेस का गया अधिवेशन दिसम्बर, 1922 में हुआ। देशबंधु इसके अध्यक्ष थे।

कांगेस-अधिवेशन के अंतिम दिन कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर मतदान हुआ। मतदान में स्वराजवादी हार गए। इस पर देशबंधु और पंडित मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस से त्याग-पत्र दे दिया और स्वराज दल के गठन की घोषणा की। देशबंधु इस दल के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

सुभाष बोस देशबंधु के विशेष विश्वास पात्र थे। सुभाष बोस ने *बांगलार कथा* तथा *फारवर्ड* पत्रों में महत्वपूर्ण काम किया।

1920-1930 के वर्षों में भारतीय राजनीति में साम्यवादी विचारधारा का विकास हुआ। इस विचारधारा के प्रसार में बंगाल के एक क्रांतिकारी एम० एन० राय का प्रमुख योग था।

सुभाष बोस का क्रांतिकारियों से संपर्क था। ब्रिटिश सरकार का खुफ़िया विभाग उन पर नज़र रखता था।

देशबंधु और सुभाष ने राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक आधार देने के लिए मज़दूरों, किसानों और छात्रों का संगठन आरम्भ किया।

1923 में सुभाष बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सचिव बन गए। अब वे अपनी संगठन-क्षमता और वक्तृत्व-कला के बल पर अखिल भारतीय नेता के रूप में उभरने लगे।

कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न पर गांधी जी से सहमत न होते हुए भी सुभाष बोस ने कलकत्ते में गांधी जी के रचनात्मक कार्यों को मुस्तैदी से किया।

देशबंधु ने बंगाल में स्वराज पार्टी की सफलता के लिए मुसलमानों के साथ रियासतें बरतीं और उनका सक्रिय सहयोग प्राप्त किया।

देशबंधु ने उन क्रांतिकारियों को भी कांग्रेस में लेने की पैरवी की जो अब अहिंसात्मक रीति से काम करने के लिए तैयार थे।

स्वराजवादियों ने बंगाल विधान मंडल में अनेक सफलताएं प्राप्त कीं। कलकत्ता नगर निगम में भी उनका बहुमत हो गया। देशबंधु कलकत्ता नगर निगम के मेयर बने। उन्होंने सुभाष बोस को मुख्य कार्य-अधिकारी बनाया। यह देशबंधु के जीवन का गौरव काल था। सुभाष बोस ने नगर-निगम में कर्मचारियों तथा जनता के लाभ के लिए अनेक कार्यक्रम लागू किए। 24 अक्तूबर, 1924 को सुभाष बोस गिरफ्तार कर लिए गए और उन्हें बिना मुकदमा चलाए अनिश्चित काल के लिए जेल में डाल दिया गया।

संदर्भ और पाद टिप्पणियां

1. 26 जनवरी 1923 के *बांगलार कथा* ने स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा था : "Non-cooperation has lost its terror. Inertia has taken the place of courage in people's hearts. The clarion call of the Mahatma is heard no more, and the workers have become worn out with the struggle... . Swaraj will neither fall from heaven nor will it become from beyond the seas as a reward from pleasing Parliament. It will have to be forced from the British Government, the necessary requisites being self-reliance and self-confidence."

   Quoted by Leonard A. Gordon, Brothers *Against the Raj – A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose,* p.96.

2. सुभाष बाढ़-राहत के कार्यों मे इतने व्यस्त थे कि जब उनके पिता जानकीनाथ बोस दुर्गा पूजा के सिलसिले मे उनसे मिलने आए, तब सुभाष ने उनसे कहा, "पिताजी, आप घर पर दुर्गा की पूजा कीजिए। मै तो असहाय लोगों के बीच अपनी असली दुर्गा माता की पूजा कर रहा हूं।" Hemendranath Das Gupta, *Subhash Chandra,* Calcutta, 1946, p.53.

3. "Deshbandhu tried to devise means for rousing public enthusiasm once again by a chance of tactics. He ... thus conceived of his plan of non-cooperation within the legislatures. According to this plan, Congressmen, instead of boycotting the elections, would stand as candidates at the polls and after capturing the elected seats, would carry on a policy of uniform, continuous and consistent opposition to the Government." Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.2, p.87.

4. एम० एन० राय (1886-1954) अपने जीवन के प्रारंभिक काल मे बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन की ओर आकृष्ट हुए थे। विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष, सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी और वी० डी० सावरकर जैसे नेताओं से वे प्रभावित हुए थे। राय 1917 में मैक्सिको गए और वहां उन्होंने समाजवादी शक्तियो को संगठित करने में रुचि ली। 1919 में वे रूस पहुंचे और उनका अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी आदोलन से घनिष्ठ संबंध रहा। राय ने स्टालिन की विचारधारा का विरोध किया जिसके कारण उन्हें अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी संघ से निकाल दिया गया। जब वे भारत आए उन्हें 1931 में कानपुर षड़यंत्र केस के बारे में 6 वर्ष के लिए कारावास में डाल दिया गया। राय ने 1936 से भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग लेना आरम्भ किया लेकिन इसमें वे विशेष सफल नहीं हुए।

5. यह अधिवेशन लाहौर में हुआ था। अपने अध्यक्षीय भाषण में देशबंधु ने जनसाधारण के लिए स्वराज की अपनी कल्पना स्पष्ट की थी। वे स्वराज को केवल कुछ मध्यवर्गीय लोगों का स्वराज नहीं बल्कि जनता का स्वराज बनाना चाहते थे।

6. देशबन्धु को अपने कार्यक्रम में मुसलमानों का पूरा सहयोग मिला। एस० एस० सुहरावर्दी तक उनके समर्थक थे। बाद में सुहरावर्दी भारत-विभाजन के पैरोकार बने और कुछ समय तक पाकिस्तान के प्रधानमंत्री भी रहे।

7. देशबंधु ने कलकत्ता नगर निगम के संदर्भ में स्वराज दल के कार्यक्रम का इन शब्दों में वर्णन किया था :

   "...the great work whicn I have undertaken for the last 10 or 15 years is the building up of a Pan-Indian people consisting of diverse communities with diverse interests, but united and federated as a nation. In this corporation I find plenty of work possible in that direction. So far as it lies in me you will find that no communal interest will be sacrificed unless that interest goes against the well-being of the whole community by which I mean the Indian people or the citizens of Calcutta in this particular respect. It is the great ideal of the Indian people that they regard the poor as *Daridra Narain*." C. R. Das, Quoted by Leonard A. Gordon, *Brothers Against the Raj— A Biography of Sarat and Subhash Chandra*

Bose, p.110.

8 10 अक्तूबर, 1925 को गांधी जी ने *फारवर्ड* को अपना संदेश भेजते समय बिना मुकदमा चलाए सुभाष बोस की गिरफ्तारी का उल्लेख किया था। उन्होने लिखा था :

"I wish *Forward* many happy returns. The longer youngmen like Subhash are denied the right of a fair trial and yet kept under lock and key, the quicker is our pace towards our goal. Fight for freedom is no mock affair. It is so real and so terrible that it will require the best of thousands of us. Let us not grudge the price." M. K. Gandhi, *Collected Works of Mahatma Gandhi*, Vol. 28, p.311, Item no. 172, dated 10.10.1925.

7

बर्मा की जेलों में

गिरफ्तारी

सुभाष बोस ने 25 अक्तूबर, 1924 की अपनी गिरफ्तारी का *द इंडियन स्ट्रगल* पुस्तक में रोचक विवरण दिया है। वे घर पर सो रहे थे। तड़के ही उन्हें जगाया गया और उनसे कहा गया कि पुलिस के कुछ अधिकारी उनसे मिलना चाहते हैं। कलकत्ते की पुलिस के डिप्टी कमिश्नर ने उनसे कहा "श्री बोस, मुझे एक दुखद कर्त्तव्य का पालन करना है। मेरे पास 1818 के रेगूलेशन III के अधीन आपकी गिरफ्तारी का वारंट है।" इसके बाद पुलिस कमिश्नर ने उन्हें एक दूसरा वारंट दिखाया जिसमें उनके घर की तलाशी लेने की अनुमति थी। पुलिस ने घर की तलाशी ली। तलाशी में उसे हथियार या गोला बारूद जैसे कोई आपत्तिजनक पदार्थ नहीं मिले। उसने कुछ कागज़ पत्र अपने कब्जे में कर लिए। पुलिस कमिश्नर सुभाष को लोगों की निगाह से बचाते हुए अपनी गाड़ी में बिठाकर अलीपुर जेल ले गए। वहां कुछ और भी कार्यकर्त्ता थे, शाम होते-होते अठारह कार्यकर्त्ता अलीपुर जेल में थे।

बेरहामपुर जेल

सुभाष बोस उस समय कलकत्ता नगर निगम के मुख्य कार्य-अधिकारी थे। उनकी आकस्मिक गिरफ्तारी से निगम का कार्य अस्त-व्यस्त हो गया। सरकार ने विशेष आदेश दिया कि दिसम्बर के शुरू तक सुभाष निगम का काम जेल में रहते हुए कर सकते हैं। उनके सचिव दफ्तर की फाइलों और कागज-पत्रों के साथ समय-समय पर उनसे मुलाकात कर सकते है। इन मुलाकातों के अवसर पर एक पुलिस का अफ़सर और एक जेल का अफ़सर मौजूद रहा करेगा। सुभाष बोस का इन अफसरों से अकसर विवाद रहता था। पुलिस ने उन्हें दंड के तौर पर एक दूसरी जेल में भेज

दिया। यह बेरहामपुर जेल थी। यहां लोग सुभाष बोस से मिलने के लिए आसानी से नहीं पहुंच सकते थे।

वे बेरहामपुर जेल में दो महीने रहे। इस जेल में बंदियों की संख्या बढ़ती गई। 25 जनवरी, 1925 को उन्हें वापस कलकत्ता भेजने के आदेश मिले। रास्ते में उन्हें पता लगा कि उन्हें कलकत्ता नहीं, बल्कि बर्मा की मांडले- जेल में भेजा जा रहा था। मध्य रात्रि को सुभाष कलकत्ते पहुंचे और उन्हें लाल बाजार पुलिस स्टेशन ले जाया गया। यह पुलिस स्टेशन साक्षात् नरक था।[1] सुबह पुलिस के असिस्टेंट इंस्पेक्टर जनरल मि० लोमान आए। वे सुभाष तथा उनके साथियों को मांडले जेल ले जाने वाले थे।

मांडले जेल में

पौ फूटने से पहले ही पुलिस की एक वैन में तो बंदियों का सामान रख दिया गया और दूसरे में खुद उन्हें ठूंस दिया गया। दोनों गाड़ियां अंधेरे में तेजी से नदी तट की ओर चलीं। वहां एक जहाज खड़ा हुआ था। लेकिन सुभाष तथा उनके साथियो को एक छोटी-सी मोटर बोट में बिठा कर तीन घंटों तक नदी में इधर-उधर घुमाया गया। जब जहाज के चलने का समय हुआ, कैदियों को जहाज में सवार करा दिया गया और जहाज नदी के रास्ते समुद्र की ओर चल पड़ा। उनके केबिन के सामने सख्त पहरा था। जहाज के समुद्र में पहुंचने पर पहरा हटा दिया गया और उसकी एवज़ में सादे कपड़ों में पुलिसकर्मी तैनात कर दिए गए। सुभाष तथा उनके साथियों को बर्मा पहुंचने में चार दिन लगे। ये चारों दिन हंसी-खुशी में कट गए। रंगून से मांडले तक की यात्रा ट्रेन में की गई। इसमें 24 घंटे लगे।

सुभाष बोस ने मांडले का नाम सुन रखा था। वह बर्मा के अंतिम स्वतंत्र नरेश की राजधानी थी। यहां लोकमान्य तिलक छह वर्ष तक और उनके बाद लाला लाजपतराय एक वर्ष तक रहे थे। जेल की हालत बहुत खराब थी।[2] मांडले की जेल में सुभाष बोस ने अपराधियों के मनोविज्ञान तथा बर्मा के प्राचीन इतिहास का अध्ययन किया। अपराधियों के बारे में उनका निष्कर्ष था कि वे मानसिक रोगी होते हैं और उनके सुधार का प्रयत्न किया जाना चाहिए। जहां तक बर्मा के इतिहास का संबंध है, प्राचीन काल में बर्मा और भारत के घनिष्ठ संबंध रहे थे। भारत के अनेक क्षत्रिय कबीले बर्मा जाकर बस गए थे। बर्मा में पाली भाषा और बौद्ध धर्म भारत से ही गए थे। बर्मा के मंदिरों पर हिन्दू मंदिरों के वास्तु का स्पष्ट प्रभाव है।[3]

देशबंधु की मृत्यु

16 मई, 1925 को दार्जिलिंग में सुभाष बोस के राजनीतिक गुरु देशबंधु चित्तरंजनदास की मृत्यु हो गई। सुभाष को इसका गहरा धक्का लगा। देशबंधु की मृत्यु भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए एक अपूरणीय क्षति थी।

भूख–हड़ताल

अक्तूबर, 1925 में दुर्गा-पूजा के अवसर पर सुभाष बोस तथा उनके जेल-साथियों ने जेल सुपरिंटेंडेट से प्रार्थना की कि उन्हें जेल में ही दुर्गा पूजा आयोजित करने की अनुमति दी जाए तथा इसके लिए कुछ रकम भी दी जाए। भारतीय जेलों में ईसाई कैदियों को इस तरह की सुविधाएं दी जाती थीं। जेल सुपरिंटेंडेंट ने सुभाष बोस तथा उनके साथियों को इस तरह की सुविधाएं अपनी जिम्मेदारी पर दे दी। लेकिन सरकार ने इन सुविधाओं की अनुमति नहीं दी और सुपरिंटेंडेट फिन्डले को फटकारा।

सुभाष ने सरकार को सूचना दी कि वह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करे। यदि वह ऐसा नहीं करती, तो कैदी भूख-हड़ताल करेंगे। सरकार ने सुभाष तथा उनके साथियों की बात नहीं मानी। फलतः फरवरी, 1926 में सुभाष तथा उनके सहयोगी कैदियों ने भूख हड़ताल आरंभ कर दी। हड़ताल शुरू होने के तीन दिन बाद ही *फ़ारवर्ड* पत्र ने उसका समाचार प्रकाशित कर दिया। इसी समय *फ़ारवर्ड* ने 1919-21 की इंडियन जेल कमेटी की रिपोर्ट के कुछ अंश प्रकाशित किए। कमेटी के सामने जेल विभाग के एक उच्च अधिकारी लैफ्टिनेंट कर्नल मुलवानी ने गवाही दी थी कि बंगाल की जेलों के महानिरीक्षक के दबाव के कारण उन्होंने कैदियों के स्वास्थ्य के बारे में गलत रिपोर्टें भेजी थीं। इन समाचारों से लोगों में नाराज़गी फैली । केंद्रीय विधानमंडल में सुभाष बोस और उनके जेल-साथियों की भूख-हड़ताल पर स्थगन-प्रस्ताव पेश किया गया। सरकार ने तत्काल ही भूख-हड़तालियों की मांग मान ली और वचन दिया कि भविष्य में कैदियों को उनके धार्मिक उत्सवों पर सारी सुविधाएं दी जाएंगीं। 15 दिन के बाद भूख-हड़ताल समाप्त हो गई।

बंगाल विधान परिषद के सदस्य निर्वाचित

1926 के उत्तरार्ध में प्रांतीय विधानमंडल भंग कर दिए गए। नए निर्वाचन नवंबर में होने थे। सुभाष बोस के जेल-साथी एस० सी० मित्र को बंगाल कांग्रेस पार्टी ने केंद्रीय विधानमंडल के लिए खड़ा किया। सुभाष बोस को कलकत्ता विधान परिषद के लिए कलकत्ता निर्वाचन क्षेत्र से खड़ा किया गया। मित्रा निर्विरोध निर्वाचित हो गए। सुभाष बोस को कड़ा मुकाबला करना पड़ा। उनके विरोधी उम्मीदवार बंगाल में उदारवादी दल के नेता जे० एन० बसु थे। सुभाष भारी बहुमत से विजयी हुए।

बीमारी और रिहाई

1926 के जाड़ों में सुभाष बोस का स्वास्थ्य जवाब देने लगा। उन्हें निमोनिया हो गया। साथ ही उनका वज़न घटने लगा। उन्हें रंगून भेजा गया। जहां एक मेडिकल

बोर्ड ने उनकी जांच की। बोर्ड की सिफारिश थी कि स्वास्थ्य को देखते हुए उन्हें जेल में नहीं रखा जा सकता था। वे रंगून जेल में सरकार के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे कि उनकी जेल सुपरिंटेंडेंट मेजर फ्लोवरड्यू से झड़प हो गई। इस पर उन्हें इन्सीन जेल भेज दिया गया। यहां के सुपरिंटेंडेट मेजर फिन्डले थे जो कुछ समय तक मांडले जेल के भी सुपरिंटेंडेंट रहे थे। मेजर फिन्डले ने सुभाष के स्वास्थ्य के बारे में सरकार को एक कड़ा नोट लिखा। उनके नोट पर सरकार के लिए कुछ कार्यवाही करना आवश्यक हो गया। सरकार उन्हें जेल से छोड़ना नहीं चाहती थी। पर उसने बंगाल विधान परिषद में प्रस्ताव किया कि यदि सुभाष अपने खर्च पर इलाज के लिए स्विट्ज़रलैंड जाना चाहें, तो सरकार उन्हें जेल से मुक्त कर देगी और रंगून से यूरोप जाने वाले जहाज पर बिठा देगी। सुभाष ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। वे सरकार की शर्तो को मानने के लिए तैयार नहीं थे। इस पर सरकार ने उन्हें उत्तरप्रदेश की अल्मोड़ा जेल में भेजने का निश्चय किया। कलकत्ता पहुंचने पर उनकी दुबारा डाक्टरी जांच हुई और बंगाल के नए गवर्नर सर स्टेनले जैक्सन ने उन्हें 16 मई, 1927 को जेल से रिहा कर दिया।

सारांश

सुभाष बोस 25 अक्तूबर को गिरफ्तार किए गए। उन्हें कुछ समय तक कलकत्ते की अलीपुर जेल में रखा गया। इस समय वे कलकत्ता नगर-निगम के मुख्य कार्य-अधिकारी थे। सरकार ने विशेष आदेश दिया कि दिसम्बर के शुरू तक सुभाष निगम का काम जेल में रहते हुए कर सकते हैं।

सुभाष का अलीपुर जेल के अफ़सरों से अकसर विवाद रहता था। पुलिस ने उन्हें दंड के तौर पर कलकत्ते से 100 मील की दूरी पर बेरहामपुर जेल में भेज दिया। वे दो महीने बेरहामपुर जेल में रहे।

जनवरी, 1926 में सुभाष बोस और उनके कुछ बंदी साथियों को बर्मा की मांडले जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। लोकमान्य तिलक, लाल लाजपत राय और सरदार अजीतसिंह जैसे देशभक्त मांडले की जेल में रह चुके थे। मांडले जेल की हालत बहुत खराब थी।

मांडले जेल में सुभाष बोस ने अपराधियों के मनोविज्ञान तथा बर्मा के इतिहास का विशेष रूप से अध्ययन किया।

16 मई, 1925 को सुभाष बोस के राजनीतिक गुरु देशबंधु चितरंजन दास का देहांत हो गया। सुभाष को इसका गहरा धक्का लगा।

अक्तूबर, 1925 में सुभाष बोस तथा उनके जेल-साथियों ने जेल में दुर्गा पूजा

का उत्सव मनाना चाहा और इसके लिए सरकार से कुछ सुविधाएं चाहीं। सुविधाएं न मिलने पर उन्होंने 15 दिन की भूख हड़ताल की। सरकार को सुभाष तथा उनके साथियों की मांगें स्वीकार करनी पड़ीं।

जब सुभाष जेल में थे, उन्हें बंगाल विधान परिषद के निर्वाचन में कलकत्ता निर्वाचन-क्षेत्र से खड़ा किया गया। वे भारी बहुमत से विजयी हुए।

1926 के जाड़ों में सुभाष का स्वास्थ्य गिर गया। कुछ समय के लिए उन्हें बर्मा के एक दूसरे नगर इन्सीन की जेल में भेज दिया गया। बाद में डाक्टरी जांच के आधार पर वे 16 मई, 1927 को जेल से रिहा कर दिए गए।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. "At midnight I reached Calcutta and was taken in to the Lalbazar Police Station to spend the night there. The room in the police station was a dirty hole and thanks to mosquitoes and bugs, it was imposssible to have.a wink of sleep. The sanitary arrangements were horribly bad and there was no privacy at all. I then realized the truth of what others had said before, namely, that if there is hell on earth, it is the Lalbazar police-station." Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works,* Vol.2., p. 142.
2. "The interior of a Burmese prison is somewhat different from that of an Indian prison and the first few minutes were spent in examinig our new surroundings. The first thing we realised was that the jail-buildings were built not of store nor of brick, but of wooden pelisading. The building looked exactly like cages in a zoo or in a circus. From the outside and especially at night, the inmates of these buildings appeared almost like animals prowling about behind the bars. Within these structures we were at the mercy of the elements. These was nothing to protect us from the bitting cold of winter or the intense heat of summer or the tropical rains in Mandalay. *Ibid.*, p.144.
3. "There is no doubt that many Kshatriya tribes migrated to Burma from India. They, as well as the people from Ceylon and South India, brought to Burma, Buddhism and the Pali literature. The culture and philosophy of Burma have been largely influenced by India. The alphabets have been taken from Sanskrit and even the script is much like some of the Indian scripts. The pagodas (temples) of Burma which have a unique charm of their own, are not devoid of Indian influence." *Ibid.*, p.151.

8

राष्ट्रीय रंगमंच पर

1927–1932 का काल

सुभाष बोस मई, 1927 में मांडले की जेल से मुक्त हुए। प्राय: 5 वर्ष बाद 1932 के शुरू में वे फिर गिरफ्तार हुए। यह पांच वर्ष का काल उनके और राष्ट्र के जीवन का महत्वपूर्ण काल है। इन सालों में कांग्रेस के कार्यक्षेत्र का विस्तार हुआ। क्रांतिकारी और साम्यवादी कभी कांग्रेस के भीतर और कभी उसके बाहर काम करते रहे। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की दरार बढ़ी। अनेक मुसलमानों ने स्वराज पार्टी और कांग्रेस पार्टी का साथ छोड़ दिया। प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में भारत का बाहर की दुनिया से जो संपर्क स्थापित हुआ था वह बढ़ा। अंतर्राष्ट्रीय साम्यवादी संघ[1] के प्रतिनिधि भारत आए और उन्होंने भारत के साम्यवादी दल के निर्माण तथा श्रमिकों के संगठन का काम शुरू किया। मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्तियों ने पश्चिमी देशों की यात्राएं कीं और वहां राष्ट्र-निर्माण के कार्यों का निरीक्षण किया। जनवरी, 1927 में शरत बोस ने पहली बार बंगाल विधान परिषद में प्रवेश किया। वे स्वराज दल के सदस्य थे। इस समय बंगाल कौंसिल में स्वराज दल के 39 सदस्य थे। दल का कौंसिल में बहुमत तो न था फिर भी, वह सबसे बड़ा राजनीतिक दल था।

बंगाल विधानमंडल में

सुभाष बोस ने 23 अगस्त, 1927 को बंगाल विधानमंडल में निर्वाचित सदस्य की हैसियत से प्रवेश किया। यद्यपि उनका विधानमंडल की कार्यवाही में ज्यादा मन नही लगता था, फिर भी वे आगे के ढाई वर्ष उसकी कार्यवाही में भाग लेते रहे। सुभाष 1929 में दुबारा विधानमंडल के लिए निर्वाचित हुए। वे प्रश्न काल में विशेष रुचि लेते थे।[2]

बंगाल कांग्रेस के अध्यक्ष

नवंबर, 1927 में सुभाष बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्हें क्रांतिकारियों तथा वामपंथी तत्त्वों का समर्थन प्राप्त था। आगे के बीस वर्षो तक बंगाल की कांग्रेस में बोस-बंधुओं (सुभाष और शरत) की महत्ता बनी रही। बंगाल कांग्रेस में जे० एम० सेन गुप्ता, डॉ० बी० सी० राय, नलिनी सरकार, पी० सी० घोष और सतीश दास गुप्ता गांधी पक्ष के थे। *अमृत बाज़ार पत्रिका* गांधीवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करती थी। *फारवर्ड* बोस-बंधुओं के विचारों का समर्थक था।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

सुभाष बोस हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिन्दुओं को सलाह दी कि वे मुसलमानों के अधिकारों का आदर करें और इस समय सबसे अधिक महत्त्व देश की आज़ादी के सवाल को दें।

मद्रास कांग्रेस

कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर, 1927 के अंत में मद्रास में हुआ। सुभाष इस अधिवेशन में भाग न ले सके। लेकिन उन्होंने अपना संदेश वहां भेज दिया। जवाहर लाल नेहरू ने इस सम्मेलन में भाग लिया था। वे डेढ़ वर्ष यूरोप में रह कर भारत लौटे थे। इस प्रवास में वे रूस भी गए थे। उनके और मद्रास के नेता श्रीनिवास आयंगर के प्रयत्नों से मद्रास कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हो गया।

इस काल में देश में वामपंथी विचारधारा का प्रसार हो रहा था। बोस-बंधु भी इस विचारधारा से प्रभावित थे।

कलकत्ता के मेयर-पद पर पराजय

1928 मे कलकत्ता नगर निगम के मेयर-पद के लिए निर्वाचन हुए। इस निर्वाचन में सुभाष हार गए। उन्हें 37 मत मिले और उनके प्रतिद्वंद्वी बी० के० बसु को 46 । बसु को यूरोपीयों, स्वतंत्रों, उदारवादियों, कुछ मुसलमानों तथा असंतुष्ट कांग्रेसियों ने मत दिए।

महाराष्ट्र की यात्रा

अप्रैल और मई, 1928 में सुभाष ने नागपुर, बम्बई और पूना की यात्राएं कीं। पूना में वे महाराष्ट्र प्रांतीय सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित किए गए। इस अवसर पर उन्होंने एक लम्बा भाषण दिया जिसमें विभिन्न विषयों पर स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट किए। उन्होंने कहा कि हमारी सारी बुराइयों का एक ही इलाज है- स्वराज। उनका तर्क था कि हमें आर्थिक और सांस्कृतिक विषयों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए

लेकिन देश में वास्तविक परिवर्तन तभी आ सकता है जब कि वह अंग्रेजों के शिकंजे से छूटे। सुभाष बोस ने राष्ट्रवाद की व्यापक व्याख्या प्रस्तुत की और उसे सत्यम, शिवम्, सुदरम् से प्रेरित बताया।[3] इस समय बोस के लिए भारतीय राष्ट्रवाद का अर्थ था – इंडियन नेशनल कांग्रेस। अपने पूना भाषण में बोस ने स्पष्ट किया कि कांग्रेस का संदेश किन-किन लोगों के बीच नहीं पहुंच सका है। सुभाष बोस के विचार से श्रमिकों, किसानों, तरुणों तथा महिलाओं के बीच में कांग्रेस की विचारधारा का प्रचार करना आवश्यक था।[4]

हड़तालों में भाग

1928 में सुभाप बोस ने बंगाल की तीन महत्त्वपूर्ण हड़तालों में भाग लिया। रेलवे कर्मचारियों की हड़ताल, पटसन कर्मचारियों की हड़ताल और जमशेदपुर में स्टील कर्मचारियों की हड़ताल। इन हड़तालों में बोस को विशेष सफलता नहीं मिली। उन्होंने प्राय. मालिकों और मजदूरों के बीच मध्यस्थता करने की कोशिश की लेकिन वे दोनों पक्षों को संतुष्ट न कर सके।

सांप्रदायिक उपद्रव

असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन के समाप्त हो जाने के बाद भारत मे हिंदुओं और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक उपद्रव हुए। कलकत्ते के सांप्रदायिक उपद्रव सबसे भयंकर थे। वे पंद्रह दिन तक चलते रहे। इनमें 67 आदमी मारे गए और 400 से अधिक जख्मी हुए। इन उपद्रवों के कारण बहुत तुच्छ होते थे। वे कभी तो गोवध के सवाल पर होते थे और कभी मस्जिद के सामने बाजा बजाने के प्रश्न पर। मुसलमानों के बीच मुस्लिम लीग का प्रभाव बढ़ा और इसकी प्रतिक्रिया के रूप में हिंदू महासभा भी सक्रिय हुई। सितम्बर, 1924 में महात्मा गांधी ने सांप्रदायिक विद्वेष को शांत करने के लिए 21 दिन का उपवास किया।

महात्मा गांधी पुनः मैदान में

1927 में महात्मा गांधी कांग्रेस के निर्विवाद नेता के रूप में भारत के राजनीतिक रंगमंच पर फिर से अवतीर्ण हुए। 1924 में कारागार से छूटने के बाद उन्होने सक्रिय राजनीति से विदा ले ली थी और अपना अधिकांश समय रचनात्मक कार्यों में लगाया था विशेषकर खादी के प्रचार में। 1925 के अंत में उन्होंने एक वर्ष के लिए राजनीतिक मौन धारण किया। इस बीच स्वराजवादी कांग्रेस के नेता थे। 1926 में स्वराजवादियो का कार्यक्रम ढीला पड़ने लगा।

साइमन कमीशन

भारतीय शासन अधिनियम, 1919 में एक प्रावधान यह था कि इस अधिनियम

के लागू होने के दस साल बाद इसके क्रियान्वयन की जांच की जाएगी। जांच का यह काम एक वैधानिक आयोग करेगा। चूंकि अधिनियम 1919 में लागू किया गया था, अतः प्रस्तावित जांच आयोग 1929 में गठित होना चाहिए था। लेकिन इंगलैंड की राजनीतिक परिस्थिति ने अनुदार दल के भारत मंत्री लार्ड बर्केनहेड को इस विषय में जल्दी करने के लिए प्रेरित किया। 1929 में इंगलैंड में आम निर्वाचन होने वाले थे। संभावना यह थी कि इन निर्वाचनों में मजदूर दल की विजय होगी। अनुदार दल यह नहीं चाहता था कि वह भारत का राजनीतिक भविष्य अपने विरोधी के हाथों में छोड़े। यही कारण है कि जांच कमीशन को समय से दो साल पहले नियुक्त किया गया। चूंकि कमीशन के अध्यक्ष सर जान साइमन थे अतः कमीशन का नाम साइमन कमीशन पड़ा। साइमन कमीशन में सात सदस्य थे और ये सभी अंग्रेज थे। चूंकि कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था इसलिए भारत के सभी राजनीतिक दलों ने उसका विरोध किया। कमीशन का लक्ष्य भारतीय शासन अधिनियम, 1919 की कार्य-प्रणाली का अध्ययन करना और यह रिपोर्ट पेश करना था कि भारत में उत्तरदायी शासन किस सीमा तक और बढ़ाया जाए।

साइमन कमीशन का विरोध

साइमन कमीशन 3 फरवरी, 1928 को बम्बई पहुंचा। कमीशन जहां-जहां गया, उसका काले झंडों द्वारा स्वागत हुआ। लाहौर में लाला लाजपतराय ने साइमन कमीशन के विरोध में एक विशाल जलूस का नेतृत्व किया। वे दिल के मरीज़ थे। जलूस पर लाठी-चार्ज हुआ। लाला जी को भी चोट लगी। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई।[5] लखनऊ में पंडित जवाहरलाल नेहरू और गोविन्द वल्लभ पंत के ऊपर लाठियां पड़ीं।

जिन दिनों साइमन कमीशन भारत आया था, सुभाष बोस बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। बंगाल में साइमन कमीशन विरोधी हड़ताल का आयोजन उन्होंने किया।[6]

साइमन कमीशन की रिपोर्ट

साइमन कमीशन की रिपोर्ट मई, 1930 में प्रकाशित हुई। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में भारतीयों की जातिगत और संप्रदायगत समस्याओं का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया। कमीशन ने सिफारिश की कि प्रांतों में द्वैध शासन-प्रणाली के स्थान पर पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना की जाए और प्रांतीय शासन के सभी विभाग विधानमंडलों के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों के हाथों में सौंपे जाएं। कमीशन ने प्रांतों के गवर्नरों को कुछ विशेष शक्तियां देने की सिफारिश की थी। केंद्र में एक संघ-शासन की स्थापना का सुझाव था। लेकिन वहां उत्तरदायी शासन की स्थापना का प्रस्ताव नहीं था।

नेहरू रिपोर्ट

जिस समय भारत मंत्री लार्ड बर्केनहेड ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की थी, उन्होंने भारतीय नेताओं को चुनौती दी थी कि वे भारत के लिए एक सर्वसम्मत संविधान प्रस्तुत करें। कांग्रेस ने इस चुनौती को स्वीकार किया और पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता मे भावी भारत का संविधान बनाने के लिए एक समिति नियुक्त की। सुभाष बोस भी इस समिति के सदस्य थे। जवाहर लाल नेहरू इस समिति के सचिव थे।[7]

समिति ने तीन महीनों के भीतर अपनी रिपोर्ट तैयार कर ली। उसने भारत के लिए तत्काल डोमीनियन स्टेटस[8] की मांग की। उसने यह भी कहा कि कार्यकारिणी को केंद्र और प्रांतों – दोनों स्थानों पर विधानमंडलों के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी होना चाहिए। समिति ने केंद्र और प्रांतों के बीच सांविधानिक शक्तियो के वितरण की एक योजना उपस्थित की लेकिन अवशिष्ट शक्तियों[9] को केंद्र के लिए सुरक्षित रखा। नेहरू रिपोर्ट में सांप्रदायिकता की समस्या को भी हल करने की कोशिश की गई थी। उसने रक्षा कवचों, गारंटियों और सांस्कृतिक स्वायत्तता द्वारा अल्पसंख्यकों को सुरक्षा का आश्वासन दिया। रिपोर्ट ने पृथक् निर्वाचनों का खंडन किया लेकिन अल्पसंख्यक वर्गो के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें सुरक्षित कर देने का प्रस्ताव रखा। नेहरू रिपोर्ट में एक सुझाव यह भी था कि उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत को दूसरे प्रांतों के वैधानिक धरातल पर ले आया जाए और सिंध को बम्बई से पृथक् कर दिया जाए। नेहरू रिपोर्ट ने देशी राज्यों की समस्या पर भी विचार किया। उसने इन राज्यों में लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली की स्थापना पर जोर दिया और कहा कि नई केंद्रीय सरकार स्थापित होने पर सार्वभौम सत्ता के सारे अधिकार उसके हाथों में आ जाएंगे।

जिन्ना की चौदह शर्ते

राष्ट्रवादी मुसलमानों ने तो नेहरू रिपोर्ट का समर्थन किया लेकिन पृथक्तावादी मुसलमानों ने उसका विरोध किया। जिन्ना ने पृथक्तावादी मुसलमानों की ओर से 14 शर्तें उपस्थित कीं :

1. भावी संविधान का रूप संघात्मक हो जिसमें अवशिष्ट शक्तियां प्रांतों को दी जायें।
2. सभी प्रांतों को एक से अधिकार प्राप्त हों।
3. सभी प्रांतों की विधानसभाओं और प्रतिनिधिक संस्थाओं में अल्पसंख्यक संप्रदायों को उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। जहां उनका बहुमत हो, वहां उसे घटा कर समान या अल्पमत न कर दिया जाए।
4. केन्द्रीय विधानमंडल में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एक-तिहाई से कम न

किया जाए।

5. सांप्रदायिक वर्गों का प्रतिनिधित्व पृथक् निर्वाचन की पद्धति से हो किंतु संप्रदायों को इस बात की छूट रहे कि वे जब चाहें तब संयुक्त निर्वाचन की पद्धति स्वीकार कर लें।
6. यदि कभी प्रांतों का पुनर्गठन हो, तो इसका पंजाब, बंगाल और उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत में मुसलमानों के बहुमत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।
7. सभी संप्रदायों को अपने धार्मिक विश्वास, उपासना, उत्सव, प्रचार, सम्मेलन और शिक्षा की पूर्ण स्वाधीनता रहनी चाहिए।
8. कोई भी विधान सभा या प्रतिनिधिक संस्था ऐसा कोई प्रस्ताव पास न करे जिसका किसी संप्रदाय के तीन-चौथाई सदस्य विरोध करते हों।
9. सिंध बम्बई प्रेसीडेन्सी से अलग कर दिया जाए।
10. सीमा प्रांत और बलूचिस्तान में भी वैसे ही सुधार किए जाएं जैसे कि अन्य प्रांतों में।
11. सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को योग्यता के आधार पर उचित भाग मिले।
12. मुस्लिम संस्कृति, शिक्षा, भाषा, धर्म, व्यक्तिगत कानून और धार्मिक संस्थाओं की रक्षा और उन्नति के लिए पर्याप्त सरकारी सहायता मिले।
13. केन्द्रीय और प्रांतीय विधानमंडलों में कम से कम तिहाई मंत्री मुसलमान हों।
14. केंद्रीय विधानमंडल संविधान में तभी परिवर्तन कर सकेगा जब कि संघ की सभी इकाइयां उसे स्वीकार करने को तैयार हों।

कांग्रेस ने जिन्ना की इन चौदह शर्तों को स्वीकार नहीं किया। इसके बाद हिंदुओं और मुसलमानों के बीच दरार बढ़ती गई।

कांग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन

दिसम्बर, 1928 में कलकत्ते में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। अधिवेशन के अध्यक्ष पंडित मोतीलाल नेहरू थे। अधिवेशन का संगठन अधिकतर सुभाष ने किया। इस अवसर के लिए उन्होंने 2,000 स्वयंसेवकों की एक टुकड़ी तैयार की। वे स्वयं इस टुकड़ी के प्रधान सेनापति बने। स्वयंसेवकों को कवायद का विधिवत प्रशिक्षण दिया गया। सुभाष बोस ने सैनिक वर्दी में भूरे घोड़े पर सवार होकर अपने निहत्थे सैनिकों का नेतृत्व किया।

कलकत्ता अधिवेशन में डोमीनियन स्टेटस के प्रश्न पर सुभाष बोस का गांधी जी

से मतभेद हो गया। बोस पूर्ण स्वाधीनता के पक्ष में थे। उनका कहना था कि भारत और इंगलैंड के बीच कोई समानता नहीं है तथा भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होकर एशिया का नेता बनना चाहिए। सम्मेलन में सुभाष का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

राष्ट्रभाषा सम्मेलन

इसी समय कलकत्ते में राष्ट्रभाषा सम्मेलन हुआ। सुभाष बोस सम्मेलन की स्वागत समिति के प्रधाम थे। उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदुस्तानी का समर्थन किया और लोगों को सलाह दी कि वे देवनागरी लिपि तथा उर्दू लिपि दोनों को सीखें।

युवक कांग्रेस

सुभाष बोस अखिल भारतीय युवक कांग्रेस की स्वागत समिति के भी प्रधान थे। उन्होंने युवक कांग्रेस के सम्मुख भी भाषण दिया और युवकों से कहा कि वे देश के स्वतंत्रता संग्राम में आगे आएं। उन्होंने महात्मा गांधी के साबरमती आश्रम और श्री अरविंद के पांडिचेरी आश्रम की निष्क्रियता की निंदा की और युवकों को सक्रिय जीवन अपनाने का परामर्श दिया। सुभाष बोस की नौजवानों की समस्याओं में आजीवन दिलचस्पी बनी रही। नौजवानों की कार्यक्षमता में उनका पूरा विश्वास था और वे यह कहते हुए कभी नहीं थकते थे कि नौजवान ही देश का भविष्य बना सकते हैं।

स्त्रियों के अधिकार

सुभाष बोस स्त्रियों के अधिकारों के भी समर्थक थे। वे चाहते थे कि स्त्रियां पुरुषों के समान ही जीवन के हर क्षेत्र में आगे आएं। सुभाष बोस की प्रेरणा से महिला राष्ट्रीय संघ की स्थापना हुई। कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर स्त्रियों की एक पृथक् डिवीज़न तैयार की गई जिसकी प्रधान कर्नल लतिका घोष थीं।

क्रांतिकारियों से संबंध

सुभाष बोस का बंगाल के क्रांतिकारियों से भी सबंध था। इस समय वे बंगाल वालन्टीयर्स नामक एक संस्था के काफी निकट थे। सुभाष इस संस्था का अखिल भारतीय आधार पर संगठन करना चाहते थे लेकिन गांधीजी के विरोध के कारण वे ऐसा न कर सके। ज्योतिष जोरदर, हेमचन्द्र घोष और सत्यरंजन बख्शी इस संस्था के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। इन्हीं दिनों पंजाब के सरदार भगतसिंह भी क्रांतिकारियों का साथ देने के लिए कलकत्ता आ गए।

कांग्रेस कार्यसमिति की सदस्यता

कांग्रेस में जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बोस को वामपक्ष का प्रवक्ता माना

जाने लगा। वे दोनों कई वर्षो तक कांग्रेस के सचिव रहे। सुभाष को कांग्रेस कार्य समिति का सदस्य भी मनोनीत किया गया।

गांधी जी का वायदा

कलकत्ता कांग्रेस में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया था। लेकिन गांधी जी ने यह वायदा किया था कि यदि ब्रिटेन ने भारत को एक साल के भीतर डोमीनियन स्टेटस नहीं दिया तो वे कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर देंगे और इसके लिए व्यापक आंदोलन छेड़ देंगे।

गांधी और बोस

गांधी जी ने यह समझ लिया था कि सुभाष बोस का रास्ता उनका रास्ता नहीं है और वे सुभाष बोस को अपने नियंत्रण में नहीं रख सकते। उन्होने 26 अगस्त, 1929 को बंगाल में अपने एक विश्वस्त अनुयायी सतीश दास गुप्ता को लिखा था :

"सुभाष बाबू धोती पहनने वालों को कभी क्षमा नहीं करेंगे। हमें उन्हें सहन करना होगा। वे नहीं बदलेंगे। उनका अपने ऊपर तथा अपने मिशन पर विश्वास है। उन्हें अपने रास्ते पर चलना है और हमें अपने पर।"

सार्वजनिक सभाएं और आंदोलन

गांधीजी का विश्वास था कि रचनात्मक कार्यक्रम ही स्वाधीनता की कुंजी है। वे सार्वजनिक सभाओं और प्रदर्शनों को उतना महत्त्वपूर्ण नहीं मानते थे। इसके विपरीत सुभाष का सारा जोर सार्वजनिक सभाओं और आंदोलनों पर था। उन्होंने 1929 में पहले बंगाल का फिर देश के दूसरे भागों का दौरा किया। वे कई श्रमिक संघों के प्रधान थे, बंगाल विधान परिषद और कलकत्ता नगर निगम के सदस्य थे और बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। इन विभिन्न क्षमताओं में उनका तरुणों तथा मजदूरों से निकट संपर्क रहता था और उन्होंने इन वर्गो को राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्यधारा में खींचने का प्रयास किया। सुभाष बोस ने जाति-प्रथा का विरोध किया तथा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मधुर संबंध स्थापित करने पर जोर दिया। 1928 के बाद से बोस ने समाजवाद की विशेष रूप से पैरवी की। वे समाजवाद के अंध भक्त नहीं थे। वे स्वामी विवेकानंद को भारतीय समाजवाद का मसीहा मानते थे। सुभाष बोस ने कांग्रेस में 5 लाख नए सदस्य भर्ती करने, कांग्रेस के काम के लिए 2 लाख रुपया एकत्रित करने और हर जिले में 1000 स्वयंसेवक जुटाने का कार्यक्रम चालू किया। बोस स्वयंसेवकों को शारीरिक और सैनिक शिक्षा देना चाहते थे। वे जब कभी गांवों के दौरों पर जाते थे, गरीब कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के घर पर ठहरते थे।

ब्रिटिश माल का बहिष्कार

1929 में सुभाष बोस ने डॉ० हरिश्चन्द्र सिन्हा की सहायता से *ब्रिटिश माल का बहिष्कार (बायकाट आफ ब्रिटिश गुड्स)* पुस्तक का संकलन किया। पुस्तक में आंकड़ों-सहित यह दर्शाया गया था कि ब्रिटिश शासन में भारतीय अर्थ-व्यवस्था कितनी खोखली हो गई है।

"सबसे खतरनाक और उग्रवादी नेता"

1929 के शुरू में सरकार ने अनेक साम्यवादी नेताओं को गिरफ्तार कर उन पर मुकदमे चलाए। मेरठ षड़यंत्र कांड[10] का मुकदमा कई सालों तक चला। जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बोस ने इस मुकदमे में श्रमिक नेताओं का साथ दिया, उनके लिए अच्छे से अच्छे वकील किए और रकम जुटाई। सरकार के गुप्तचर विभाग ने अपनी गोपनीय रिपोर्टों में सुभाष बोस को बंगाल का सबसे खतरनाक और उग्रवादी नेता माना था।

सरदार भगतसिंह और जतिनदास

8 अप्रैल, 1929 को हिंदुस्तान रिपब्लिकन सोशलिस्ट आर्मी के नेता सरदार भगतसिंह[11] और उनके कुछ साथियों ने दिल्ली की विधानसभा में एक बम फैंक दिया। बम में कोई हताहत तो नहीं हुआ लेकिन बम फैंकने वाले पकड़ लिए गए। पकड़े जाने वालों में सरदार भगतसिंह तथा उनके तरुण बंगाली सहयोगी जतिन दास भी थे। जतिन दास दक्षिण कलकत्ता कांग्रेस कमेटी के सचिव थे और सुभाष उन्हें कई वर्षों से जानते थे। सरदार भगतसिंह तथा जतिन दास को पकड़कर लाहौर ले जाया गया।

राजनीतिक कैदी दिवस

6 जुलाई, 1929 को सुभाष बोस ने कलकत्ते में राजनीतिक कैदी दिवस आयोजित किया। इस अवसर पर उन्होंने मांग की कि बंगाल, पंजाब और मेरठ के सभी राजनीतिक कैदियों को रिहा किया जाए। सुभाष हिंसा की छुटपुट घटनाओं के विरुद्ध थे लेकिन उनकी ऐसे लोगों से सहानुभूति थी जो समझते थे कि ब्रिटिश राज को समाप्त करने का यही सबसे अच्छा उपाय है। जतिन दास ने 1922 में बंगाल बाढ़ के राहत कार्यक्रमों में सुभाष बोस की सहायता की थी।

जतिनदास की शहादत

जब जतिनदास लाहौर जेल ले जाए गए, भगतसिंह और बी० के० दत्त ने कैदियों की कुछ शिकायतों को लेकर भूख हड़ताल कर रखी थी। जतिनदास ने भी भूख हड़ताल शुरू कर दी। 13 सितम्बर, 1929 को जतिन दास की मृत्यु हो गई।

उनका शव ट्रेन द्वारा कलकत्ता ले जाया गया। रविवार, 15 सितम्बर, 1929 को जतिनदास का शव कलकत्ते पहुंचा। सुभाष बोस कुछ कांग्रेस स्वयंसेवकों के साथ रात भर शव के पास बैठे रहे। अगले दिन शव-यात्रा निकली। देशबंधु चितरंजन दास की मृत्यु के बाद यह कलकत्ते की सबसे लम्बी शवयात्रा थी। सुभाषचन्द्र बोस, जे० एन० सेन गुप्त तथा कांग्रेस के अन्य कई नेता नंगे सिर और नंगे पांव इस शव यात्रा में सबसे आगे थे। गांधी जी जतिनदास की मृत्यु पर खामोश रहे। वे क्रांतिकारी गतिविधियों के खिलाफ थे। उनका विचार था कि भूख हड़ताल नहीं होनी चाहिए थी।[12]

पंजाब प्रांतीय छात्र सम्मेलन

अक्तूबर, 1929 में सुभाष ने बंगाल का दौरा किया। उन्होंने पंजाब प्रांतीय छात्र सम्मेलन की अध्यक्षता की। इस अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में सुभाष बोस ने पंजाब और बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलनों को सराहा और तरुणों से स्वतंत्रता आंदोलन में सम्मिलित होने का अनुरोध किया। सुभाष बोस ने लाहौर षड़यंत्र कांड के कैदियों से मिलने की सरकार से अनुमति मांगी लेकिन वह उन्हें नहीं मिली। हां, उन्होंने मेरठ षड़यंत्र कांड के अभियुक्तों से अवश्य मुलाकात की।

बंगाल कांग्रेस में गुटबंदी

इस समय बंगाल कांग्रेस में दो गुट थे। एक गुट के नेता बोस-बंधु थे। दूसरे गुट के नेता जे० एम० सेन गुप्ता थे। इन दोनों गुटों में मतभेद थे। जे० एम० सेन गुप्ता के ऊपर गांधी जी का वरद हस्त था। वे चिटगांव के रहने वाले थे और पेशे से वकील थे। कुछ समय तक उन्होंने देशबंधु चितरंजन दास के तीनों पद संभाले। वे कलकत्ते के मेयर थे। बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे और बंगाल विधान परिषद में स्वराज दल के नेता थे। 1927 के अंत में उन्होंने बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष पद सुभाष बोस को सौंप दिया। बंगाल कांग्रेस के विवादों को सुलझाने के लिए कांग्रेस अध्यक्ष पंडित मोतीलाल नेहरू ने डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या को कलकत्ते भेजा। डॉ० सीतारामय्या अपने मिशन में सफल नहीं हुए।

लार्ड इर्विन की घोषणा

31 अक्तूबर, 1929 को वायसराय लार्ड इर्विन ने इंगलैंड से वापस आने पर एक वक्तव्य जारी किया कि 1917 की घोषणा में यह अभिप्राय निश्चित रूप से छिपा हुआ है कि भारत को अंत में उपनिवेश का दर्जा अवश्य मिलेगा। उन्होंने इंगलैंड में एक गोलमेज़ परिषद के आयोजन की भी सूचना दी। इस परिषद में ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार से नए संविधान के सिद्धांतों पर विचार-विनिमय करेंगे।

लार्ड इर्विन की घोषणा कूटनीतिक अस्पष्टता का एक श्रेष्ठ उदाहरण थी। इस घोषणा से सरकार की वास्तविक मंशा को समझना मुश्किल था। घोषणा में डोमीनियन स्टेटस को लक्ष्य बताया गया लेकिन वह क़ब प्राप्त होगा इसका कोई संकेत नहीं था।

दिल्ली घोषणा

देश के कई प्रमुख नेताओं जिनमें कांग्रेस के नेता भी शामिल थे ने दिल्ली में मुलाकात की और लार्ड इर्विन की घोषणा का स्वागत किया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पहले तो दिल्ली घोषणा पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया पर बाद में गांधी जी के समझाने पर वे हस्ताक्षर करने के लिए सहमत हो गए। लेकिन वामपक्षी नेताओं ने जिनमें सुभाषचन्द्र बोस तथा पंजाब के डॉ० सैफुद्दीन किचलू शामिल थे। अपना एक पृथक् वक्तव्य जारी किया जिसमें डोमीनियन स्टेटस के लक्ष्य का तथा गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लेने का विरोध किया।

सुभाष को लगा कि कांग्रेस कार्यसमिति के बहुमत के साथ उनके विचार नहीं मिलते। इसलिए उन्होंने कार्यसमिति से त्याग-पत्र दे दिया। लेकिन पंडित मोतीलाल नेहरू और महात्मा गांधी के दबाव के कारण उन्होंने त्यागपत्र वापस ले लिया।

दिल्ली घोषणा पर जवाहर लाल नेहरू ने भी हस्ताक्षर कर दिए थे। इससे बोस जवाहरलाल नेहरू से रुष्ट हो गए।

वायसराय की गाड़ी पर बम

लाहौर कांग्रेस से कुछ दिन पहले 23 दिसम्बर, 1929 की रात को वायसराय की गाड़ी के नीचे बम फटा। गांधी जी ने इस घटना की निंदा की।

लाहौर कांग्रेस

गांधी जी ने 1928 में कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव का विरोध किया था। उन्होंने कहा था कि यदि भारत को एक वर्ष के भीतर औपनिवेशिक स्वराज नहीं मिला तो वे स्वयं पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पेश करेंगे। तदनुसार उन्होंने लाहौर कांग्रेस के अवसर पर पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पेश किया। सुभाप बोस कांग्रेस को एक कदम और आगे ले जाना चाहते थे। उन्होंने गांधी जी के प्रस्ताव पर एक संशोधन पेश किया जिसमें भारत में एक समानांतर सरकार स्थापित करने की बात कही गई थी। सुभाष बोस ने अपना संशोधन प्रस्तुत करते हुए कहा कि उनका संशोधन स्वतंत्रता के लक्ष्य के अनुकूल है। देश की तरुण पीढी इसका स्वागत करेगी। यह सर्वांगीण बहिष्कार का कार्यक्रम है। हमें या तो पूर्ण बहिष्कार करना चाहिए या बिल्कुल नहीं। मैं अतिवादी हूं। मेरा सिद्धांत है – सब या कुछ नहीं।

गांधी जी ने सुभाष के संशोधन का विरोध किया और कहा कि देश समानांतर सरकार के लिए तैयार नहीं है। गांधी जी के विरोध के कारण बोस का संशोधन अस्वीकृत हो गया।

सुभाष का यह भी कहना था कि यदि सरकार की सारी व्यवस्था का बहिष्कार नहीं किया जाना था, तो कांग्रेसियों को विधान परिषदों से इस्तीफा देने की कोई ज़रूरत नहीं थी। गांधी जी ने बोस को इस प्रश्न पर भी पराजित किया और कांग्रेस सदस्यों को आदेश दिया कि वे विधानमंडलों में से अपने स्थानों को त्याग दें।

31 दिसम्बर, 1929 की मध्य रात्रि को स्वतंत्र भारत का तिरंगा झंडा फहराया गया।[13] कांग्रेस ने गोलमेज़ परिषद में भाग न लेने का निश्चय किया और कार्य समिति को यह अधिकार दिया कि वह जब चाहे और जहां चाहे सविनय अवज्ञा और करबंदी का कार्यक्रम आरंभ कर सकती है। कांग्रेस ने 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस निश्चित किया और इस अवसर पर पढ़े जाने के लिए स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र अंगीकार किया। घोषणा-पत्र ने ब्रिटिश सरकार को भारत के आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पतन के लिए दोषी ठहराया और दावा किया कि स्वतंत्रता प्राप्त करना भारतीय जनता का जन्मसिद्ध अधिकार है।[14]

कांग्रेस कार्यसमिति से बाहर

सुभाष बोस और श्रीनिवास आयंगर को 1930 की नई कांग्रेस कार्यसमिति में नहीं रखा गया। उनका अपराध यह था कि वे अक्सर बोस का साथ देते थे। बोस को कार्यसमिति में न लेने के मुख्य रूप से दो कारण बताए गए थे। एक कारण तो यह था कि बोस का मिज़ाज़ कार्यसमिति के अन्य सदस्यों से मेल नहीं खाता था। दूसरा कारण था बोस तथा अन्य सदस्यों के बीच सैद्धांतिक मतभेद।

कारावास

1930 के शुरू में बोस को एक साल की जेल हो गई। उन्हें कलकत्ता की अलीपुर सेंट्रल जेल में रखा गया। गांधी जी ने बोस और उनके साथियों को बधाई का तार भेजा। जेल में सुभाष बोस का समय अध्ययन, विचार-विनिमय, चिंतन, कताई और ध्यान में बीतता था।

जिन दिनों सुभाष बोस जेल में थे, गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ किया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन

गांधी जी ने 12 मार्च, 1930 को अहमदाबाद स्थित साबरमती आश्रम से अपनी ऐतिहासिक दांडी यात्रा आरम्भ की। इस यात्रा में उनके साथ 78 अनुयायी थे। गांधी

जी ने 200 मील की यात्रा पैदल चलकर 24 दिनों में पूरी की। जैसे-जैसे गांधी जी की टोली अपने गंतव्य की ओर बढ़ती गई, देश में नया जीवन हिलोरें लेने लगा।

महात्मा जी ने 6 अप्रैल, 1930 को दांडी मे समुद्र के किनारे नमक कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आंदोलन का सूत्रपात किया। गांधी जी ने अपने करिश्माई व्यक्तित्व से नमक की एक डली को इतिहास के एक महान जन आंदोलन का आधार बना दिया।

कार्यक्रम के अंग

जैसे ही गांधी जी ने दांडी में नमक कानून भंग किया, देश भर में स्थान-स्थान पर नमक कानून भंग किया जाने लगा। अब नमक खुले आम बनने लगा। गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन के कार्यक्रम में शराबबंदी और विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार को भी शामिल कर लिया। अनेक स्थानों पर विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। गांधी जी के आहवान पर भारतीय महिलाएं भी घर की चहार दीवारी से बाहर निकलीं और भारी संख्या में जेल गई।

सरकार का दमन-चक्र

सरकार ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को दबाने के लिए अपना दमन-चक्र पूरी तेजी से चलाया। सीमा प्रांत में खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में पठानों ने आंदोलन में प्रमुख भाग लिया। सैंकड़ों पठानों ने हंसते-हंसते मौत को अपने गले लगाया। महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे सभी प्रमुख नेता पकड़ लिए गए। फिर भी आंदोलन बढ़ता गया।

प्रमुख घटनाएं

सविनय अवज्ञा आंदोलन की कुछ उल्लेखनीय घटनाएं थीं :

1. 18 अप्रैल, 1930 को सूरज सेन के नेतृत्व में कुछ क्रांतिकारियों ने चिटगांग के जिला प्रशासन पर अधिकार कर लिया। लेकिन दो दिन बाद ही पुलिस और सेना ने क्रांतिकारियों को तितर-बितर कर दिया। अनेक क्रांतिकारियों को, जिनमें सूरजसेन भी शामिल थे, पकड़ लिया गया और उन्हें फांसी दे दी गई।
2. 22 अप्रैल, 1930 को अलीपुर सेंट्रल जेल में पुलिस अधिकारियों तथा कैदियों के बीच झगड़ा हो गया। पुलिस ने कैदियों को पीटना शुरू कर दिया। सुभाष बोस को भी चोटें आई और वे बेहोश हो गए। बाहर अफवाह फैल गई कि जेल में सुभाष बोस तथा सेन गुप्त को मार डाला गया है। शहर में उत्तेजना फैल गई और जेल अधिकारियों को सफाई देनी पड़ी।

3. ढाका में सांप्रदायिक दंगे हुए।
4. 29 अगस्त, 1930 को क्रांतिकारियों ने पुलिस महानिरीक्षक लोमान की हत्या कर दी और पुलिस सुपरिंटेंडेट हडसन को घायल कर दिया।
5. क्रांतिकारियों की एक टोली ने बंगाल प्रशासन के मुख्य कार्यालय पर हमला किया और बंगाल के जेल महानिरीक्षक सिम्पसन की हत्या कर दी।
6. धारासना में 2500 स्वयंसेवकों ने नमक के गोदाम पर चढ़ाई की। पुलिस ने लोगों पर लाठी वर्षा की। किसी का हाथ टूटा, किसी का पैर। लोगों के कपड़े खून से तर थे। 300 से अधिक व्यक्ति अस्पताल ले जाए गए और उनमें से दो की मृत्यु हो गई। किसी व्यक्ति ने अपने बचाव की कोशिश नहीं की।
7. पेशावर में एक गढ़वाली सैनिक दस्ते ने अपने सत्याग्रही मुस्लिम देशवासियों के ऊपर गोली चलाने से इन्कार कर दिया।
8. शोलापुर में उत्तेजित भीड़ ने छह थाने जला दिए और कुछ चौकीदारों को मार डाला। संगठित कार्यकर्त्ताओं ने व्यवस्था स्थापित करने में सफलता प्राप्त की लेकिन पुलिस ने पच्चीस आदमियों को गोली से भून कर और सैंकड़ों को घायल कर के प्रतिशोध लिया।

नगर निगम के मेयर

सुभाष बोस जेल में ही थे कि 22 अगस्त, 1930 को उन्हें कलकत्ता नगर निगम का मेयर चुन लिया गया। 23 सितम्बर, 1930 को उन्हें जेल से छोड़ दिया गया और 24 सितम्बर को उन्होंने कलकत्ते के मेयर-पद की शपथ ले ली। इस पद पर सुभाष बोस ने उन सब कामों को पूरा करने का प्रयत्न किया जिन्हें देशबन्धु चितरंजन दास ने 1924 में आरंभ किया था। ये काम मुख्य रूप से प्रारम्भिक शिक्षा, आवास, सड़क, चिकित्सा, जल-निकासी, रोशनी, तथा गरीबी-निवारण से संबंधित थे। चूंकि इस समय सुभाष बोस बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के भी अध्यक्ष थे, अतः वे नगर-निगम के कामों को पूरा समय नहीं दे सकते थे।

संस्कृति का अभिमान

सुभाष बोस को भारतीय संस्कृति पर अभिमान था। 12 दिसम्बर, 1930 को स्काटिश चर्चेज़ कालिज का शताब्दी समारोह मनाया गया। उस अवसर पर बोस ने भारतीय संस्कृति की सराहना की।[15]

व्यापक जनाधार

सुभाष बोस ने इस काल में बंगाल में कांग्रेस के जनाधार को व्यापक बनाने

की कोशिश की और समाज के विभिन्न वर्गों– छात्रों, मजदूरों, स्त्रियों, व्यवसाइयों, व्यापारियों, हिंदुओं और मुसलमानों से अनुरोध किया कि वे कांग्रेस में सम्मिलित होकर स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लें। गांधी जी जेल में थे और 1930 के उत्तरार्ध में स्वदेशी आंदोलन ठंडा पड़ने लगा था। सुभाष बोस ने अपने गृह-प्रांत के विभिन्न भागों का दौरा कर के विदेशी माल के बहिष्कार तथा स्वदेशी माल के प्रयोग को बराबर बढ़ावा दिया।

पुनः गिरफ्तारी

जनवरी, 1931 में सुभाष बोस को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें 6 महीने का कारावास-दंड दिया गया।

पहला गोलमेज़ सम्मेलन (नवंबर-दिसम्बर, 1930)

जिन दिनों भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन चल रहा था, ब्रिटिश सरकार ने लंदन में भारतीय संविधान के सिद्धांतों पर विचार करने के लिए गोलमेज़ सम्मेलन का आयोजन किया। गोलमेज़ सम्मेलन का पहला अधिवेशन 12 नवंबर, 1930 को लंदन में आरंभ हुआ। इसमें कुल 89 प्रतिनिधि थे। इनमें से 57 प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के थे, 16 प्रतिनिधि देशी राज्यों की ओर से गए थे। बाकी 16 प्रतिनिधि-ब्रिटिश संसद के सदस्य थे और वे इंगलैंड के तीनों राजनीतिक दलों– उदार दल, अनुदार दल तथा श्रमिक दल का प्रतिनिधित्व करते थे। भारतीय प्रतिनिधियों का चुनाव वायसराय ने किया था। ये प्रतिनिधि विविध जातियों, वर्गों और हितों के प्रवक्ता थे। कांग्रेस ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया।

प्रधानमंत्री रैमज़े मैकडानल्ड ने प्रस्तावित संविधान के सिद्धांतों का निरूपण किया। उन्होंने कहा कि नया संविधान संघीय होगा। ब्रिटिश सरकार केंद्र में और प्रांतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए तैयार थी। हां, संक्रमण-काल के लिए कुछ रक्षोपाय रखे जाएंगे। साधारणतः संघीय योजना का सभी पक्षों ने स्वागत किया। लेकिन सम्मेलन सांप्रदायिक वर्गों के प्रतिनिधित्व की समस्या को नहीं सुलझा सका। दलित वर्गों की ओर से डा० बी० आर० अम्बेडकर ने पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों की मांग की।

गांधी-इर्विन समझौता

ब्रिटिश सरकार गोलमेज़ सम्मेलन में कांग्रेस का सहयोग पाना चाहती थी। कांग्रेस के सहयोग के बिना गोलमेज़ सम्मेलन की स्थिति बिना दूल्हे की बरात जैसी थी। वायसराय लार्ड इर्विन ने महात्मा गांधी और कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों को बिना शर्त रिहा कर दिया। गांधी जी और वायसराय के बीच कई मुलाकातें हुईं। इन

मुलाकातों के फलस्वरूप गांधी जी और लार्ड इर्विन के बीच 5 मार्च, 1931 को एक समझौता हुआ। लार्ड इर्विन ने कांग्रेस की कुछ मांगें मान लीं और गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थागित कर दिया। देश के नौजवान गांधी-इर्विन समझौते से खुश नहीं थे। गांधी जी सरदार भगतसिंह और उनके साथियों की जान नहीं बचा सके। सुभाष बोस ने गांधी- इर्विन समझौते की कटु आलोचना की।

कांग्रेस का कराची अधिवेशन

मार्च, 1931 के अंत में कराची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसके कुछ दिन पहले ही सरदार भगत सिंह तथा उनके साथियों को फांसी दे दी गई। इससे कराची अधिवेशन पर अवसाद के बादल छाए रहे। सरदार भगतसिंह गांधी जी की तरह अहिंसावादी नहीं थे, लेकिन अपनी वीरता और कुर्बानी के कारण वे देश के आराध्य बन गए थे। सुभाष बोस ने भगतसिंह को देश की क्रांति-भावना का प्रतीक बताया। सुभाष बोस तथा उनके कुछ सहयोगियों के विरोध के बावजूद कराची कांग्रेस ने गांधी इर्विन समझौते का अनुमोदन कर दिया।

दूसरा गोलमेज़ सम्मेलन

दूसरा गोलमेज़ सम्मेलन लंदन में 7 सितम्बर, 1931 से 1 दिसम्बर 1931 तक चला। इसमें कांग्रेस की ओर से गांधी जी एकमात्र प्रवक्ता के रूप में उपस्थित हुए। लंदन में गांधी जी किसी अच्छे होटल में न रह कर गरीबों की एक बस्ती में टिके। सम्मेलन में उन्होंने अनेक गरिमामय भाषण दिए। उनका एक महत्त्वपूर्ण भाषण 30 नवंबर, 1931 को गोलमेज़ सम्मेलन के प्रारम्भिक अधिवेशन में हुआ। गांधी जी ने अपने भाषण के आरम्भ में ही ब्रिटिश सरकार को बता दिया था कि उनके वक्तव्य से मंत्रिमंडल के निर्णय पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। गांधी जी ने सम्मेलन के सामने प्रस्तुत की गई विभिन्न रिपोर्टों की समीक्षा करते हुए कहा कि इन रिपोर्टों में भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों और वर्गों के पारस्परिक मतभेदों को उछाला गया है। कांग्रेस पार्टी भारत का सबसे बड़ा राजनीतिक दल है लेकिन उसे भी अन्य राजनीतिक दलों के बराबर का दर्जा दिया गया है।

गांधी जी ने कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप पर विशेष बल दिया। अन्य सारे दल वर्गगत हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कांग्रेस सारे भारत का प्रतिनिधित्व करती है।[16]

गोलमेज़ सम्मेलन से गांधी जी खाली हाथ वापस लौटे।

सुभाष बोस की राय थी कि कांग्रेस को गोलमेज़ सम्मेलन में भाग नहीं लेना चाहिए था। जब गांधी जी गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लेने के लिए इंगलैंड गए थे, वे यूरोप के उन महत्त्वपूर्ण राजनीतिज्ञों से नहीं मिले जो भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सहायक हो सकते थे। सुभाष को यह नागवार गुज़रा था।[17]

फिर सविनय अवज्ञा

भारत लौटने पर गांधी जी ने नए वायसराय लार्ड विलिंगटन से मुलाकात करनी चाही पर वायसराय इसके लिए तैयार नहीं हुए। गांधी जी ने दुबारा सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया। सरकार ने अपना दमन-चक्र घुमाया।

सुभाष बोस, शरत बोस, गांधी जी, सरदार पटेल, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, जवाहर लाल नेहरू तथा कांग्रेस के अन्य प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए। सुभाष बोस को मध्य प्रदेश की सिओनी जेल में रखा गया। कुछ ही दिनों बाद यहां शरत बोस भी पहुंच गए। शरत बोस की यह पहली गिरफ्तारी थी।

सुभाष की बीमारी

जेल में सुभाष बोस का स्वास्थ्य बिगड़ गया। मई में उन्हें तथा शरत को जबलपुर की सेंट्रल जेल में स्थानांतरित किया गया। जुलाई में सुभाष बोस को मद्रास ले जाया गया। वहां डॉ० बी० सी० राय और नीलरतन सरकार ने उनकी डाक्टरी जांच की। डाक्टरी जांच में पता लगा कि सुभाष बोस को तपेदिक है। उन्हें इलाज के लिए भवाली सेनेटोरियम ले जाया गया। वहां भी उनकी तबीयत ठीक नहीं हुई। दिसम्बर, 1932 में उन्हें लखनऊ भेजा गया।

यूरोप-यात्रा

सरकार ने सुभाष बोस के गिरते हुए स्वास्थ्य को देख कर उनके सामने यह प्रस्ताव रखा कि वे अपने इलाज के लिए यूरोप चले जाएं। सुभाष ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और वे अपने खर्च पर स्वास्थ्य-लाभ के लिए यूरोप जाने के लिए तैयार हो गए। सरकार ने उन्हें कलकत्ता जाकर अपने वृद्ध माता-पिता से मिलने की भी अनुमति नहीं दी। उनकी भाभी शरत बोस की पत्नी बिवा ने उनकी विदेश यात्रा का प्रबंध किया। 23 फरवरी, 1933 को सुभाष बम्बई से यूरोप के लिए रवाना हो गए।

सारांश

1927 से 1932 तक का काल सुभाष बोस के जीवन में भी महत्त्वपूर्ण है और भारतीय राष्ट्रवाद की यात्रा में भी। इस अवधि में कांग्रेस का प्रभाव बढ़ा और देश में वामपंथी विचारधारा पनपी। सुभाष बोस और जवाहरलाल नेहरू इस विचारधारा के प्रवक्ता बने।

सुभाष बोस ने 23 अगस्त, 1927 को बंगाल विधानमंडल में निर्वाचित सदस्य की हैसियत से प्रवेश किया। उनका विधान मंडल की कार्यवाही में ज्यादा मन नहीं लगता था। उन्होंने प्रश्नकाल में विशेष रुचि ली।

नवंबर, 1927 में सुभाष बोस बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष निर्वाचित

हुए। उन्हें क्रांतिकारी तथा वामपंथी तत्त्वों का समर्थन प्राप्त था।

अप्रैल और मई, 1928 में सुभाष बोस ने नागपुर, बम्बई और पूना की यात्राएं कीं। पूना में वे महाराष्ट्र प्रांतीय सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस अवसर पर उन्होंने एक लम्बा भाषण दिया जिसमें विभिन्न विषयों पर स्पष्ट रूप से अपने विचार प्रकट किए। उनका कहना था कि हमारी सारी समस्याओं का एक ही इलाज है- स्वराज ।

1928 में सुभाष बोस ने बंगाल की कई महत्वपूर्ण हड़तालों में भाग लिया। उन्होंने प्राय: मालिकों और मजदूरों के बीच समझौता कराने का प्रयास किया।

1927 में महात्मा गांधी कांग्रेस के निर्विवाद नेता के रूप में फिर से राजनीति के मैदान में उतरे।

1928 में भारत में साइमन कमीशन आया। कमीशन का काम भारतीय शासन अधिनियम, 1919 की कार्य-प्रणाली की जांच करना और भावी सांविधानिक विकास के बारे में सुझाव देना था। कमीशन का भारत के सभी राजनीतिक दलों ने विरोध किया। लाहौर में लाला लाजपतराय ने कमीशन विरोधी जुलूस का नेतृत्व किया। उनके ऊपर पुलिस की लाठियां पड़ीं। कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई। बंगाल में साइमन कमीशन विरोधी हड़तालों का आयोजन सुभाष बोस ने किया।

जिस समय भारत मंत्री लार्ड बर्कनहेड ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की थी, उन्होंने भारतीय नेताओं को चुनौती दी थी कि वे भारत के लिए एक सर्वसम्मत संविधान प्रस्तुत करें। इस चुनौती का उत्तर था- नेहरू रिपोर्ट । समिति ने भारत के लिए डोमीनियन स्टेटस, केंद्र और प्रांतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन, संघ शासन की स्थापना और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का प्रस्ताव किया।

मुस्लिम लीग ने नेहरू रिपोर्ट को नहीं माना और जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से 14 शर्तें पेश की।

दिसम्बर, 1928 में कलकत्ते में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। अधिवेशन के अध्यक्ष पंडित मोतीलाल नेहरू थे। अधिवेशन.का संगठन सुभाष बोस ने किया। अधिवेशन में सुभाष बोस ने पूर्ण स्वाधीनता की मांग की। लेकिन उनका प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। गांधी जी ने वायदा किया कि यदि ब्रिटिश सरकार भारत को एक वर्ष के भीतर डोमीनियन स्टेटस नहीं देती, तो वे पूर्ण स्वाधीनता के लिए आंदोलन करेंगे। सुभाष बोस को कांग्रेस कार्यसमिति का सदस्य बना लिया गया।

1929 में सुभाष बोस ने पहले बंगाल का और फिर देश के दूसरे भागों का दौरा किया। वे कई श्रमिक संघों के प्रधान थे। बंगाल विधान परिषद और कलकत्ता नगर निगम के सदस्य थे और बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे। इन क्षमताओं

में उनका तरुणों और श्रमजीवियों से निकट सम्पर्क रहता था।

1929 में सुभाष बोस ने डॉ० हरिश्चन्द्र सिन्हा की सहायता से *बायकाट आफ ब्रिटिश गुड्स* पुस्तक का संकलन किया। सुभाष ने सरदार भगतसिंह, बी० के० दत्त और जतिनदास जैसे क्रांतिकारियों के बारे में कहा कि वे राजनीतिक कैदी हैं और उन्हें रिहा किया जाए। लम्बी भूख हड़ताल के बाद 13 सितम्बर, 1929 को जतिनदास का देहांत हो गया। गांधी जी क्रांतिकारी गतिविधियों के खिलाफ थे।

बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी में दो गुट थे। एक गुट के नेता जे० एम० सेन गुप्ता थे और दूसरे के सुभाष और शरत बोस। गांधी जी का झुकाव जे० एम० सेन गुप्ता की ओर था।

गांधी जी ने 1929 में लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पेश किया। सुभाष बोस ने गांधी जी के प्रस्ताव पर एक संशोधन पेश किया कि कांग्रेस देश में एक समानांतर सरकार स्थापित करे। सुभाष बोस का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

महात्मा गांधी के आग्रह पर 1930 की नई कांग्रेस कार्यसमिति में सुभाष बोस को नहीं रखा गया।

1930 के शुरू में सुभाष बोस को एक साल की जेल हो गई।

12 मार्च, 1930 को गांधी जी ने अहमदाबाद स्थित अपने साबरमती आश्रम से दांडी यात्रा आरंभ की। 6 अप्रैल, 1930 को उन्होंने समुद्र के पानी से नमक बनाकर सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ किया। सरकार ने तेजी से अपना दमन-चक्र चलाया।

सुभाष बोस जेल में ही थे कि 22 अगस्त, 1930 को उन्हें कलकत्ता नगर निगम का मेयर चुन लिया गया। इसके कुछ दिन बाद ही वे जेल से छूट गए।

जनवरी, 1931 में सुभाष बोस को फिर गिरफ्तार कर लिया गया और 6 महीने का कारावास-दंड दिया गया।

कांग्रेस ने पहले गोलमेज़ सम्मेलन में भाग नहीं लिया। लेकिन गांधी-इर्विन समझौते के बाद गांधी जी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रवक्ता के रूप में दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन मे भाग लिया। सम्मेलन में गांधी जी ने कांग्रेस के राष्ट्रीय स्वरूप पर बल दिया। लेकिन वे लंदन से खाली हाथ लौटे। सुभाष बोस की राय थी कि कांग्रेस को गोलमेज़ सम्मेलन में भाग नहीं लेना चाहिए था।

गांधी जी ने भारत वापस लौटने पर फिर सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया। कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिए गए– सुभाष और शरत बोस भी। जेल में सुभाष का स्वास्थ्य बिगड़ गया और सरकार ने उन्हें इलाज के लिए यूरोप जाने की अनुमति दे दी।

सन्दर्भ और पाद टिप्पणियां

1. यूरोप के समाजवादियों ने 1864 मे *फर्स्ट इंटरनेशनल* अथवा पहली अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी संस्था की स्थापना की। 1889 मे दूसरी अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी संस्था की स्थापना हुई। पहले विश्वयुद्ध (1914-1918) में विभिन्न देशो के समाजवादी दलो ने अपनी-अपनी सरकारो का साथ दिया। 1919 मे रूसी साम्यवादी दल के संस्थापक लेनिन ने तीसरे अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संघ की स्थापना की। इस संस्था का काम विभिन्न देशों के साम्यवादी दलों की गतिविधियो में तालमेल बैठाना था।

2. "Although the Legislative Council was not at all a favourite forum for his political activity, Subhash Bose attended, somewhat irregularly, though the next two and a half years and was even reelected in the spring of 1929. He participated actively in the question periods, demanding information about detenus and jail conditions." Leonard A. Gordon, *Brothers Against the Raj— A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose,* p.156.

3. "Nationalism is sometimes assailed as narrow, selfish and aggressive. It is also regarded as a hindrance to the promotion of internationalism... My reply... is that Indian nationalism... is inspired by the highest ideals of the human race. viz. *satyam* (the true), *shivam* (the good), *sundaram* (the beautiful). Nationalism in India has instilled into us truthfulness, honesty, manliness and the spirit of service and sacrifice. What is more, it has roused the creative faculties which for centuries had been lying dormant in our people and as a result we are experiencing a renaissance in the domain of Indian art." Subhash Chandra Bose, Quoted *Ibid.*, p.166.

4. For Bose – at this point in his life at least – nationalism in India meant the Indian National Congress. The Congress was, in theory if not in practice, to reach out to all groups, and all strata of the Indian population It was not bound by any cultural, religious, regional, caste, or class barriers. Its goal was to mobilize the entire Indian people and turn out the foreign rulers as soon as possible. He pointed to key sectors of the population which the Congress had not done a good job of reaching. These included labour, the peasantry, youths and women." Leonard A. Gordon, *Ibid.*, p.166.

5. लाला लाजपत राय (1865-1928) उच्चकोटि के परोपकारी, शिक्षाशास्त्री, धार्मिक सुधारक, सामाजिक कार्यकर्त्ता और राजनीतिक नेता थे। वे आर्यसमाज के प्रमुख स्तम्भ थे और उन्होने डी० ए० वी० कालिज, लाहौर की स्थापना में महत्वपूर्ण भाग लिया था। लाला लाजपत राय ने कांग्रेस के भीतर ही राष्ट्रीय दल की स्थापना की थी। लाल, बाल, पाल (लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक

और विपिनचंद्र पाल) की त्रिमूर्ति राष्ट्रीय भारत मे अत्यंत लोकप्रिय थी। लाला लाजपत राय उग्रवादी नेता थे और 'पंजाब केसरी' कहलाते थे। साइमन कमीशन के प्रति विरोध प्रदर्शन के समय गोरे सार्जट की लाठी के प्रहार से कुछ दिनों वाद ही उनकी मृत्यु हो गई। मृत्यु से पहले उन्होंने कहा था, "मेरे ऊपर किया गया लाठी का एक-एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के तावूत की कील बनेगा।"

6. Leonard A. Gordon, *Ibid*., p.181.
7. मोतीलाल नेहरू और सुभाष बोस के अलावा इस समिति के सदस्य थे – एस० अली इमाम, तेज वहादुर सप्रू, एम० एस० अणे, मंगल सिह, शुऐद कुरेशी, जी० आर० प्रधान। अन्य नेता आमंत्रण द्वारा कमेटी की बैठको में सम्मिलित होते थे।
8. डामीनियन स्टेटस का अर्थ था ब्रिटेन की अधीनता में स्वशासी डोमीनियनो की साविधानिक स्थिति। 1926 के साम्राज्य सम्मेलन मे लार्ड वेल्फोर ने डोमीनियनो की परिभापा करते हुए लिखा था, "वे साम्राज्य के अंतर्गत स्वशासी समुदाय हैं। यद्यपि ये देश ब्रिटिश सम्राट के प्रति समान निष्ठा के धागे से वधे हुए है और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सहयोगी सदस्य हैं तथापि वे अपने घरेलू और विदेशी मामलों में किसी भी प्रकार एक-दूसरे के अधीन नही हैं और उनकी स्थिति एक दूसरे के समान है।" 1931 के वेस्टमिंस्टर कानून ने इस स्थिति को वैधानिक आधार प्रदान किया। अव डोमीनियन शब्द का प्राय: लोप हो गया है और इसकी जगह राष्ट्रमंडल सदस्य शब्द का प्रयोग होने लगा है। अरसे तक कांग्रेस का लक्ष्य देश मे डोमिनियन स्टेटस प्राप्त करना था।
9. संघ-शासन की एक अनिवार्य विशेपता है दो सरकारों का सह-अस्तित्व। ये दोनों सरकारें अपने प्रशासनिक क्षेत्रो में एक-दूसरे से स्वतंत्र होती हैं और एक-दूसरे की सीमाओं में हस्तक्षेप नही करतीं। फलत· संघ-शासन में यह आवश्यक हो जाता है कि केद्रीय या सघीय और राज्य-सरकारों के वीच प्रशासनिक, विधायी और वित्तीय शक्तियो का वितरण कर दिया जाए। इस शक्ति का वितरण का मूल सिद्धांत यह है कि जिन विषयों का संबंध संपूर्ण राष्ट्र से हो और जिनके प्रबंध मे एकरूपता अपेक्षित हो, वे केंद्रीय अथवा संघीय शासन की अधीनता में रखे जाएं। इसके विपरीत जिन विषयों का सबंध संपूर्ण देश से नही, वल्कि स्थानीय परिस्थितियों से हो, वे राज्य सरकारों को सौंप दिए जाएं। वे शक्तिया जो न केंद्र सरकार को सौंपी जाती हैं और न राज्य सरकारों को अवशिष्ट शक्तियां कहलाती हैं। अमरीका के संविधान में सिर्फ केंद्र सरकार की शक्तियो का उल्लेख किया गया है, शेष सारी शक्तियां अथवा अवशिष्ट शक्तिया राज्य सरकारो को सौपी गई है। भारतीय संविधान में अवशिष्ट शक्तिया केंद्र में निहित की हैं।
10. भारत मे साम्यवादी दल की स्थापना का कार्य 1921 में शुरु हुआ था। दिसम्वर, 1926 मे ब्रिटेन से फिलिप सम्राट भारत आए। उन्होने साम्यवादी दल को व्यापक आधार दिया। 20 मार्च, 1929 को साम्यवादी दल के 31 प्रमुख नेताओं को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया और उन पर मेरठ मे मुकदमा चला। 27 अभियुक्तो

को दोषी पाया गया और उन्हें 16 जनवरी, 1933 को कारावास-दंड दिया गया। राष्ट्रीय नेताओं ने मेरठ कांड के अभियुक्तों के प्रति सहानुभूति प्रकट की।

11. सरदार भगतसिंह (1907-1931) भारत के महान क्रांतिकारी और शहीद थे। उनका जन्म लायलपुर जिले के बंगा गांव में 27 सितम्बर, 1907 को हुआ था। उनके पिता किशन सिंह तथा चाचा अजित सिंह ने राष्ट्रीय आंदोलन में प्रमुख भाग लिया था। भगतसिंह का हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन और कीर्ति किसान पार्टी से घनिष्ठ संबंध रहा था। वे नौजवान भारत सभा के सचिव थे। 30 अक्तूबर, 1938 को साइमन विरोधी जलूस का नेतृत्व करते हुए लाला लाजपत राय पर पुलिस की लाठियां पड़ीं जिनसे बाद में उनकी मृत्यु हो गई। भगतसिंह ने लाला लाजपत राय की मृत्यु का बदला लेने की प्रतिज्ञा की और पुलिस के असिस्टैट सुपरिंटेंडेंट जे० पी० सौडर्स को मार डाला। 8 अप्रैल, 1929 को भगत सिंह और उनके सहयोगी बी० के० दत्त ने दिल्ली की केंद्रीय विधान सभा में बम फैंका। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया उन पर मुकदमा चला और 23 मार्च, 1931 को उन्हें फासी पर लटका दिया गया। मृत्यु के समय भगतसिंह की आयु सिर्फ 24 वर्ष की थी। उनके बलिदान ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को नयी जीवन-शक्ति दी। 8 अप्रैल, 1931 को अमृतसर में सेंट्रल सिख लीग की सभा में भाषण देते हुए सुभाषचन्द्र बोस ने सरदार भगतसिह के बारे मे कहा था :

"Bhagat Singh who set an example of character and patriotism by sacrificing himself for the sake of the country's freedom, was from the sikh community. Today, he is known to be a brave Sikh hero throughout the world. The Sikh community has to produce thousands of Bhagat Singh's for the cause of the country." भगतसिह की जीवनी के बारे में दो ग्रंथ दृष्टव्य हैं : G. S. Deol, *Shaheed Bhagat Singh – A Biography* और Fauja Singh, ed. *Who's Who : Punjab Freedom Fighters*, Vol.I, Patiala, 1972.

12. "The next day Subhash Bose, J. M. Sen Gupta and other Congerss leaders bare-headed and bare-footed – headed an enormous procession through the streets of Calcutta. Some said it was the biggest funeral procession to be seen in Calcutta since the death of C. R. Das. Gandhi, however, remained silent, and implied in a later comment that the hunger strike – as well as H. R. S. A.'s activities – should never have been taken up." Leonard A. Gordon, *Brothers Against the Raj – A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose*, p.210.

13. "31 दिसम्बर, 1929 की रात को बारह बजे कांग्रेस के अध्यक्ष (राष्ट्रपति) जवाहरलाल नेहरू ने लाहौर में रावी के किनारे पूर्ण स्वराज प्राप्त करने की घोषणा कर दी। रात को ही जुलूस निकला। लाजपतनगर अधिवेशन स्थल पर झंडा फहराया गया। कांग्रेस की नीति में गत पाच दशकों में कितना परिवर्तन आ गया

था। अंग्रेजी राज्य के स्थायित्व की दुआ मांगने वाली कांग्रेस आज बगावत की सीमा तक पहुंच गई थी। पूर्ण स्वराज की गूंज तो पहले से ही सुनाई दे रही थी। पंडित नेहरु ने भारतवासियों की भावना को स्वर दिया। रात के बारह बजे पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव स्वीकृत होते ही पंडाल 'इन्कलाब जिंदाबाद' के नारों से गूंज उठा। रात को जवाहरलाल जी का पठानों के साथ नाच इसी दीर्घ अभिलाषा की अभिव्यक्ति का जश्न था।" धमेन्द्रनाथ, *दिल्ली और आजादी*, दिल्ली, 1990, पृ० 140 ।

14. 'पूर्ण स्वराज, की घोषणा एक लम्बा दस्तावेज था जिसकी रचना गांधी जी ने की थी। घोषणा के अंतिम शब्द थे :

"We hold it to be a crime against man and God to submit any longer to a rule that has caused this four-fold disaster to our country. We recognise however, that the most effective way of gaining our freedom is not through violence. We will therefore prepare ourselves by withdrawing, so far as we can, all voluntary association from the British Government, and will prepare for civil disobedience including non-payment of taxes. We are convinced that if we can but withdraw our voluntary and stop payment of taxes without doing violence even under provocation, the end of this inhuman rule is assured. We therefore hereby solemnly resolve to carry out the Congress instructions issued from time to time for the purpose of establishing *Purna Swaraj*" पूरी घोषणा के लिए देखिए, Pattabhi Sitaramayya, *History of Congress*, Vol.I, pp. 363-5.

15. सुभाष बोस ने अपने भाषण में भारत की सांस्कृतिक विरासत का उल्लेख करते हुए कहा था :

"Twenty two centuries have gone by since Asoka, the greatest missionary - monarch known to History, sent forth to the Western world India's inspiring message of *Dharma* In the days that followed."

16 "All the other parties at this meeting represent sectional interests. The Congress alone claims to represent the whole of India and all interests. And yet here I see that the Congress is treated as one of the parties...I wish I could convince all the British public men, the British Ministers that the Congress is capable of delivering the goods...But no, although you have invited the Congress you reject its claim to represent the whole of India." Quoted by Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol. 2, pp.247-8.

17. Reviewing the Mahatma's visit to Europe as a whole, one must say that it is to be regretted that he spent so much of his time in England and so little on the continent. Even on the Continent he

did not devote sufficient time or attention to politicians industrial magnates and other people who really count in present day politics. There were many countries on the continent eagerly expecting a visit from him and where he would have received a most cordial reception. If he had desired, he could without difficulty, have come in touch with the most important individuals and organisations in Europe to the great benebit of India. But may be, that did not interest him so much. Outside India he had another role to play besides that of a politician and it is not always easy to play two roles in one person." *Ibid.*, 256.

9

स्वतंत्रता के राजदूत

राजदूत की भूमिका

सुभाष बोस यह मानते थे कि भारत से बाहर हर भारतीय भारत का गैर-सरकारी राजदूत है। सुभाष बोस मार्च, 1933 से मार्च, 1936 तक और फिर नंवबर, 1937 से जनवरी 1938 तक यूरोप में रहे थे। इस अवधि में उन्होंने यूरोप के विभिन्न देशों की यात्राएं की, इन देशों में भारतीय स्वतंत्रता के संबंध में प्रचार किया और वहां के बड़े-बड़े नेताओं से मिल कर उनके साथ वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित किए। भारत के एक प्रमुख राजनीतिक नेता के रूप में सुभाष बोस प्रतिष्ठित हो गए थे और वे जहां भी गए, उन्हें उचित सम्मान दिया गया तथा उनके विचारों को ध्यानपूर्वक सुना गया। अपने यूरोपीय प्रवास नें सुभाष बोस ने भारतीप स्वतंत्रता के राजदूत की भूमिका का निर्वाह किया।

यूरोप का नया मानचित्र

प्रथम महायुद्ध का यूरोपीय राष्ट्रों पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। विजयी और पराजित दोनों राष्ट्रों के सामने पुनर्निर्माण की विकट समस्याएं थीं। 1919 से 1939 तक के बीस वर्ष घोर सामाजिक और राजनीतिक अशांति के वर्ष थे। 1929 में सारा संसार आर्थिक अवसाद में डूब गया। इस काल की मुख्य घटनाएं तीन थीं: 1. साम्यवादी रूस का उदय, 2. इटली में फासिज़्म का उत्कर्ष, और 3. जर्मनी में नाजीवाद का उत्थान।

साम्यवादी रूस का उदय

1917 में रूस में बोल्शेविक क्रांति हुई। साम्यवादी नेता लेनिन ने रूस की सारी

राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था इस प्रकार संगठित की कि समस्त सत्ता साम्यवादी दल के हाथों में केंद्रित हो गई और वही सारे देश का तानाशाह बन गया। उसने श्रमिक संगठनों और कृषक संगठनों के माध्यम से समस्त देश के आर्थिक जीवन पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। साम्यवादी शासन की स्थापना और उसका पोषण आतंकवाद की नीति के आधार पर हुआ। किसी नागरिक को शासन की आलोचना करने का अधिकार नहीं था। गुप्तचर और भेदिए शासन के अनिवार्य अंग थे। जरा से शक पर लोगों को जेल में डाल दिया जाता था और उन्हें कठोर यातनाएं दी जाती थीं।

1924 में लेनिन की मृत्यु के बाद स्टालिन रूस का सर्वेसर्वा बना। उसने अपने विरोधियों को निर्दयतापूर्वक समाप्त किया। उसने अपने आपको लेनिन का सच्चा उत्तराधिकारी तथा उसके सिद्धांतों का व्याख्याता घोषित किया। स्टालिन ने पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा देश की अर्थ-व्यवस्था में सुधार लाने की कोशिश की।

इटली में फासिज़्म का उत्कर्ष

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद इटली में अव्यवस्था छा गई थी। वित्तीय और आर्थिक अभावों ने व्यापक असंतोष को जन्म दिया। कृषकों के उपद्रवों, फैक्ट्रियों की हड़तालों, साम्यवादियों के प्रदर्शनों और संसदीय परम्पराओं के उल्लंघनों ने साम्यवादी क्रांति की स्थिति पैदा कर दी थी। 1922 में मुसौलिनी ने अपनी काली कमीजों वाली सेना के साथ रोम को घेर लिया और शासन-सत्ता हथिया ली। उसने चर्च के साथ भी समझौता किया। मुसौलिनी ने फासिस्ट पार्टी और फासिस्ट अनुशासन के द्वारा इटली में नए जीवन का संचार किया। उसका कार्यक्रम उदारवादी न होकर अधिनायकवादी था और वह रोमन युग की याद दिलाता था। उसने संसदीय शासन तथा विरोधी दलों को समाप्त कर दिया, मज़दूरों की हड़तालें अवैध घोषित कर दीं और समाचार-पत्रों के ऊपर पाबंदियां लगा दी। 1930 के बाद मुसौलिनी ने अपनी विस्तारवादी आकांक्षाओं को व्यावहारिक रूप देना आरंभ किया।

जर्मनी में नाज़ीवाद का उत्थान

प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की पराजय हुई और उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इसके फलस्वरूप जर्मनी की मानहानि हुई। उसे अत्यंत अपमानजनक संधि करने के लिए विवश होना पड़ा। उसे युद्ध के लिए दोषी ठहराया गया। उसकी सैनिक शक्ति समाप्त कर दी गई। उसके कई प्रदेश छीन लिए गए। उसे युद्ध के हर्जाने की एक भारी रकम देने के लिए विवश किया गया। यह रकम अदा करना उसके वश में नहीं था। संधि की इन अपमानजनक शर्तों के कारण जर्मनी की राष्ट्रीय चेतना को भारी आघात पहुंचा। जर्मनी के लोगों में भारी गम और गुस्से की लहर दौड़ गई। 1919 में

1933 में विएना से एक वक्तव्य जारी कर गांधी जी के इस कदम की आलोचना की।[1]

पटेल बोस के व्यक्तित्व से प्रभावित हुए और उन्होंने बोस की प्रशंसा की।[2]

लंदन में तीसरा भारतीय राजनीतिक सम्मेलन

जून, 1933 को लंदन में तीसरा भारतीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। बोस गिरफ्तारी के डर से लंदन नहीं गए। उन्होंने अपना भाषण डाक से भेज दिया। बोस ने अपने इस भाषण में विश्व राजनीति के संदर्भ में भारतीय स्थिति का चित्रण किया था। वे सविनय अवज्ञा आंदोलन की समाप्ति से दुखी थे।[3] उन्होंने 1920 से 1933 तक के कांग्रेस आंदोलन की समीक्षा की और कहा कि हर मोड़ पर ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी को पराजित किया था। बोस ने एक अनुशासित अखिल भारतीय दल के निर्माण का विचार प्रस्तुत किया। इस दल का नाम साम्यवादी संघ हो सकता था और वह भारत की सर्वांगीण– सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक– स्वतंत्रता के लिए काम कर सकता था। बोस के इस भाषण में कई स्थलों पर मार्क्सवादी शब्दावली का प्रयोग किया गया था।

विट्ठलभाई पटेल की वसीयत

अक्तूबर, 1933 में जब विट्ठल भाई पटेल की मृत्यु हुई, सुभाष बोस उनके पास थे। पटेल अपनी वसीयत सुभाष के नाम कर गए थे। यह रकम विदेशों में भारत-संबधी प्रचार में खर्च की जानी थी। इस वसीयत को लेकर सुभाष का सरदार वल्लभ भाई पटेल से मुकदमा भी चला। सुभाष को विट्ठल भाई पटेल की वसीयत में से कुछ न मिला।

विएना का म्युनिसिपल शासन

सुभाष बोस ने विएना के म्युनिसिपल शासन का अध्ययन किया। उनका विएना के ऊपर एक पुस्तक लिखने का भी विचार बना था। लेकिन वे इसे कार्यरूप न दे सके।

यूरोपीय देशों की यात्राएं

1933 में बोस ने चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, जर्मनी, फ्रांस, रोम, मिलान और जिनेवा की यात्राएं कीं। मार्च, 1934 में वे जर्मनी, इटली, हंगरी, रुमानिया, तुर्की, बल्गेरिया और यूगोस्लाविया, गए। मई, 1934 के अंत में वे फिर विएना लौट आए और उन्होंने भारतीय राजनीति पर एक पुस्तक लिखी। वे कुछ समय एक प्रसिद्ध स्वास्थ्य-केंद्र कार्ल्सवाद में भी रहे। बोस ने प्राग में चेकोस्लोवाकिया के विदेश मंत्री डॉ० एडुअर्ड बेनेस तथा राष्ट्रपति मेसारीक से भेंट की और एक भारत-चेक संघ की स्थापना की। प्रख्यात भारतविद प्रोफेसर लेन्सी जो रवीन्द्रनाथ टैगोर के शांतिनिकेतन में रह चुके थे, कई वर्षो तक इस संघ का संचालन करते रहे थे।

बर्लिन में

प्राग से सुभाष बर्लिन गए। प्रथम विश्वयुद्ध के दिनों में भारतीय क्रांतिकारियों को जर्मनी में संरक्षण मिला था। जर्मनी में सुभाष ने नाज़ी सरकार के कई अधिकारियों से मुलाकात की । जर्मनी में हिटलर का अभ्युदय हो चुका था और उसने अपनी *मीन कैम्फ़* नामक आत्मकथा में भारतीय स्वतंत्रता-सेनानियों का उपहास किया था। नाजी सरकार ने ए० सी० एन० नम्बियर नामक एक भारतीय पत्रकार के साथ दुर्व्यवहार किया था। सुभाष के एक जर्मन मित्र लोथर फ्रैंक ने उनकी नाज़ी सरकार के कुछ अधिकारियों से भेंट कराई थी, लेकिन इसका कोई परिणाम नहीं निकला। जर्मन सरकार के भारत-विरोधी दृष्टिकोण के बावजूद सुभाष बोस ने यूरोप स्थित अन्य भारतीयों की भांति जर्मनी से संबंध तोड़ने और जर्मन माल के बहिष्कार की सिफारिश नहीं की। उनका विचार था कि जर्मनी इंगलैंड का शत्रु है और भविष्य में वह भारत का मित्र बन सकता है।

मुसौलिनी से भेंट

सुभाष का कुछ ऐसा ही विचार फासिस्ट इटली के अधिनायक मुसौलिनी के बारे में था। 1926 में कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने मुसौलिनी से भेंट की थी और उसकी सराहना की थी। दूसरी गोलमेज़ परिषद से भारत वापस लौटते समय गांधी जी भी मुसौलिनी से मिले थे।[4] एक अन्य बंगाली क्रांतिकारी तारकनाथ दास ने भी मुसौलिनी से मुलाकात की थी और अपने एक लेख *न्यू इटैली एंड ग्रेटर इंडिया* मे मुसौलिनी की सफलताओं को सराहा था।[5] बोस की मुसौलिनी से मुलाकात मैत्रीपूर्ण वातावरण में हुई। मुसौलिनी ने बोस के प्रति समानता का व्यवहार किया।

भारत की सही तस्वीर

अपने यूरोप-प्रवास में बोस को अनुभव हुआ कि यूरोपीयों की भारत के प्रति सहानुभूति है, लेकिन उन्हें भारत के बारे में बहुत कम जानकारी है। भारतीय नेताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे विदेशों मे भारत की सही तस्वीर पेश करें। बोस की सलाह थी कि भारतीयों को अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेना चाहिए और विदेशी पत्र-पत्रिकाओं में भारत के बारे में अनुकूल लेख और समाचार प्रकाशित करने चाहिए। बोस विदेशों में जहां-जहां गए, वहां-वहां उन्होंने प्रवासी भारतीयों से संपर्क स्थापित किया।

एमील शेंकील

जून, 1934 में सुभाष बोस की विएना-स्थित एक भारतीय मित्र के माध्यम से एमील शेंकील नामक महिला से मुलाकात हुई। एमील शेंकील का 26 दिसम्बर, 1910

को जन्म हुआ था और उन्हें साधारण शिक्षा प्राप्त हुई थी। वे टाइपिंग और शार्टहैंड जानती थीं और उन्हें अंग्रेजी का भी ज्ञान था। उन्होंने भारतीय राजनीति विषयक पुस्तक लिखने में सुभाष बोस की सहायता की। यह पुस्तक *इंडियन स्ट्रगल 1920-1934* नाम से प्रकाशित हुई।

इंडियन स्ट्रगल

पुस्तक मे सुभाष बोस ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के बारे में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। पुस्तक में गांधी जी की निंदा और सराहना दोनों की गई है। बोस का विचार था कि गांधी जी मुख्यरूप से सुधारवादी नेता हैं और उन्होंने भारतीय जनता की आंतरिक दुर्बलताओं से लाभ उठा कर अपनी स्थिति सुदृढ़ की है। सुभाष अपने आपको विवेक, विज्ञान तथा आधुनिक मूल्यों का पैरोकार समझते थे। पुस्तक में बोस ने गांधीजी की अनेक गलतियों को रेखांकित किया है। उदाहरण के लिए बोस का कहना है कि गांधी जी दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन में बिना किसी तैयारी के गए थे। उनकी गलतियों का मूल कारण यह था कि वे राजनीतिक नेता और विश्व शिक्षक दोनों की भूमिका निभाना चाहते थे। बोस का निष्कर्ष था कि भारत को एक शक्तिशाली, अनुशासित और उत्साही नेता की आवश्यकता है। वे हिटलर, मुसौलिनी और तुर्की के मुस्तफा कमाल पाशा को ऐसा ही मानते थे।

जब बोस ने *इंडियन स्ट्रगल* की पांडुलिपि पुरी कर ली, तब उन्होंने चाहा कि उसकी प्रस्तावना कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति लिख दे। उसके लिए उन्होंने बर्नार्ड शा, रोम्यां रोलां, एच० जी० वेल्स और रवीन्द्रनाथ टैगोर के नामों पर विचार किया था। पर इनमें से किसी ने पुस्तक की प्रस्तावना नहीं लिखी और पुस्तक बिना किसी प्रस्तावना के ही प्रकाशित हो गई।

पिता की मृत्यु

नवंबर, 1934 में सुभाष बोस को अपने पिता की गंभीर बीमारी का समाचार मिला। वे विमान द्वारा तत्काल कलकत्ता आए पर उनके आने से पहले ही उनके पिता की मृत्यु हो गई। सुभाष बोस ने 1931 के बाद से अपने पिता के दर्शन नहीं किए थे। सुभाष जब तक कलकत्ते में रहे, उन्हें घर पर नज़रबंद रखा गया। जनवरी, 1935 में वे यूरोप वापस लौट गए। रोम में उन्होंने मुसौलिनी से दुबारा भेंट की और उन्हें अपनी पुस्तक *इंडियन स्ट्रगल* की एक प्रति भेंट की। पुस्तक की भारत में बिक्री निषिद्ध कर दी गई। इंगलैंड के समाचार-पत्रों में पुस्तक की प्रशंसात्मक समीक्षाएं प्रकाशित हुई।

रोम से बोस जिनेवा गए। 22 मार्च, 1935 को उन्होंने विट्ठलभाई पटेल की

श्रद्धांजलि सभा में भाग लिया और उनके अधूरे काम को जारी रखने का संकल्प दुहराया।

रोमां रोलां से भेंट

सुभाष रोमां रोला के प्रशंसक थे। रोलां ने महात्मा गांधी, स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद की जीवनियां लिखी थीं। रोलां ने बोस की पुस्तक के बारे में अनुकूल राय व्यक्त की थी। बोस ने रोलां से अपनी मुलाकात का विवरण दिया है।[6]

24 अप्रैल, 1935 को विएना में बोस के गाल-ब्लैडर का आपरेशन हुआ। उनके गाल ब्लैडर में पथरी निकली।

बोस अस्पताल से तो जल्दी ही रिहा हो गए लेकिन वे कई महीनों तक पूरी तरह स्वस्थ नहीं हो सके।

कमला नेहरू से भेंट

जून, 1935 में पंडित जवाहरलाल नेहरू की पत्नी कमला नेहरू इलाज के लिए यूरोप आई। बोस ने कमला नेहरू से और फिर बाद में जवाहरलाल नेहरू से भेंट की। बोस ने नेहरू के प्रति आदर का भाव प्रकट किया।

बोस को अपने यूरोपीय प्रवास में भी भारत का बराबर ध्यान बना रहा। वे अपने राजनीतिक मित्रो से पत्र-व्यवहार करते रहे। उन्होंने टाटा आयरन और स्टील वर्क्स के मजदूरों की समस्याओं से अपने आपको अवगत रखा।

डी वैलेरा से भेंट

बोस ने आयरलैंड में वहां के राष्ट्रपति डी वैलेरा से तीन मुलाकातें कीं। आयरलैंड में बोस का एक महान देश के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में स्वागत हुआ। आयरलैंड से बोस फ्रांस गए और उन्होंने कुछ दिन पेरिस में गुजारे। यहां उन्होंने आंद्रे गाइड[8] और आंद्रे मार्ला से भेंट की। इस बीच वे जवाहरलाल नेहरू से भी जो यूरोप में अपनी पत्नी कमला नेहरू की बीमारी का इलाज करा रहे थे– कई बार मिले। जवाहरलाल नेहरू के साथ उनका पत्र-व्यवहार भी बराबर चलता रहा।

महायुद्ध की आशंका

यूरोप में रहते हुए सुभाष बोस को यह लगने लगा था कि शीघ्र ही महायुद्ध होगा। उनका अनुमान था कि इस महायुद्ध में ब्रिटेन की स्थिति विषम होगी। वे भारतीयो को इस अवसर से लाभ उठाने के लिए तैयार करना चाहते थे।

भारत-वापसी

बोस यूरोप में रहते हुए तंग आ चुके थे। वे शीघ्र ही स्वदेश वापस लौटने के लिए उत्सुक थे। वे 27 मार्च, 1936 को इटली से चले और 8 अप्रैल, 1936 को बम्बई पहुंच गए। बम्बई पहुंचते ही उन्हें तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें कुछ दिनों बम्बई जेल में रखा गया, और फिर पूना के निकट यरवदा जेल में। मई, 1936 में सुभाष को कुरसिओंग में शरत के घर में नज़रबंद कर के रखा गया। 1936 के अंत तक वे वहीं रहे। लेकिन तभी उनका स्वास्थ्य फिर गिरने लगा और 17 दिसम्बर, 1936 को उन्हें कलकत्ता मेडिकल कालिज अस्पताल में ले जाया गया। 17 मार्च, 1937 को उन्हें जेल से छोड़ दिया गया।

सुभाष दिवस

जेल से छूटने के बाद सुभाष ने स्वास्थ्य-लाभ की कोशिश की और अपने मित्र दिलीप कुमार राय से भेंट की। 6 अप्रैल, 1937 को सारे बंगाल में सुभाष दिवस मनाया गया। इस अवसर पर कलकत्ते के श्रद्धानंद पार्क में एक विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें सुभाष बोस का अभिनंदन किया गया ।

यूरोप की दूसरी यात्रा

सुभाष बोस कुछ महीने डलहौज़ी में अपने मित्र धर्मवीर के मेहमान बन कर रहे। उनके स्वास्थ्य में थोड़ा-सा सुधार हुआ, लेकिन पूरी तरह नहीं। गांधी जी के आग्रह पर 18 नवंबर, 1937 को उन्होंने फिर यूरोप के लिए प्रस्थान किया। यूरोप में वे बाडगास्टीन नामक पर्वतीय नगर में रहे। यहां उन्होंने एमील शेंकील को भी बुला लिया और *इंडियन पिलग्रिम* नाम से अपनी आत्मकथा लिखी।

एमील शेंकील

बोस के एमील शेंकील से 1934 से 1943 तक संबंध रहे थे। कहा जाता है 1937 में उन्होंने हिंदू रीति से चुपचाप विवाह कर लिया था। 29 नवंबर, 1942 को विएना में उनके एक पुत्री ने जन्म लिया था जिसका नाम अनिता रखा गया। नेताजी रिसर्च ब्यूरो द्वारा प्रकाशित *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स* के सातवें खंड में शेंकील और बोस का पत्र-व्यवहार संकलित है। सुभाषचन्द्र बोस ने 8 फरवरी, 1943 को जर्मनी से सुदूर पूर्व जाने से पहले बंगला में अपने बड़े भाई शरत के नाम हाथ से एक पत्र लिख कर शेंकील के पास छोड़ दिया था कि शेंकील मेरी पत्नी है और अनिता मेरी पुत्री। यदि मुझे कुछ हो जाए, तो आप इनका ध्यान रखिएगा। सुभाष बोस की 19 अगस्त, 1945 को विमान दुर्घटना में मृत्यु हो गई। युद्ध के बाद एमील शेंकील अपनी पत्नी के साथ विएना आ गई। उन्होंने सुभाष के पत्र की फोटो-प्रति शरत के पास भेज दी थी।

सितम्बर, 1948 में शरत अपने परिवार के साथ यूरोप गए और उन्होंने विएना जाकर एमील शेंकील तथा अनिता बोस से मुलाकात की। शरत ने शेकील से आग्रह किया था कि वे कलकत्ता आकर उनके साथ रहें। लेकिन शेंकील इसके लिए तैयार नहीं हुई।

इंगलैंड की यात्रा

1937 के अंत में सुभाष बोस इंगलैंड गए। वहां लोगों को यह समाचार मिल गया था कि वे कांग्रेस के भावी अध्यक्ष हैं। उनका भव्य स्वागत हुआ। उन्होंने राष्ट्रीय सरकार के नेताओं, मजदूर दल के नेताओं, वामपंथी नेताओं तथा भारतीय समाज के नेताओं से भेंट की और उन्हें अपने विचारों से अवगत कराया। बोस ने अपने भाषणों में भारत के लिए समाजवादी व्यवस्था का समर्थन किया।

भारत का राजनीतिक घटना-चक्र

सुभाष बोस 1933 से 1938 तक भारत की सक्रिय राजनीति से अलग रहे थे। उन्होने कई साल यूरोप में बिताए और कुछ समय भारत की जेलों में। इस काल की मुख्य घटनाएं थीं, सांप्रदायिक निर्णय, तीसरा गोलमेज़ सम्मेलन, भारतीय शासन अधिनियम, 1935 की स्वीकृति। 1935 के अधिनियम के अधीन निर्वाचन और प्रांतीय स्वायत्तता पर आचरण। सुभाष बोस इन घटनाओं में सीधा योग नहीं दे सके थे, पर इन पर उन्होंने अपनी प्रतिक्रियाएं अवश्य व्यक्त कीं।

सांप्रदायिक निर्णय

गोलमेज़ सम्मेलन के पहले दो अधिवेशन सांप्रदायिक समस्या को सुलझाने में असमर्थ रहे थे। दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन में ब्रिटिश प्रधानमंत्री मैकडानल्ड ने कह दिया था कि सांप्रदायिक समस्या का समाधान मूलत : तो संबद्ध जातियों के ऊपर ही निर्भर है लेकिन अगर वे कोई स्वीकृत समाधान नहीं निकाल पातीं तो सरकार अपनी ओर से कोई समाधान प्रस्तुत करेगी। चूंकि संबद्ध वर्ग सांप्रदायिक समस्या का कोई सर्वसम्मत हल नहीं निकाल सके, अतः ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने 8 अगस्त, 1932 को भारत की सांप्रदायिक समस्या के संबंध में अपना निर्णय प्रकाशित कर दिया। लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि यदि ब्रिटिश सरकार को विश्वास हो जाए कि विभिन्न संप्रदायों को कोई दूसरी योजना स्वीकार है तो वह संसद से सिफारिश करेगी कि सांप्रदायिक निर्णय के बदले में नई योजना स्वीकार कर ली जाए।

सांप्रदायिक निर्णय ने विशेष हितों और अल्पसंख्यक वर्गों के लिए और पंजाब तथा बंगाल में मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन-पद्धति को पहले की तरह कायम रखा। इस योजना का सबसे घातक पहलू यह था कि इसमें दलित वर्गों को एक

विशिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग मान लिया गया था और उन्हें पृथक् निर्वाचन-पद्धति द्वारा अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया था। इसके अलावा दलित वर्गों को साधारण निर्वाचन क्षेत्रों में एक अतिरिक्त मत दिया गया था। यह ब्रिटिश सरकार की फूट डालो और राज्य करो नीति का एक नया चेहरा था।

सांप्रदायिक निर्णय का दलित वर्गों से संबंध रखने वाला उपबंध महात्मा गांधी के लिए असह्य सिद्ध हुआ। जिस समय निर्णय प्रकाशित हुआ वे जेल में थे। उन्हें लगा कि यह निर्णय हिन्दू जाति को विघटित करने की चेष्टा है। उन्होंने इस निर्णय को रद्द करने के लिए आमरण करने का निश्चय किया। उन्होंने 20 अगस्त, 1932 को अपना ऐतिहासिक उपवास आरम्भ किया। गांधी जी के उपवास ने हिन्दुओं के मन को झकझोर दिया। पंडित मदनमोहन मालवीय, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद और एम० एस० राजा के प्रयत्नों से एक समझौता-सूत्र तैयार किया गया जिसे महात्मा गांधी और दलितों के सर्वमान्य नेता डॉ० बी० आर० अम्बेडकर ने स्वीकार कर लिया। गांधी जी ने दलितों अथवा अछूतों के लिए हरिजन' शब्द इसी समय गढ़ा। गांधी और अम्बेडकर के समझौते को पूना समझौता कहा गया। इस समझौते के अनुसार सांप्रदायिक निर्णय में दलितों के लिए जितने स्थान रखे गए थे, उससे भी अधिक स्थान दिये गए। लेकिन इन स्थानों के लिए निर्वाचन दो स्तरों पर होना निश्चित हुआ। वे स्तर थे- प्रारम्भिक निर्वाचन और अंतिम निर्वाचन। प्रारम्भिक निर्वाचन में दलितों को पृथक निर्वाचक-मंडल के आधार पर प्रत्येक स्थान के लिए चार उम्मीदवार चुनने थे। लेकिन अंतिम निर्वाचन में दलितों तथा सवर्ण हिंदुओं को सम्मिलित रूप से मतदान करना था। इसके अलावा उन साधारण स्थानों के लिए जो हरिजनों के लिए सुरक्षित नहीं रखे गए थे, हरिजनों को निर्वाचन में एक अतिरिक्त मत दिया गया। यह समझौता 26 सितम्बर, 1926 को स्वीकार हो गया और उसी दिन महात्मा गांधी ने अपना उपवास तोड़ दिया। पूना समझौते की शर्तें भारतीय शासन-अधिनियम, 1935 में शामिल कर ली गई।

तीसरा गोलमेज़ सम्मेलन

गोलमेज़ सम्मेलन का तीसरा और अंतिम अधिवेशन नवम्बर-दिसम्बर, 1932 में हुआ। ब्रिटेन के मज़दूर दल ने सम्मेलन को सहयोग नहीं दिया। भारत का प्रतिनिधित्व ब्रिटिश सरकार के चमचों ने किया। भारत के नए संविधान के बारे में मोटी-मोटी बातें पहले ही तय हो गई थी। सम्मेलन का काम उन्हें फिर से पुष्ट करना था।

मार्च, 1933 में ब्रिटिश सरकार ने श्वेत-पत्र प्रकाशित किया। ब्रिटिश संसद के दोनों सदनों- हाउस आफ कामन्स तथा हाउस आफ लार्ड्स- की एक प्रवर समिति ने श्वेत पत्र की योजना का परीक्षण किया और थोड़े से संशोधनों के साथ उस पर अपनी स्वीकृति दे दी। संयुक्त प्रवर समिति ने वैधानिक योजना को जो अंतिम रूप दिया था, वह अगस्त 1935 में भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के नाम से पास हो गया।

भारतीय शासन–अधिनियम, 1935

भारतीय शासन अधिनियम, 1935 का भारत के राष्ट्रवादी लोकमत ने तीव्र विरोध किया और उसे एक प्रतिगामी कानून बताया। इस अधिनियम ने वास्तविक सत्ता भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को नहीं सौंपी बल्कि ब्रिटिश अधिकारियों के ही हाथों में रहने दी। उसने केंद्र में द्वैध शासन–प्रणाली की स्थापना कर आंशिक उत्तरदायी शासन का सूत्रपात किया। अधिनियम ने एक अखिल भारतीय संघ की स्थापना का प्रस्ताव किया था। प्रांतों में द्वैध शासन–प्रणाली का अंत हो गया और प्रांतीय स्वायत्तता की स्थापना की गई। लेकिन प्रांतीय स्वायत्तता के ऊपर कई प्रतिबंध लगे हुए थे। संघीय सिद्धांत के अनुरूप अधिनियम ने तीन सूचियों में केंद्र और प्रांतों के बीच शक्तियों का विशद रूप से वितरण किया। अधिनियम में एक संघीय न्यायालय की स्थापना का भी प्रावधान था।

सुभाष बोस ने भारतीय शासन अधिनियम, 1935 की कठोर आलोचना की। उनका कहना था कि यह अधिनियम स्वशासन के लिए नहीं था बल्कि देशी नरेशों तथा ब्रिटिश समर्थक प्रतिक्रियावादी तत्त्वों की सहायता से नई परिस्थितियों में ब्रिटिश शासन को बनाए रखने के लिए था।

सरकार ने प्रस्तावित संघ की स्थापना नहीं की। 1935 के अधिनियम का प्रांतीय भाग 1 अप्रैल, 1937 को कार्यरूप में परिणत किया गया।

प्रांतीय स्वायत्तता पर आचरण

भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के अधीन फरवरी, 1937 में साधारण निर्वाचन हुए। पांच प्रांतों (मद्रास, संयुक्त प्रांत, बिहार, मध्य प्रांत और उड़ीसा) में कांग्रेस ने पूर्ण बहुमत प्राप्त किया। तीन प्रांतों (बम्बई, आसाम और उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत) में वह सबसे बड़े दलों के रूप में उभरी।

पद ग्रहण के प्रश्न पर कुछ मतभेद था। जिन प्रांतों में कांग्रेस का बहुमत था वहां उसने उस समय तक मंत्रिमंडल बनाना अस्वीकार कर दिया जब तक कि गवर्नर यह आश्वासन न दे दें कि वे अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग मंत्रियों की यंत्रणा पर करेंगे। गर्वनरो ने यह वचन नहीं दिया। इस पर कांग्रेस के नेता प्रांतों में मंत्रिमंडल बनाने के लिए तैयार नहीं हुए। सरकार ने इन प्रांतों में अंतरिम मंत्रिमंडलों का निर्माण किया। जुलाई, 1937 में कांग्रेस तथा गवर्नरों के बीच संपन्न एक समझौते के फलस्वरूप यह गतिरोध दूर हो गया। फलत. कांग्रेस ने शुरु में पांच प्रांतों में और बाद में आठ प्रांतों में शासन–सूत्र संभाल लिया।

कांग्रेसी प्रांतों में प्रांतीय स्वायत्तता को पर्याप्त सफलता मिली। गवर्नर वैधानिक शासक तो नहीं बने लेकिन उन्होने अपने विशेष शक्तियों का प्रयोग बहुत कम अवसरों

पर किया। गैर-कांग्रेसी प्रांतों- पंजाब, सिंध और बंगाल- में स्थिति दूसरी रही। इन प्रांतों में गवर्नर दिन-प्रति-दिन के शासन में हस्तक्षेप करते रहे।

सारांश

सुभाष बोस यह मानते थे कि भारत से बाहर हर भारतीय भारत का गैर-सरकारी राजदूत है। वे 1933 से 1938 तक यूरोप रहे थे। इस अवधि में उन्होंने यूरोप के विभिन्न देशों में भारत के बारे में प्रचार किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यूरोप में तीन प्रमुख घटनाएं हुई थीं। रूस में साम्यवादी क्रांति हुई थी। स्टालिन के नेतृत्व में वहां अधिनायकवादी शासन ने जन्म लिया। इटली में मुसौलिनी के नेतृत्व में फासिस्ट सरकार की स्थापना हुई। जर्मनी में नाज़ीवाद का उत्थान हुआ।

सुभाष ने यूरोप में विएना को अपना मुख्यालय बनाया।

स्विट्ज़रलैंड में सुभाषचन्द्र बोस की केंद्रीय विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल से भेंट हुई जो स्वास्थ्य लाभ के लिए वहां गए हुए थे। विट्ठलभाई पटेल ने सुभाषचन्द्र बोस का यूरोप के अनेक राजनीतिज्ञों तथा भारत-समर्थकों से परिचय कराया।

बोस और पटेल ने गांधी जी द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस लिए जाने पर मई, 1933 में अपना विरोध प्रकट किया।

जून, 1933 में लंदन में तीसरा भारतीय राजनीतिक सम्मेलन हुआ। बोस ने इसमें स्वयं भाग नही लिया पर अपना आलेख भेज दिया जो वहां पढ़ा गया। इस आलेख़ में सुभाष बोस ने विश्व राजनीति के संदर्भ में भारतीय स्थिति क़ा विवेचन किया था। बोस का निष्कर्ष था कि ब्रिटिश सरकार ने हर मोड़ पर गांधी जी और कांग्रेस को मात दी है।

विट्ठलभाई पटेल अपनी मृत्यु से पहले अपनी वसीयत सुभाष बोस के नाम कर गए थे। उनकी हिदायत थी कि यह राशि विदेशों में भारत संबंधी प्रचार पर खर्च की जाए। लेकिन सुभाप को इस वसीयत में से कुछ भी धनराशि नहीं मिली।

सुभाष बोस ने अपने विएना-प्रवास में विएना के म्युनिसिपल शासन का विशेष रूप से अध्ययन किया। बोस ने अपने यूरोप-प्रवास में चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड, जर्मनी, फ्रांस, रोम, मिलान, जिनेवा, हंगरी, रुमानिया, तुर्की, बल्गेरिया, और यूगोस्लाविया आदि देशों की यात्राएं कीं। वहां के राजनीतिक और सांस्कृतिक नेताओं से मुलाकातें कीं और अपने व्याख्यानों, व्यक्तिगत संपर्को तथा लेखों के माध्यम से यूरोप के सामने भारत की सही तस्वीर पेश करने की कोशिश की। इन यात्राओ में उन्होंने आयरलैंड के डी वैलेरा, इटली के मुसौलिनी, फ्रांस के आंद्रे गाइड और आंद्रे मार्ला से भेंट की।

वे जिनेवा में भारत के हितैषी रोमा रोलां से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए।

सुभाष ने जर्मनी की कई बार यात्रा की लेकिन वे नाज़ी सरकार के किसी प्रमुख अधिकारी से नहीं मिल सके। यद्यपि सुभाष को नाज़ी सरकार की बहुत सी बातें पंसद नही थीं लेकिन उनका विचार था कि जर्मनी इंगलैंड का शत्रु है और वह भविष्य में भारत के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसलिए, उन्होंने नाज़ी सरकार के प्रति विरोध का दृष्टिकोण नहीं अपनाया।

बोस ने 1934 में अपनी पुस्तक *इंडियन स्ट्रगल 1920-1934* की रचना की। यह पुस्तक लिखने में उन्हें एमील शेंकील नामक आस्ट्रियन महिला से सहायता मिली। बाद में उन्होंने इस महिला से विवाह कर लिया और 1942 मे उनके एक पुत्री ने जन्म लिया। पुत्री का नाम अनिता बोस रखा गया।

नवंबर, 1934 में सुभाष बोस अपने पिता की मृत्यु पर भारत आए। जनवरी, 1935 में वे यूरोप वापस लौट गए।

24 अप्रैल, 1935 को विएना मे सुभाष बोस के गाल-ब्लैडर का आपरेशन हुआ। जून, 1935 में पंडित जवाहरलाल नेहरू की पत्नी कमला नेहरू इलाज के लिए यूरोप आई। बोस ने कमला नेहरू से और फिर बाद में जवाहरलाल नेहरू से भेंट की।

अप्रैल, 1936 मे बोस भारत वापस आ गए। बम्बई पहुंचते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। मार्च, 1937 में उन्हें जेल से मुक्त कर दिया गया। नवंबर, 1937 में उन्होने इलाज के लिए फिर यूरोप के लिए प्रस्थान किया। इस यूरोप-प्रवास में उन्होंने *इंडियन पिलग्रिम* नाम से अपनी आत्मकथा लिखी।

1937 के अंत में बोस इंगलैंड गए।

बोस 1933 से 1938 तक भारत की सक्रिय राजनीति से अलग रहे थे। उनकी अनुपस्थिति में भारत की मुख्य राजनीतिक घटनाएं थी- सांप्रदायिक निर्णय, तीसरा गोलमेज़ सम्मेलन, भारतीय शासन अधिनियम, 1935 की स्वीकृति, 1935 के अधिनियम के अधीन निर्वाचन, और प्रांतीय स्वायत्तता पर आचरण।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. "We are clearly of opinion that as a political leader Mahatma Gandhi has failed. The time has therefore come for a radical reorganisation of the Congress on a new principle and with a new method for bringing about this reorganisation a change of leadership is necessary... If the Congress as a whole can undergo this transformation it would be the best course. Failing that a new party will have to be formed within the Congress, composed of all radical elements. Non-cooperation can not be given up but the from of Non-cooperation will have to be changed with a more militant one and the fight for

freedom to be wayed on all fronts." Quoted by Leonard A. Gordon, *Brothers Against the Raj: A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose,* p.271.

2. "In him I see a great fighter with an incomparable determination to carry on India's struggle without any kind of compromise. Even at this early age he has all the merits of a great leader, and his statesmanship and diplomacy are something which I have not seen in any other young man in India." Vithalbhai Patel, Quoted by Leonard A. Gordon, *Ibid.*

3. "We had been engaged in a non-violent war with the British Government— for the attainment of our political freedom. But to day our condition is analogous to that of an army that has suddenly surrendered unconditionally to the enemy not because the nation demanded it...either because the Commander-in-Chief was exhausted as a result of repeated fasting or because his mind and judgement were clouded owing to subjective causes which it is impossible for an outsider." Subhash Chandra Bose, Quoted by Leonard A. Gordon, *Ibid.* p.272.

4. गांधी जी जब दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन से भाग लेने के बाद लौट रहे थे, तब उन्होंने मुसौलिनी से भेंट की थी। गांधीजी ने मुसौलिनी से अपनी भेंट के बारे में रोमा रोलां को लिखा था :

   "Mussolini is a riddle to me. Many of his reforms attract me. He seems to have done much for the peasant class. I admit an iron hand is there. But as violence is the basis of Western society, Mussolini's reforms deserve an impartial study. His care of the poor, his opposition to super-urbanization, his efforts to bring about coordination between capital and labour, seem to me to demand special attention." Mahatma Gandhi, Quoted by Leonard A. Gordon, *Ibid,* p. 277.

5. "New Italy, under the leadership of Signor Mussoline, is roused to its very depths of national consciousness. It feels that it has a mission of introducing a higher type of civilization." Taraknath Dass, Quoted in *Ibid.*

6. बातचीत के दौरान रोमा रोलां ने सुभाषचन्द्र बोस से कहा था :

   "I am not interested choosing between two political parties or between two generations. What is of interest and value to me is a higher question... what really counts is the great cause that transcends them, the cause of the workers of the world...if as a result of unfortunate circumstances Gandhi...should be in conflict with the cause of the workers, and with their necessary evolution to-

wards a socialistic organisation forever will I side with the oppressed workers..." Romain Rolland, Quoted by Leonard A. Gordon, *Ibid* p. 295.

7. आयरलैंड के महान राष्ट्रीय नेता (1882-1975)। वे 1932-48, 1951-54 और 1957-59 के बीच आयरलैंड के प्रधानमंत्री और 1959-73 के बीच आयरलैंड के राष्ट्रपति रहे थे। वे आयरलैंड की *सिन-फिन पार्टी* (1917-26) और *फिएना फेल पार्टी* के नेता थे।
8. आंद्रे गाइड (1869-1951)। फ्रांस के साहित्यकार और चितक। उन्हें 1947 में साहित्य के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।
9. आंद्रे मार्लो (1901-1976)। फ्रांस के साहित्यकार और विचारक। द्वितीय विश्वयुद्ध में उन्होने चार्ल्स दगाल के प्रतिरोध आंदोलन का समर्थन किया था। वे 1968-69 में फ्रांस के संस्कृति मंत्री थे।

10

कांग्रेस का अध्यक्ष-पद

अध्यक्ष निर्वाचित

18 जनवरी, 1938 को कांग्रेस के महामंत्री आचार्य जे० बी० कृपलानी ने घोषणा की कि सुभाष बोस कांग्रेस के इक्यावनवें अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित किए गए हैं। यह अधिवेशन गुजरात में हरिपुरा में होगा। इस समय सुभाष इंगलैंड में थे। आचार्य कृपलानी ने तार द्वारा सुभाष को इस समाचार की सूचना दी।[1] बोस यह सूचना पाते ही 24 जनवरी, 1938 को कलकत्ता पहुंच गए।[2]

राजनीतिक दृष्टि से परिपक्व

जिस समय सुभाष बोस कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष बने, उनकी आयु 41 वर्ष की थी। वे राजनीतिक दृष्टि से पूरी तरह परिपक्व थे और उनका अपना समग्र राजनीतिक दर्शन तथा कार्यक्रम तैयार था।

हरिपुरा कांग्रेस

सुभाष बोस 11 फरवरी, 1938 को अपने परिवार के लोगों के साथ हरिपुरा के लिए चल पड़े। सरदार पटेल की देखरेख में कांग्रेस अधिवेशन के लिए एक अस्थायी भव्य नगर का निर्माण किया गया। इस नगर का नाम विट्ठल नगर रखा गया।[3] विट्ठलभाई पटेल सरदार वल्लभ भाई पटेल के बड़े भाई थे।

सुभाष बोस बारदोली तक विशेष ट्रेन में आए। वहां उनका सरदार पटेल ने स्वागत किया। इसके बाद वे कार द्वारा हरिपुरा गए। ग्रामवासियों ने स्थान-स्थान पर उनका स्वागत किया। शहर में उनकी सवारी धूम-धाम से निकली। उनके रथ को 51 बैल खींच रहे थे।[4]

हरिपुरा कांग्रेस में सुभाष बोस ने अध्यक्ष-पद से जो भाषण दिया, वह उनके जीवन का सबसे लम्बा भाषण है। इस भाषण में उनका सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दर्शन आ जाता है।[5]

भाषण के आरंभ में ही सुभाष बोस ने जवाहरलाल नेहरू की माता जी श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू, वैज्ञानिक आचार्य जगदीश चन्द्र बसु, और साहित्यकार डॉ० शरत चन्द्र चटर्जी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। सुभाष बोस ने देश के उन अनेक शहीदों को भी याद किया जिन्होंने मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की बलि दी थी। वे शहीद थे- जतीन दास, सरदार महावीर सिंह, रामकृष्ण रामदास, मोहित मोहन मैत्र, हरेन्द्र मुंशी आदि।

साम्राज्यों का उत्थान-पतन

सुभाष बोस ने अपने भाषण में साम्राज्यों के उत्थान-पतन का उल्लेख किया। रोमन साम्राज्य, तुर्की साम्राज्य और आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य पश्चिम के महान साम्राज्य थे लेकिन वे धूल-धूसरित हो गए। भारत में मौर्य, गुप्त और मुगल साम्राज्य धूल में मिल गए। इतिहास के इन वस्तुपरक तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्य का भी एक दिन विनाश होगा। यदि वह इस विनाश से बचना चाहता है तो यह जरूरी है कि वह स्वतंत्र राष्ट्रों का एक संघ बन जाए। रूस में 1917 मे जार शाही समाप्त हो गई और वहां उसके स्थान पर सोवियत समाजवादी गणराज्य संघ का उदय हुआ। अंग्रेज रूसी इतिहास से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।[6]

उपनिवेशवाद और समाजवाद

सुभाष बोस ने उपनिवेशवाद और समाजवाद के बीच पाए जाने वाले संबंध का विवेचन किया। उन्होंने कहा कि जब तक इंगलैंड के नियंत्रण में उपनिवेश हैं, इंगलैंड में समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती। इंगलैंड की प्रतिक्रियावादी ताकतों को उपनिवेशों का शोषण करने से शक्ति मिलती है।[7]

'फूट डालो और राज्य करो' नीति

हर साम्राज्य 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति पर आधारित होता हे। ब्रिटिश सरकार ने इस नीति को कला के रूप में विकसित किया है। इंगलैंड ने आयरलैंड को सत्ता देने से पहले अलस्टर को शेष आयरलैंड से अलग कर दिया। इसी तरह ब्रिटेन फिलस्तीनियों तथा यहूदियों के बीच में फूट डालने की कोशिश कर रहा है। भारतीय शासन अधिनियम, 1935 में भी ब्रिटिश सरकार ने विभाजन के बीज बो दिए हैं।[8] इस अधिनियम में एक ओर तो देशी राज्यों के स्वेच्छाचारी नरेश हैं और दूसरी ओर ब्रिटिश भारत के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। ये दोनों परस्पर विरोधी तत्व आपस में

मिल कर काम नहीं कर सकते।

ब्रिटिश साम्राज्य पर संकटों के बादल

इस समय ब्रिटिश साम्राज्य चारों ओर खतरों से घिरा हुआ है। उसके सामने पश्चिम में आयरलैंड की समस्या है और पूर्व में भारत की। मध्य पूर्व में फिलस्तीन, मिश्र और ईराक की समस्या है। साम्राज्य से बाहर भूमध्य सागर में इटली दबाव डाल रहा है। सुदूर पूर्व में जापान का दबाव है। इटली और जापान दोनों ही सैन्यवादी, आक्रामक तथा साम्राज्यवादी देश हैं। सबसे ऊपर सोवियत रूस जैसा शक्तिशाली देश है। ब्रिटिश साम्राज्य इन सारे तनावों को अधिक समय तक नहीं सह सकता।[9]

इंगलैंड की सामूहिक शक्ति

आज इंगलैंड अपने आपको "समुद्र का स्वामी" नहीं कह सकता। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदियों में इंगलैंड के उत्थान का कारण उसकी सामूहिक शक्ति थी। बीसवीं सदी में उसके पतन का कारण होगा– उसके वायुबल में कमी।[10]

भारत की स्थिति

अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों की इस क्रीड़ा में भारत की स्थिति पहले की अपेक्षा कहीं अच्छी है। हमारे देश की आबादी 35 करोड़ है। हमारा देश विशाल है। यदि हम एक होकर ब्रिटिश साम्राज्य का सामना करें, तो विजय निश्चित्त रूप से हमारी होगी।[11] ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के बीच का विभाजन बिल्कुल बनावटी है। भारत एक है। ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के लोगों की आशाएं और आकांक्षाएं एक सी हैं।[12] हमारा लक्ष्य भारत की स्वाधीनताा है। स्वाधीन भारत का लक्ष्य संघात्मक गणराज्य के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। संघ-शासन में प्रांत और रियासतें बराबर के हिस्सेदार होंगे। कांग्रेस पार्टी ने देशी राज्यों के लोकतंत्री आंदोलन का सदा ही समर्थन किया है।[13]

अल्पसंख्यकों की समस्या

भारतीय एकता के मार्ग में एक बड़ी बाधा अल्पसंख्यकों की है। कांग्रेस अल्पसंख्यकों के अधिकारों को मानती है और वह चाहती है कि उन्हें स्वतंत्र और संयुक्त भारत में अपने विकास का पूरा अवसर मिले। कांग्रेस भारत में एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित करने के लिए कृत संकल्प है जिसमें कोई एक वर्ग किसी दूसरे वर्ग का शोषण न कर सके।[14] भारत में हर नागरिक को अभिव्यक्ति और धर्म की स्वतंत्रता होगी। अल्पसंख्यकों की संस्कृति, भाषा तथा लिपि की रक्षा की जाएगी। विधि के समक्ष सब समान होंगे। राज्य सभी धर्मो के प्रति तटस्थता का भाव रखेगा। सरकारी नौकरियों में किसी के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। सार्वभौम वयस्क

मताधिकार का प्रवर्तन होगा। हर व्यक्ति को भारत में अबाध संचरण और संपत्ति अर्जित करने का अधिकार होगा। कांग्रेस सांप्रदायिक आधार पर निर्वाचनों के विरुद्ध है। कांग्रेस दलित वर्गों के अधिकारों के प्रति भी सजग है और उनकी चतुर्मुखी उन्नति चाहती है।[15]

स्वतंत्रता के बाद भारतीय अपनी इच्छा से यह तय करेंगे कि उनका ब्रिटेन के साथ कैसा संबंध रहे।[16]

स्वतंत्रता के बाद भी कांग्रेस की उपयोगिता

कुछ लोगों का कहना है कि आज़ादी मिलने के बाद कांग्रेस की उपयोगिता समाप्त हो जाएगी। मैं ऐसा नहीं मानता। स्वतंत्रता मिलने के बाद कांग्रेस को पुनर्निर्माण का कार्य पूरा करना है।[17]

समाजवादी आधार पर पुनर्निर्माण

स्वतंत्रता के बाद भारत का पुनर्निर्माण समाजवादी आधारों पर ही हो सकता है।[18] भारत को योजनाबद्ध विकास का रास्ता अपनाना होगा। इसके लिए सुभाषचन्द्र बोस ने एक योजना आयोग के गठन का सुझाव दिया।[19]

शक्तिशाली केंद्र की आवश्यकता

सुभाष बोस ने केंद्र में एक शक्तिशाली शासन की स्थापना का सुझाव दिया। लेकिन उनका विचार था कि प्रांतों को अधिक से अधिक स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।[20]

संपर्क भाषा

सुभाष बोस भारत के लिए एक समान संपर्क भाषा की कल्पना करते थे। उनके विचार से यह भाषा हिन्दी और उर्दू का मिश्रण हो सकती थी। ये भाषाएं नागरी लिपि और उर्दू लिपि में लिखी जा सकती थीं लेकिन सुभाष बोस का अपना विचार यह था कि इन्हें रोमन लिपि में लिखा जाए तो हम शेष संसार के अधिक निकट आ सकेंगे।[21]

बढ़ती हुई आबादी

सुभाष बोस ने भारत की बढ़ती हुई आबादी को देखते हुए जनसंख्या के नियंत्रण पर जोर दिया।[22]

आर्थिक सुधार

देश से गरीबी को दूर करने के लिए सुभाष बोस का सुझाव था कि जमींदारी प्रथा को समाप्त किया जाए, किसानों के ऋण समाप्त किए जाएं और गांव के लोगों

को सस्ती दरों पर कर्जा लेने की सुविधा उपलब्ध की जाए। वे देश में सहकारिता का विकास और कृषि को वैज्ञानिक आधार देना चाहते थे। उन्होंने औद्योगिक विकास और आर्थिक जीवन में राज्य के हस्तक्षेप की अनिवार्यता प्रकट की। इसका अर्थ यह नहीं था कि कुटीर उद्योगों की उपेक्षा की जाए। भारत जैसे देश में कुटीर उद्योगों के लिए विशेषकर हाथ की कताई और हाथ की बुनाई के लिए काफी क्षेत्र है।[23]

भारतीय शासन अधिनियम, 1935 की आलोचना

भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के अंतर्गत कांग्रेस ने अनेक प्रांतों में सरकारें बना ली हैं। इसलिए अब अधिनियम के प्रांतीय भाग की आलोचना करना व्यर्थ है। इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि नौकरशाही के स्वरूप और गठन को बदला जाए। जब तक नौकरशाही की कार्य-प्रणाली में बदलाव नहीं आता, मंत्रिमंडल अपनी नीतियों को ठीक ढंग से कार्यान्वित नहीं कर सकते।[24] जिन प्रांतों में कांग्रेस की सरकारें हैं, वहां उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, नशाबंदी, जेल-सुधार, सिंचाई, उद्योग, भूमि-सुधार तथा श्रमिक कल्याण के कार्यक्रमों को एक ढंग से लागू करना चाहिए। कांग्रेस कार्यसमिति भी कांग्रेस सरकारों को उचित निर्देश दे सकती है जिससे सारे देश में नीतिविषयक एकरूपता बनी रहे। सुभाष बोस की राय थी कि कांग्रेस कार्यसमिति को स्वतंत्र भारत के छाया मंत्रिमंडल की भांति काम करना चाहिए।[25]

सुभाष बोस ने भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के संघीय भाग का विरोध किया। उनके विचार से सच्चा संघ तभी बन सकता था जब कि संघ-शासन की विभिन्न इकाइयां एक-जैसी हों, वे नागरिक स्वतंत्रता और उत्तरदायी शासन का उपभोग करती हों और उनके प्रतिनिधि सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने जाएं। अधिनियम ने वित्तीय और विदेशी संबंधों के क्षेत्र में केंद्रीय विधानमंडल पर अनेक प्रतिबंध लगा रखे हैं। वे सारे प्रतिबंध हट जाने चाहिएं।[26]

पार्टी अनुशासन

सुभाष बोस ने कांग्रेस पार्टी में अनुशासन बनाए रखने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया और इसके लिए स्वयंसेवकों की सेना संगठित करने की सिफारिश की। उन्होंने ट्रेड यूनियन कांग्रेस और किसान सभाओं के साथ सहयोग करने की नीति उचित ठहराई।[27]

कांग्रेस समाजवादी दल

कांग्रेस के भीतर 1934 में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हो गई थी। सुभाष बोस का विचार था कि कांग्रेस समाजवादी दल वामपक्षी तत्त्वों को एकत्रित कर

सकता था और देश को राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने के बाद समाजवाद के लिए तैयार कर सकता था।[28]

विदेश नीति

सुभाष बोस तीसरे दशक के बाद से भारत की विदेश नीति में गहरी दिलचस्पी लेने लगे थे। 1930 से 1933 तक वे इलाज के लिए यूरोप में रहे थे। उन दिनों उन्होने यूरोप के अनेक देशों की यात्रा की थी और यूरोपीय राजनेताओं से संपर्क स्थापित किया था। अपने हरिपुरा भाषण में सुभाष बोस ने स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के बारे में अपने विचार प्रकट किए। उन्होंने कहा कि अपनी विदेशी नीति को निर्धारित करते समय हमें किसी देश की आंतरिक राजनीति से प्रभावित नहीं होना चाहिए। इस संबंध में उन्होने सोवियत रूस का उदाहरण दिया। यद्यपि सोवियत रूस एक साम्यवादी देश था लेकिन उसने राष्ट्रहित में गैर-समाजवादी देशों के साथ भी संधियां और समझौते किए थे। सुभाष बोस की राय थी कि हमें हर देश में ऐसे लोगों से संबंध स्थापित करने चाहिएं जो भारत से सहानुभूति रखते हों। इसके लिए यह आवश्यक था कि कांग्रेस पार्टी विदेशों में प्रचार करे। विदेशों में पढ़ने वाले भारतीय छात्र इस कार्य में सहायक हो सकते थे। यूरोप और अमरीका में भारतीय संस्कृति के प्रचार और विभिन्न देशों में भारतीय प्रतिनिधियों की नियुक्ति से विदेशों में भारत के प्रति सहयोग और सहानुभूति की लहर पैदा की जा सकती थी।

अंतर्राष्ट्रीय संपर्क

सुभाष बोस की राय में अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों की स्थापना का अर्थ यह नहीं था कि कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध कोई षड़यंत्र रच रही है। विदेशों में भारत की छवि असभ्य राष्ट्र की है जिसे ब्रिटेन सभ्य बना रहा है। हमें संसार को बता देना है कि हम क्या हैं और हमारी संस्कृति क्या है। यदि हम ऐसा कर सके तो सारे संसार की सहानुभूति हमारी होगी और वह हमारी स्वतंत्रता के पक्ष का समर्थन करेगे।

प्रवासी भारतीय

आज एशिया और अफ्रीका के विभिन्न भागों में प्रवासी भारतीयों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। कांग्रेस ने उनकी समस्याओं में सदा दिलचस्पी ली है और लेती रहेगी। यदि हम प्रवासी भारतीयों के लिए कुछ विशेष कार्य नहीं कर सके है, तो इसका कारण हमारी गुलामी है। स्वतंत्र भारत विश्व राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा और उस समय हम विदेशों में स्थित अपने भाइयो के हितों की अधिक कारगर ढंग से रक्षा कर सकेंगे। इस प्रसंग में हमें अपने पड़ोसी

देशों– ईरान, बर्मा, सियाम, मलाया, पूर्वी द्वीप समूह और लंका– के साथ घनिष्ठ सांस्कृतिक संबंध स्थापित करने चाहिएं।[29]

गांधी जी की सराहना

सुभाष बोस ने अपने अध्यक्षीय भाषण के अंत में महात्मा गांधी के दीर्घायु होने की आकांक्षा व्यक्त की। सुभाष बोस ने कहा कि गांधी जी की आवश्यकता सिर्फ भारत को ही नहीं है उनकी आवश्यकता सारे संसार को है। भारत का स्वांतत्र्य-संघर्ष सिर्फ भारत के लिए नहीं है। वह सारे संसार के लिए है। स्वतंत्र भारत का अर्थ है– मानवता की रक्षा।[30]

योजना समिति

सुभाष बोस ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए एक योजना समिति के गठन का सुझाव प्रस्तुत किया था। बोस के आग्रह पर जवाहरलाल नेहरू इस समिति का अध्यक्ष बनने के लिए तैयार हो गए। स्वतंत्र भारत को सुभाष बोस की एक प्रमुख देन है– योजना-बद्ध आर्थिक विकास का विचार। बोस ने योजना समिति के सम्मुख निम्नलिखित आधारभूत सिद्धांत रखे थे :

1. मुख्य संसाधनों के विकास में स्वायत्तता।
2. ऊर्जा, धातुओं, मशीनों, औजारों, आवश्यक रसायनों, परिवहन और संचार उद्योगों का विकास।
3. तकनीकी शिक्षा और तकनीकी अनुसंधान की उन्नति।
4. स्थायी राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद की स्थापना
5. वर्तमान औद्योगिक स्थिति का आर्थिक दृष्टि से सर्वेक्षण।[31]

यद्यपि गांधी जी के कट्टर अनुयायी आयोजन के विरुद्ध थे, लेकिन सरदार पटेल की सहायता से योजना समिति अपना कार्य करने में सफल हुई। नेहरू और बोस दोनों ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय आयोजन में भारी उद्योगों के साथ लघु उद्योगों के लिए भी स्थान रहेगा।

1938 में बोस ने आयोजन और उद्योगीकरण के बारे में अनेक भाषण दिए। इन भाषणों में उन्होंने सोवियत संघ का अनेक बार उदाहरण दिया। बोस का विचार था कि जिस प्रकार योजनाबद्ध विकास की नीति के द्वारा सोवियत रूस ने आर्थिक उन्नति की है, उसी प्रकार भारत भी कर सकेगा।

खरे–प्रकरण

जुलाई, 1938 में मध्य प्रांत में मुख्य मंत्री एन० जी० खरे तथा कांग्रेस हाई

कमान के बीच मतभेद पैदा हो गए। मध्य प्रांत में मराठी और हिंदी दोनों भाषाओं के बोलने वाले लोग रहते थे। वहां का मंत्रिमंडल भी मिला-जुला था। मंत्रिमंडल के एक सदस्य डी० पी० मिश्र ने आरोप लगाया कि खरे राज्यपाल से मिले हुए हैं और उससे आदेश ग्रहण करते हैं। खरे और उनके दो महाराष्ट्री सदस्यों ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। उन्होने इस बात पर जोर दिया कि हिंदी भाषी मंत्री भी त्याग पत्र दे दें। उन्होंने कांग्रेस हाई कमान की अनुमति के बिना त्याग-पत्र से इन्कार कर दिया। इस पर राज्यपाल ने अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग कर उन्हें अपदस्थ कर दिया। खरे ने इन मंत्रियों के बिना ही अपने मंत्रिमंडल का फिर से गठन किया और मुख्य मंत्री की कुर्सी हथिया ली। इस पर कांग्रेस हाई कमान ने खरे से जवाब-तलब किया और उन्हें इस्तीफा देने के लिए विवश किया। खरे के स्थान पर एक नए नेता का चुनाव किया गया। इस प्रकरण में कांग्रेस हाई कमान की भूमिका एक अधिनायक की सी थी। सुभाष बोस ने अध्यक्ष होने के नाते कांग्रेस हाई कमान का साथ दिया।

सर रीजनल कूपलैंड का कहना है कि प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल विधानमंडलों के प्रति उतने उत्तरदायी नहीं थे जितने कि वे कांग्रेस के संसदीय बोर्ड के प्रति उत्तरदायी थे। कांग्रेस की एकात्मक नीति प्रांतीय स्वायत्तता और उत्तरदायी शासन के सिद्धांतों का उल्लंघन करती थी। दूसरी ओर कांग्रेस का विचार यह था कि संसदीय बोर्ड के प्रभाव ने स्वस्थ राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास किया और संकुचित प्रांतीयता की वृद्धि को रोका।

मुस्लिम लीग के प्रति रुख

सुभाष बोस ने मुस्लिम लीग और उसके नेता मोहम्मद अली जिन्ना के मामले में भी कांग्रेस हाई कमान का साथ दिया। 1916 में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एक समझौता हुआ था लेकिन 1920 में वह समझौता टूट गया। इसके बाद कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच मतभेद की स्थिति बनी रही। बोस मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों के विरुद्ध थे। 1928 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में भारत का भावी संविधान बनाने के लिए जो समिति बनी थी, सुभाष बोस भी उसके एक सदस्य थे। उन्होंने समिति की बैठकों में आग्रहपूर्वक कहा था कि लोकतंत्रात्मक शासन की सफलता के लिए संयुक्त निर्वाचन आवश्यक हैं। बोस का आजीवन यह विश्वास बना रहा कि कांग्रेस भारत की सभी जातियों का प्रतिनिधित्व करती है और वह धर्म के आधार पर काम करने वाले संगठनों के विरुद्ध है। सुभाष बोस का दृष्टिकोण पंथ-निरपेक्ष था। इस दृष्टिकोण के अनुसार भारत की सभी जातियां भारत का अंग हैं और उन्हें नागरिकता के एक से अधिकार प्राप्त हैं। कांग्रेस-अध्यक्ष के नाते सुभाष ने मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मोहम्मद अली जिन्ना से पत्र-व्यवहार किया। जिन्ना ने 2 अगस्त, 1938 को बोस को लिखा कि मुस्लिम लीग भारत के मुसलमानों की

एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है।[32] बोस और जिन्ना के बीच कई पत्रों का आदान-प्रदान हुआ लेकिन कुछ फल न निकला। बोस बंगाल प्रांत के थे जहां मुसलमानों का बहुमत था और जहां मुस्लिम लीग की सरकार सत्तारूढ़ थी। इसलिए वे मुस्लिम लीग के साथ नरमी से पेश आना चाहते थे। लेकिन कांग्रेस के अध्यक्ष के नाते सुभाष बोस कांग्रेस हाई कमान की नीति पर चले। 1938 के बाद मुस्लिम लीग का भी कांग्रेस के प्रति रुख कड़ा होता गया। भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के अंतर्गत प्रांतों में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के संयुक्त मन्त्रिमंडल बन सकते थे। लेकिन कांग्रेस ने संयुक्त मंत्रिमंडल बनाने के लिए लीग के सामने कुछ शर्तें रखीं। ये शर्तें थीं : मुस्लिम लीग एक पृथक् गुट की तरह काम करना बंद कर देगी, मुस्लिम लीग के सदस्य कांग्रेस में शामिल हो जाएंगे और उन्हें कांग्रेस का नियंत्रण और अनुशासन मानना होगा। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की इन शर्तों को नहीं माना। इन शर्तों को स्वीकार करने का अर्थ था मुस्लिम लीग का अंत।

जिन दिनों सुभाष बोस कांग्रेस के अध्यक्ष थे, वे बंगाल प्रांत कांग्रेस कमेटी के भी अध्यक्ष बने रहे थे। इसके अलावा वे कलकत्ता म्युनिसिपल कार्पोरेशन के एल्डरमैन भी थे और कार्पोरेशन की कार्य-प्रणाली में सुधार करना चाहते थे। उन्होंने अपनी इन तीनों जिम्मेदारियों को बखूबी निभाया। लेकिन जहां सुभाष बोस को जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त था, वे बंगाल तक में कांग्रेस पार्टी के ऊपर अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित नहीं कर सके।

1938 में बंगाल में फ़जलुल हक का मंत्रिमंडल था। यह मंत्रिमंडल पूरी तरह सांप्रदायिक था। सुभाष बोस के बड़े भाई शरत बोस बंगाल विधानसभा में कांग्रेस पक्ष के नेता थे। वे हक मंत्रिमंडल को गिराना चाहते थे। सुभाष बोस की भी यही इच्छा थी। लेकिन गांधी जी ने इस की अनुमति नहीं दी। सुभाष को लगा कि यद्यपि वे बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी तथा कांग्रेस के अध्यक्ष थे, तथापि गांधी जी के आंतरिक गुट से बाहर थे। कांग्रेस संगठन पर इस आंतरिक गुट का ही नियंत्रण था।[33]

यूरोपीय संकट

1938 में यूरोप की राजनीति नए मोड़ ले रही थी। बोस का विचार था कि यूरोप में शीघ्र ही गंभीर राजनीतिक संकट पैदा होगा। भारत को इस संकट से लाभ उठाना चाहिए। कांग्रेस को चाहिए कि वह सरकार को अंतिम चेतावनी दे दे कि भारत को आज़ाद किया जाए। यदि सरकार इस चेतावनी पर ध्यान नहीं देती, तो कांग्रेस जन-आंदोलन छेड़ सकती है। उन्होंने इस बारे में नेहरू को एक पत्र भी लिखा था।[34] गांधी जी का और उनके निकट सहयोगियों का विचार था कि भारत के लोग जन आंदोलन के लिए तैयार नहीं है।

1938 के अंत में बोस ने जर्मनी, इटली और जापान की सरकारों से संपर्क साधना शुरू कर दिया। ये तीनों देश इंगलैंड के शत्रु थे। बोस का विचार था कि शत्रु का शत्रु हमारा मित्र हो सकता है। बोस 1933 से 1938 तक अधिकतर यूरोप में रहे थे। वहां उन्होंने जर्मनी और इटली के अधिकारियों से मुलाकात की थी। वे जाना तो रूस भी चाहते थे लेकिन वहां जाने का उन्हें वीजा नहीं मिला था।

बोस नाज़ीवाद की बुराइयों से परिचित थे। लेकिन भारत की स्वतंत्रता का विचार उनके मन में इतना गहरा पैठ गया था कि इसके लिए वे कुछ भी करने को तैयार थे। वे समझते थे कि जर्मनी ही ब्रिटेन से टक्कर ले सकता है। इसलिए उनकी कोशिश थी कि जर्मनी भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करे। 22 दिसम्बर, 1938 को बम्बई में बोस ने जर्मन अधिकारी डॉ० उर्च से भेंट की। उनकी इस भेंट का समाचार कांग्रेस के नेताओं तथा ब्रिटिश सरकार को लग गया। ब्रिटिश सरकार के हाथ भारत के एक पुराने क्रांतिकारी रासबिहारी बोस का वह पत्र भी लग गया जो उन्होंने सुभाष बोस को लिखा था। इस पत्र में रासबिहारी ने सुभाष बोस को सलाह दी थी कि वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम में जापान की सहायता लें।[35]

अंतर्राष्ट्रीय घटना-चक्र के बारे में नेहरू की राय सुभाष बोस के विपरीत थी। उनके विचार से यह आवश्यक नहीं था कि इंगलैंड का शत्रु हमारा मित्र सिद्ध हो।[36]

गांधीजी से मतभेद

1938 के अंत में कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए उम्मीदवारों की खोज का काम शुरू हो गया। सुभाष बोस कांग्रेस-अध्यक्ष पद के लिए दुबारा चुनाव लड़ना चाहते थे। उनका विचार था कि यदि आचार्य नरेन्द्रदेव जैसा कोई वामपंथी नेता चुनाव में खड़ा हो, तो वे चुनाव के मैदान से हट जाएंगे। आचार्य नरेन्द्र देव चुनाव में खड़े होने के लिए तैयार नहीं हुए। महात्मा गांधी तथा कांग्रेस हाई कमांड ने कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए दो नामों पर विचार किया— मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और पट्टाभि सीता रामय्या। मौलाना आज़ाद ने चुनाव में खड़े होने से मना कर दिया। अब गांधीवादी खेमे की ओर से चुनाव के मैदान में पट्टाभि सीता रामय्या ही रह गए। वे आंध्र के थे और गांधीवादी थे। कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों— सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, जे० बी० कृपलानी, भूलाभाई देसाई, जमनालाल बजाज, शंकरराव देव और जयरामदास दौलत राम ने सुभाष बोस से आग्रह किया कि वे दुबारा चुनाव में खड़े न हों। इस विषय में सरदार पटेल और शरत बोस में तारों का आदान-प्रदान हुआ। शरत बोस की राय थी कि कांग्रेस अध्यक्ष पद के चुनाव में कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों को कोई पक्ष नहीं लेना चाहिए। इससे कांग्रेस में फूट पड़ जाएगी।

सरदार पटेल ने कांग्रेस कार्यसमिति के बहुसंख्यक सदस्यों की ओर से

समाचार-पत्रों में एक वक्तव्य प्रकाशित किया कि पट्टाभि सीता रामय्या उनके उम्मीदवार हैं और सुभाष वोस को चुनाव के मैदान से हट जाना चाहिए जिससे पट्टाभि निर्विरोध चुने जा सकें। सुभाष वोस इसके लिए तैयार नहीं हुए। चुनाव हुआ। 29 जनवरी, 1939 को सुभाष वोस कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। उन्हें 1,580 मत प्राप्त हुए और पट्टाभि को 1,375। सुभाष जीत तो गए लेकिन उनका गांधीवादियों के साथ युद्ध आरम्भ हो गया।

कांग्रेस अध्यक्ष पद पर सुभाष वोस के चुनाव से महात्मा गांधी तथा उनके निकटतम अनुयाइयों को आश्चर्य हुआ। सारे देश के वामपंथियों ने सुभाष के पक्ष में मत दिए थे। पंजाव और वंगाल मै सुभाष को विशेष सफलता मिली थी। गांधी जी ने 4 फरवरी, 1939 को वारदोली से अपने उम्मीदवार पट्टाभि की पराजय के वारे में एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें पट्टाभि की हार को अपनी तथा अपनी विचारधारा की हार वताया। उन्होंने यह भी कहा कि वोस अपनी कार्य समिति स्वयं वना सकते हैं और अपने कार्यक्रम को मूर्तरूप दे सकते हैं।[37] सुभाष वोस ने गांधी जी के वक्तव्य का नरमी से उत्तर दिया और कहा कि वे गांधी जी के विश्वास को पाने की कोशिश करेंगे। गांधी जी भारत के सबसे वड़े व्यक्ति थे और यदि गांधी जी का विश्वास न जीत सके, तो मह दुर्भाग्य की वात होगी।[38] 22 फरवरी, 1939 को कांग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्यों ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया। वोस गांधी जी का समर्थन चाहते थे। वे गांधी जी से मिले भी। उन्हें गांधी जी का समर्थन नहीं मिला। वोस ने जवाहरलाल नेहरू का सहयोग भी पाना चाहा, लेकिन उन्हें वह भी नहीं मिला। नेहरू के विचार से गांधी जी तथा उनके निकटतम सहयोगी साम्राज्यवाद के उतने ही विरोधी थे जितने कि सुभाष वोस। भारतीय राजनीति में गांधी जी की स्थिति सर्वोपरि थी। गांधी जी के विना किसी जन-आंदोलन की कल्पना नहीं की जा सकती थी।[39]

त्रिपुरी अधिवेशन

1939 का कांग्रेस अधिवेशन 10 मार्च, 1939 को मध्य प्रांत के त्रिपुरी नगर में हुआ। इस वार वातावरण में तनाव था। कार्यसमिति के सभी सदस्यों ने इस्तीफे दे रखे थे। गांधीवादियों के विरोध के कारण नई कार्यसमिति के गठन में दिक्कतें थीं। दूसरे मध्य यूरोप तथा पूर्वी एशिया में युद्ध के वादल मंडरा रहे थे। जर्मनी चेकोस्लोवाकिया को रौंद रहा था। जापान ने चीन पर हमला कर दिया था। स्पेन में फ्रांकों का विद्रोह सफल हो रहा था। व्रिटेन और फ्रांस अधिनायकवादी शक्तियों के आगे घुटने टेक रह थे। फरवरी के वीच में गांधी जी से मिलने के वाद वोस वीमार हो गए थे। डाक्टरों ने उन्हें आराम करने की सलाह दी। जिस समय वोस कलकत्ता से त्रिपुरी के लिए चले उन्हें 104^0 बुखार था। गांधी जी त्रिपुरी सम्मेलन में नहीं आए।

पंत प्रस्ताव

त्रिपुरी में कांग्रेस की विषय समिति की बैठक में उत्तरप्रदेश के नेता पं० गोविन्द वल्लभ पंत ने एक प्रस्ताव पेश किया कि अध्यक्ष कार्यसमिति का गठन गांधीजी की सलाह से करें। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि कांग्रेस की गांधी जी की नीति और कार्यक्रमों में पूरी आस्था है। ये नीतियां और कार्यक्रम पहले जैसे चलने चाहिएं तथा उनसे हटने की आवश्यकता नहीं है।[40] पं० पंत का प्रस्ताव विषय समिति में बहुमत से पास हो गया। बाद में वह कांग्रेस के खुले अधिवेशन में भी पास हो गया। सुभाष बोस को सभी वामपक्षियों का समर्थन नहीं मिला।

अध्यक्ष-पद से इस्तीफा

मार्च और अप्रैल, 1939 के महीनों में बोस ने गांधीजी और नेहरू को कई पत्र लिखे।[41] उन्होंने गांधी जी को जो पत्र लिखे, उनमें गांधी जी के प्रति सम्मान की भावना थी। बोस का कहना था कि गांधी जी दलों और गुटों से ऊपर हैं। वे राष्ट्रीय विभूति हैं और चाहें तो कांग्रेस को टूटने से बचा सकते हैं। बोस ने नेहरू को जो पत्र लिखे, उनमें शिकायत और उपालंभ था। नेहरू, गांधी और बोस के बीच समझौता चाहते थे। लेकिन नेहरू को अपने प्रयास में सफलता नहीं मिली। सुभाष गांधी जी की इच्छानुसार कार्यसमिति का निर्माण नहीं कर सके। अप्रैल, 1939 में उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया। उनके स्थान पर राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए।

फारवर्ड ब्लाक

3 मई, 1939 को कांग्रेस ने अपने अंतर्गत एक गुट फारवर्ड ब्लाक की स्थापना का ऐलान किया। ब्लाक का लक्ष्य सभी वामपंथी और क्रांतिकारी तत्वों को एक मंच पर लाना था। जून, 1939 के मध्य में बम्बई में आल इंडिया फारवर्ड ब्लाक का पहला अधिवेशन हुआ। सम्मेलन ने वामपक्षी संगठन समिति (लेफ्ट कंसोलिडेशन कमेटी की स्थापना की। इस समिति के चार लक्ष्य थे- कांग्रेस के कार्यक्रम को वामपक्ष की ओर मोड़ना, ब्रिटिश सरकार को अंतिम चेतावनी देना, बदलती हुई अंतर्राष्ट्रीय स्थिति से लाभ उठाना और आज़ादी मिलने के बाद भारत का समाजवादी आधार पर पुनर्निर्माण। जुलाई, 1939 मे बोस ने फारवर्ड ब्लाक की कार्यसमिति की घोषणा की। अगस्त में दल का एक पत्र प्रकाशित होने लगा। बोस ने नियमित रूप से पत्र के संपादकीय लिखे। उन्होंने अपने विचारों के प्रचार के लिए समूचे देश की यात्रा की। बोस ने 19 जुलाई, 1939 को सारे देश में प्रदर्शन आयोजित करने का फैसला किया। कांग्रेस कार्यसमिति ने इसे कांग्रेस अनुशासन के विरुद्ध माना और प्रस्ताव पास कर दिया कि

आगे के तीन वर्ष तक सुभाषचन्द्र बोस बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष नहीं रहेंगे और न वे कांग्रेस की किसी निर्वाचित समिति के सदस्य होंगे।

रवीन्द्र नाथ टैगोर की प्रशस्ति

1938 और 1939 के बीच जब सुभाष वाद-विवादों के घेरे में थे, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सुभाष बोस का समर्थन किया। उन्होंने सुभाष बोस को देशनायक कहा।[42] टैगोर ने गांधी और नेहरू दोनों से अनुरोध किया था कि वे बोस को दुबारा कांग्रेस का अध्यक्ष बन जाने दें। टैगोर ने गांधी जी से यह भी प्रार्थना की कि वे सुभाष के ऊपर आरोपित प्रतिबंध हटा दें। लेकिन गांधी और नेहरू ने गुरुदेव की बात नहीं मानी। गांधी जी ने सुभाष को 'बिगड़ा बालक' बताया।[43]

1 सितम्बर, 1939 को जर्मनी ने पोलैंड पर हमला कर दिया। इंगलैंड और फ्रांस सोते से जाग उठे। तुष्टीकरण की नीति समाप्त हो गई। इंगलैंड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। विंस्टल चर्चिल जो इंगलैंड की ढीली नीति के सबसे कड़े आलोचक थे, मंत्रिमंडल में शामिल हो गए।

युद्ध की घोषणा

भारत में लार्ड लिन्लिथगो ने भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को कोई सूचना दिए बिना अथवा उनसे किसी प्रकार का परामर्श किए बिना ही घोषणा कर दी कि भारत भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में शामिल है। वायसराय ने महात्मा गांधी को बातचीत के लिए आमंत्रित किया। महात्मा गांधी ने कहा कि मेरी अपनी सहानुभूति तो इंगलैंड और फ्रांस के साथ है। लेकिन उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि उन्होंने यह बात व्यक्तिगत रूप से कही है, कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में नहीं। कुछ समय बाद उन्होंने कहा कि अंग्रेजों को जो भी सहायता दी जाए बिना शर्त दी जाए। लेकिन कांग्रेस की प्रतिक्रिया बिल्कुल दूसरी थी। जिस मनमाने ढंग से कांग्रेस को युद्ध में झोंक दिया गया था उसका कांग्रेस ने तीव्र विरोध किया। भारत एक ऐसे उद्देश्य के लिए जो उसका अपना नहीं था, एक ऐसे झंडे के नीचे जिसने उसका अपना झंडा गिरा दिया था और ऐसे नेताओं की अधीनता में जो उसके अपने नेताओं से सलाह लेना नहीं चाहते थे, लड़ने के लिए तैयार नहीं था।

इंगलैंड ने घोषणा की थी कि वह जर्मनी के विरुद्ध लड़ाई में इसलिए कूदा है कि लोकतंत्र की रक्षा कर सके। कांग्रेस ने मांग की कि यदि इंगलैंड लोकतंत्र और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए लड़ रहा है, तो उसे पहले भारत में लोकतंत्र और स्वतंत्रता की स्थापना करनी चाहिए। ब्रिटिश सरकार के युद्धकालीन वचनों या वक्तव्यों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इंगलैंड को चाहिए कि वह भारत को स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दे। इस मांग का आशय यह था कि भारत को युद्ध के पश्चात् अपना

संविधान बनाने की स्वतंत्रता प्राप्त हो। ब्रिटिश नेकनीयती के प्रमाणस्वरूप भारत में तत्काल ही लोक-शासन की स्थापना ज़रूरी है। यदि ब्रिटिश सरकार भारत की आजादी की स्पष्ट रूप से घोषणा करने के लिए तैयार नहीं होती तो इसका स्पष्ट आशय यह था कि लड़ाई का उद्देश्य साम्राज्यवादी विशेषाधिकारों को ज्यों का त्यों कायम रखना था। इस प्रकार की लड़ाई में भारत की कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती थी। भारत सहयोग देने को तैयार था लेकिन वह यह सहयोग बराबर के साथी की हैसियत से देना चाहता था।

प्रांतों में कांग्रेस सरकारों का त्याग-पत्र

कांग्रेस ने सरकार से जो आश्वासन मांगा था, वह उसे नहीं मिला। लार्ड लिन्लिथगो ने भारतीय नेताओं से मुलाकातों का सिलसिला शुरू किया। सुभाष बोस ने 10 अक्तूबर, 1939 को वायसराय से भेंट की। वायसराय से भारतीय नेताओं की भेंट का कोई संतोषजनक परिणाम नहीं निकला। कांग्रेस कार्यसमिति ने प्रांतीय कांग्रेसी मंत्रिमंडलों से कहा किं वे अपना त्यागपत्र दे दें। कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने अपने त्याग-पत्र दे दिए। वे स्वीकार कर लिए गए।

इस समय सुभाष बोस की राय थी कि कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार के ऊपर दबाव डालना चाहिए। उन्होंने अपने सार्वजनिक भाषणों में कहा कि कांग्रेस संघर्ष से इसलिए कतरा रही है कि संघर्ष आरंभ होते ही उसके हाथ से नेतृत्व की बागडोर निकल जाएगी। कांग्रेस के दक्षिणपंथी तत्त्व राष्ट्रीय आंदोलन की नई प्रवृत्तियों और शक्तियों से बिल्कुल अपरिचित हैं। किसानों, श्रमिकों, छात्रों, नौजवानों से उनका कोई संपर्क नही है। वे मुसलमानों की सद्भावना भी खो चुके हैं।

1940 में बोस ने देश के विभिन्न भागों का दौरा किया। उन्होंने गांधीवादी कांग्रेस की समझौतावादी प्रवृत्तियों से देश को सावधान किया। उन्हे किसान सभा संगठन के प्रो० एन० जी० रंगा और स्वामी सहजानंद सरस्वती से सहायता मिली। सुभाष बोस ने वर्धा जाकर गांधी जी से भेंट भी की। बोस ने गांधीजी से आग्रह किया कि वे देश में जन आंदोलन आरंभ करें। लेकिन गांधी जी का विचार था कि देश अभी इसके लिए तैयार नहीं है।

द्वि-राष्ट्र सिद्धांत

मार्च, 1940 में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में द्वि-राष्ट्र सिद्धांत अथवा पाकिस्तान प्रस्ताव पास किया। प्रस्ताव में कहा गया था कि भारत में कोई भी सांविधानिक व्यवस्था उस समय तक सफल नही हो सकती जब तक कि मुस्लिम-बहुल क्षेत्रों को स्वतंत्र राज्यों का दर्जा नहीं दिया जाता।[44] मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मोहम्मद अली जिन्ना ने घोषणा की कि हिन्दू और मुसलमान शाब्दिक अर्थ में दो धर्म नहीं हैं

प्रत्युत दो पृथक् और स्पष्ट सामाजिक व्यवस्थाएं हैं। वे एक संयुक्त राष्ट्र के रूप में कभी नहीं रह सकते। हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक सिद्धांत, सामाजिक रीति-रिवाज, दर्शन और साहित्य एक दूसरे से सर्वथा पृथक् हैं। उनका परस्पर रोटी-बेटी का संबंध नहीं है। वस्तुतः दोनों की परस्पर विरोधी भावनाओं पर आधृत सभ्यताएं अलग-अलग हैं। दोनों के जीवन-संबंधी दृष्टिकोण में अंतर है। उनको पृथक् ऐतिहासिक आधारों से प्रेरणा मिलती है। उनकी पुराण कथाएं, उनके वीर और उन वीरों की कहानियां अलग-अलग हैं। प्रायः एक का वीर दूसरे का शत्रु माना गया है और एक की विजय दूसरे की पराजय। ऐसे दो राष्ट्रों को जिनमें एक अल्पसंख्यक है और दूसरा बहुसंख्यक, एक राज्य में गूंथने का प्रयत्न असंतोष उत्पन्न करेगा। वह शासन-व्यवस्था सफल नहीं होगी।

द्वि-राष्ट्र सिद्धांत इस बात को लेकर चला था कि धर्म की भिन्नता ने हिंदुओं और मुसलमानों को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करना असंभव कर दिया था। इस प्रकार की विचारधारा दुर्भाग्यपूर्ण थी। राष्ट्रीयता वस्तुतः एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है। वह पारस्परिक एकानुभूति की भावना है। इस एकानुभूति की भावना को जन्म देने वाले कई तत्त्व हैं। धर्म उनमें से केवल एक तत्त्व है। भौगोलिक और प्रजातीय तत्त्व, समान भाषा और संस्कृति, समान इतिहास और परम्पराएं भी राष्ट्रीय भावना की वृद्धि करते हैं। भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच इनमें से अधिकांश तत्त्व उपस्थित रहे हैं। भौगोलिक दृष्टि से भारत सदैव एक इकाई रहा है। संसार में ऐसा कोई भी देश नहीं जिसे समुद्र और पहाड़ों के कारण भारत जैसा अखंड रूप प्राप्त हो। भारतवर्ष में धार्मिक भेदों के कारण प्रजातीय और भाषा संबंधी एकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक मद्रासी मुसलमान का किसी पंजाबी मुसलमान की अपेक्षा मद्रासी हिन्दू से अधिक निकट सम्बंध होता है। बंगाल के हिन्दू और मुसलमान एक भाषा बोलते हैं और यह भाषा सिंध के हिंदुओं और मुसलमानों की भाषा से पृथक् होती है। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों ने ही समान भारतीय संस्कृति के विकास में योग दिया है। भारत की मिली-जुली संस्कृति दोनों के पुरुषार्थ का फल है। कविता और संगीत में, चित्रकला और शिल्पकला में हिन्दू और मुस्लिम परम्पराओं का खुल कर मिश्रण हुआ है। हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच यदि कोई वास्तविक अंतर है, तो वह है केवल धर्म का। लेकिन यह साधारणतः स्वीकार किया जाता है कि अकेले धर्म ही राष्ट्रीयता का आधार नहीं है। फिर, अधिकांश भारतीय मुसलमान उन हिन्दू पूर्वजों के वंशज हैं जिन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था।

कांग्रेस का रामगढ़ अधिवेशन

मार्च, 1940 में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की अध्यक्षता में रामगढ़ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। सुभाष बोस ने कांग्रेस अधिवेशन के निकट ही

समझौता विरोधी सम्मेलन किया। बोस का विचार था कि युद्ध में धुरी शक्तियों की विजय होगी। रामगढ़ में उन्होंने नाजियों की प्रशंसा नही की लेकिन ऐसे अनेक नेताओं के उदाहरण दिए जिन्होंने निर्णायक रूप से काम किया था। इन नेताओं में उन्होंने लेनिन और मुसौलिनी का विशेष रूप से उल्लेख किया। इन दोनों नेताओं ने विश्व इतिहास की धारा बदल दी थी। सुभाष बोस ने कांग्रेस कार्यसमिति पर आरोप लगाया कि वह अनेक बार समय पर कार्यवाही करने से चूकी है। बोस के विचार से इस समय कार्यवाही करने का अवसर था लेकिन चूंकि गांधी जी इस बात के लिए तैयार नहीं थे, इसलिए कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती थी। जून, 1940 में बोस ने वर्धा जाकर गांधी जी से भेंट की। लेकिन गांधी जी बोस की दलीलों से प्रभावित नहीं हुए। इन दिनों बोस ने मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा के नेताओं से भी बातचीत की। लेकिन बोस को उनके विचार बहुत संकीर्ण लगे।

हालवेल सत्याग्रह

1940 के बीच में जर्मनी ने नार्वे, डेन्मार्क, हालैंड और फ्रांस पर हवाई हमले किए। इस समय सुभाष बोस ने हालवेल स्मारक को तोड़ने के लिए कलकत्ते में एक छोटा-सा सत्याग्रह किया। यह स्मारक अठारहवीं सदी के बीच में ब्लैक होल की दुर्घटना में हताहत व्यक्तियों की स्मृति में बनाया गया था। सुभाष बोस इस स्मारक को भारत के सम्मान के लिए कलंक मानते थे। उन्होंने 3 जुलाई, 1940 को स्वयं सत्याग्रहियों के पहले जत्थे का नेतृत्व करने का फैसला किया, लेकिन 2 जुलाई, 1940 को वे भारतीय रक्षा अधिनियम के मातहत गिरफ्तार कर लिए गए।

अगस्त प्रस्ताव

1940 के बीच ज्यों-ज्यों युद्ध की स्थिति ब्रिटेन के लिए खराब होती गई, ब्रिटिश सरकार को युद्ध में भारतीय नेताओं का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक प्रतीत होने लगा। डन्कर्क में ब्रिटिश सेना की पराजय और जर्मन हवाई बेड़े द्वारा परिचालित भयंकर हवाई हमलों के कारण इंगलैंड अपने इतिहास के सबसे नाजुक दौर से गुजर रहा था। चैम्बरलेन के स्थान पर चर्चिल ब्रिटेन के प्रधान मंत्री हो गए थे। कांग्रेस ने पुनः ब्रिटेन के साथ सहयोग करने के लिए दोस्ती का हाथ बढ़ाया। 7 जुलाई, 1740 के अपने प्रस्ताव में कार्यसमिति ने देश की रक्षा के लिए प्रभावशाली संगठन में पूरा-पूरा सहयोग देने का निश्चय किया। सहयोग के लिए कांग्रेस की दो शर्तें थीं : 1. पूर्ण स्वाधीनता के लिए भारत के अधिकार की स्वीकृति, और 2. तात्कालिक साधन के रूप में केंद्र में अस्थायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना।

सरकार ने कांग्रेस की मांगों का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। वायसराय ने अगस्त, 1940 में भारत की वैधानिक समस्या के बारे में कुछ प्रस्तावों की घोषणा की।

भारत को वचन दिया गया कि युद्ध की समाप्ति के पश्चात् भारत को औपनिवेशिक पद दे दिया जाएगा और भारतीय स्वयं ही अपने लिए संविधान बनाएंगे। जहां तक वर्तमान का संबंध था, वायसराय की बढ़ी हुई कार्यपालिका-परिषद में कुछ प्रतिनिधि भारतीयों को सम्मिलित करने और एक युद्ध सलाहकार परिषद की स्थापना करने का सुझाव दिया गया था।

अगस्त प्रस्ताव से कांग्रेस को कोई संतोष नहीं हुआ। गांधी जी के अनुसार उसने इंगलैंड और भारत के बीच की खाई को और चौड़ा कर दिया। जवाहरलाल नेहरू और सी० राजगोपालाचारी जैसे नेता भारत की प्रतिरक्षा में सरकार के साथ सहयोग करना चाहते थे। अगस्त प्रस्ताव से उनके प्रयत्नों को चोट पहुंची।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

महात्मा गांधी ने सीमित व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन शुरू किया। यह सरकार के प्रति नैतिक विरोध का प्रदर्शन थ। इस आंदोलन में अहिंसा के पालन पर विशेष जोर दिया गया था। गांधी जी ने कुछ चुने हुए कार्यकर्त्ताओं को ही सत्याग्रह करने की अनुमति दी थी। गांधी जी द्वारा छांटे गए सत्याग्रहियों में आचार्य विनोबा भावे का नाम सबसे ऊपर था।

क्रिप्स मिशन

दिसम्बर, 1941 में जापान लड़ाई में कूद पड़ा। इससे स्थिति पेचीदा बन गई। मित्र राष्ट्रों के लिए भारत का ऐच्छिक सहयोग प्राप्त करना नितांत आवश्यक हो गया। अमेरिका के लोकमत ने इंगलैंड के ऊपर प्रभाव डाला कि वह भारत के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करे। अमरीकी लोकमत के दबाव में पड़कर ब्रिटिश सरकार ने भारत के वैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजने का निश्चय किया। क्रिप्स योजना ने युद्ध के पश्चात भारत की स्वतंत्रता का वचन दिया लेकिन इसके साथ ही पिछले दरवाज़े से पाकिस्तान की स्थापना करने का प्रयास किया। पर इस योजना की एक कमी यह थी कि नई कार्यकारिणी परिषद के साथ उत्तरदायी मन्त्रिमंडल जैसा बर्ताव नहीं किया जाना था। इसके अलावा प्रतिरक्षा विभाग अंग्रेजों के नियंत्रण में ही रहना था। भारत के सभी राजनीतिक दलों ने क्रिप्स योजना को अस्वीकार कर दिया।

भारत छोड़ो आंदोलन

भारत में लोगों की आम धारणा यह थी कि क्रिप्स-प्रकरण जनता की आंखों में धूल झोंकने का एक प्रयत्न मात्र था। जिस ढंग से समझौते की बातचीत भंग हुई, उसने सारे देश में असंतोष की लहर पैदा कर दी। 8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस

कार्यसमिति ने 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास कर दिया और महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक प्रणाली से आंदोलन चलाने का निश्चय किया। अगले दिन सुबह कांग्रेस कार्यसमिति के सारे सदस्य गिरफ्तार कर लिए गए और सारे देश में कांग्रेस के प्रमुख नेताओं और कार्यकर्त्ताओं की धर-पकड़ शुरू हो गई। इससे जनता उत्तेजित हो गई और वह अपना संतुलन खो बैठी। उसने कुछ हिंसात्मक कार्यवाहियां की। सरकार ने अपना दमन-चक्र पूरे वेग से चलाया और खुले विद्रोह को दबाने में सफलता प्राप्त की। लेकिन भूमिगत आंदोलन कई महीनों तक चलता रहा।

सारांश

सुभाष बोस कांग्रेस के इक्यावनवें अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। यह अधिवेशन हरिपुरा, गुजरात में धूमधाम से हुआ।

सुभाष बोस ने अपने अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व के प्रायः सभी विषयों की चर्चा की। ऐसे कुछ मुख्य विषय थे– साम्राज्यों का उत्थान-पतन, उपनिवेशवाद और समाजवाद का संबंध, साम्राज्यवाद की 'फूट डालो और राज्य करो, नीति, ब्रिटिश साम्राज्य की संकटापन्न स्थिति, इंगलैंड की सामूहिक शक्ति का ह्रास, अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों के घात-प्रतिघात के संदर्भ में भारत की स्थिति, अल्पसंख्यकों की समस्या, स्वतंत्रता के बाद भी कांग्रेस की आवश्यकता, केंद्र में शक्तिशाली शासन की वांछनीयता, स्वतंत्र भारत का समाजवादी आधार पर पुनर्निर्माण, संपर्क भाषा, बढ़ती हुई आबादी, आर्थिक सुधारों की दिशा, भारतीय शासन अधिनियम, 1935 की आलोचना, पार्टी अनुशासन, कांग्रेस समाजवादी दल, स्वतंत्र भारत की विदेश नीति, अंतर्राष्ट्रीय संपर्क, प्रवासी भारतीय आदि। अपने भाषण के अंत में सुभाष बोस ने गांधी जी की सराहना की।

सुभाष बोस ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए एक योजना समिति के गठन का सुझाव दिया था। उनके आग्रह पर जवाहरलाल नेहरू इस समिति के अध्यक्ष बने और उन्होंने स्वतंत्रता मिलने पर भारत के आर्थिक विकास के बारे में प्रारम्भिक रूपरेखा तय की।

जुलाई, 1938 में मध्य प्रांत के मुख्य मंत्री एन० जी० खरे का कांग्रेस हाई कमान से मतभेद हो गया। सुभाष बोस ने कांग्रेस हाई कमान का साथ दिया और खरे को मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफा देना पड़ा।

सुभाष बोस मुस्लिम लीग के प्रति नरम रुख अपनाना चाहते थे। लेकिन कांग्रेस हाई कमान के दबाव के कारण वे ऐसा नहीं कर सके।

1938 में यूरोप की राजनीति नया मोड़ ले रही थी। बोस का विचार था कि यूरोप में शीघ्र ही गंभीर राजनीतिक संकट पैदा होगा। वे चाहते थे कि भारत इस संकट से

लाभ उठाए। उनका विचार था कि कांग्रेस ब्रिटिश सरकार को चेतावनी दे दे कि भारत को आज़ादी दी जाए। यदि सरकार इस चेतावनी पर ध्यान न दे तो कांग्रेस जन-आंदोलन छेड़ सकती है। यह आंदोलन अकेले गांधी जी ही छेड़ सकते थे और उनका विचार था कि देश अभी इस आंदोलन के लिए तैयार नहीं है।

1938 के अंत में बोस ने जर्मनी, इटली और जापान की सरकारों से संपर्क साधने शुरू किए। उनका विचार था कि शत्रु का शत्रु हमारा मित्र हो सकता है। जवाहरलाल नेहरू बोस के इस विचार से सहमत नहीं थे।

1938 के अंत में कांग्रेस-अध्यक्ष पद के लिए उम्मीदवार खोजे जाने लगे। बोस दुबारा कांग्रेस का अध्यक्ष बनना चाहते थे। गांधी जी को यह मान्य न था। उन्होंने आंध्र प्रदेश के डॉ० पट्टाभि रामय्या को कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए खड़ा किया। सुभाष बोस भी खड़े हुए और वे जीत गए। डॉ० पट्टाभि की हार को गांधी जी ने अपनी हार बताया। कांग्रेस कार्यसमिति ने उत्तर पद्रेश के पं० गोविन्द वल्लभ पंत का यह प्रस्ताव पारित किया कि कांग्रेस अध्यक्ष महात्मा गांधी की राय से कार्यसमिति का गठन करें। सुभाष बोस ऐसा न कर सके और अप्रैल 1939 में कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया।

मई, 1939 में सुभाष बोस ने कांग्रेस के अंतर्गत अपने एक नए दल फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की और सारे देश का दौरा किया। कांग्रेस कार्यसमिति ने प्रस्ताव पास किया कि सुभाष आगे के तीन वर्ष तक बंगाल कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष नहीं रहेंगे और न वे कांग्रेस की किसी निर्वाचित समिति के सदस्य हो सकेंगे। उस समय रवीन्द्र नाथ टैगोर ने सुभाष बोस का समर्थन किया और उन्हें 'देशनायक' कहा। गांधीजी की राय में सुभाष बोस बिगड़े बालक थे। सितम्बर, 1939 में विश्वयुद्ध आरंभ हुआ। वायसराय लार्ड लिन्लिथगो ने भारतीय नेताओं से परामर्श किए बिना ही भारत को ब्रिटेन की ओर से युद्ध ग्रस्त घोषित कर दिया। विरोध में प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने त्याग-पत्र दे दिए।

मार्च, 1940 में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में द्वि-राष्ट्र सिद्धांत की घोषणा की और भारतीय मुसलमानों के लिए एक पृथक् राज्य- पाकिस्तान- की मांग की। कांग्रेस ने इस मांग का विरोध किया लेकिन ब्रिटिश सरकार इसका प्रच्छन्न रूप से समर्थन करती रही।

जुलाई, 1940 में बोस ने कलकत्ता के हालवेल स्मारक को तोड़ने के लिए सत्याग्रह करने की घोषणा की लेकिन वे गिरफ्तार कर लिए गए।

अगस्त, 1940 में वायसराय ने भारत की वैधानिक समस्या के बारे में कुछ प्रस्तावों की घोषणा की लेकिन कांग्रेस ने उन्हें अस्वीकार कर दिया। महात्मा गांधी ने 1940 के अंत में व्यक्तिगत सत्याग्रह किया जो सरकार के प्रति नैतिक विरोध का

प्रदर्शन था। गांधी जी ने कुछ चुने हुए कार्यकर्त्ताओं को ही सत्याग्रह करने की अनुमति दी।

दिसम्बर, 1941 में जापान लड़ाई में कूद पड़ा। ब्रिटिश सरकार ने युद्ध में भारतीयों का ऐच्छिक सहयोग पाने के लिए सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा। क्रिप्स योजना ने युद्ध के पश्चात् भारत की स्वतंत्रता का वचन दिया लेकिन प्रच्छन्न रूप से पाकिस्तान की मांग भी स्वीकार कर ली। उसमें वर्तमान के लिए कुछ नहीं था। कांग्रेस ने क्रिप्स प्रस्ताव अस्वीकार कर दिए।

अगस्त, 1942 में महात्मा गांधी ने 'भारत छोड़ो', आंदोलन आरम्भ किया। कांग्रेस के सारे नेता गिरफ्तार कर लिए गए। सरकार ने दमन-चक्र चलाया लेकिन भूमिगत आंदोलन कई महीनों तक चलता रहा।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. सुभाष बोस कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर गांधी जी की प्रेरणा पर चुने गए थे। उनसे पहले दो साल तक 1936 और 1937 में जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष रहे थे। 1936 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में और 1937 मे बम्बई प्रेसीडेन्सी में फैज़पुर में हुआ था। दोनों अवसरों पर नेहरू को कांग्रेस के गाधीवादी गुट का पूरा समर्थन मिला था। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में नेहरू ने कांग्रेस के दक्षिणपंथी और वामपंथी गुटों के बीच का रास्ता अपनाया और दोनों को संतुष्ट रखा। सुभाष बोस द्वारा कांग्रेस अध्यक्ष पद पर निर्वाचित होने पर गांधी जी ने उन्हें बधाई का एक तार भेजा था जिसमें कहा था कि ईश्वर तुम्हे शक्ति दे कि तुम जवाहरलाल की जिम्मेदारी को संभाल सको। *Gandhi, Collected Works*, Vol. LXVI, p.346.
2. बोस 19 जनवरी, 1939 को इंगलैंड से भारत के लिए रवाना हुए। 19 जनवरी को वे प्राग में राष्ट्रपति बेनेस से मिलने के लिए रुके। लेकिन इस समय बेनेस स्वयं अपनी समस्याओ में उलझे हुए थे। वहां से सुभाष नेपिल्स गए और उन्होने 20 या 21 जनवरी, 1938 को रोम मे गुप्त रूप से मुसोलिनी से मिलने की कोशिश की। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि बोस की इस मौके पर मुसोलिनी से भेंट हुई या नहीं। Leonard A. Gordon, *Brothers Against the Raj : A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose*, p. 349.
3. विट्ठल नगर की भव्यता के बारे में निम्नलिखित विवरण उपलब्ध होता है :

   "A huge Nagar over an area 3/4th of a mile in breadth and two miles in length accommodating a residential population of more than 50,000 and a floating population of over two lacs, with all the convenience and comforts of a big city, like water works, drainage,

electricity, telegraphs, post, telephone, roads, etc. was constructed mainly from rafters, bamboos and the date-mats. An indented carpet wall, of course of bamboo mating, but looking like battlements of a fortified city, was constructed round the whole Nagar. Zaidi and Zaidi, *The Encyclopaedia of the Indian National Congress,* Vol. II, p.341.

यह अस्थायी शहर स्थानीय सरकारों, व्यापारियों और हजारो स्वयंसेवकों की मदद से तैयार हुआ था और इसका दस दिन तक निर्विघ्न उपयोग हुआ। इसके बाद इसे तोड़ दिया गया।

4. "He received a most cordial welcome from the rural folk of Gujrat. Seated in an ancient *rath* driven by 51 lusty bulls of Gujrat he was taken in procession through this new city... The procession took more than two hours to reach Vithal Nagar, a distance of only two miles from the point it started." Zaidi and Zaidi, *Th~ Encyclopaedia of the Indian National Congress,* Vol.II, p.346, Also Asoke Nath Bose, *My Uncle Netaji.* Calcutta, 1977, p.154.

5. हरिपुरा कांग्रेस में अध्यक्ष पद से दिए गए सुभाष बोस के भाषण के लिए देखिए: Verinder Grover, *Subhash Chandra Bose,* New Delhi, 1991, pp.277-302.

6. "When we take a bird's eye view of the entire panorama of human history, the first thing that strikes us is the rise and fall of empires. In the East as well as in the West, empires have invariably gone through a process of expansion and after reaching the zenith of prosperity, have gradually shrunk into insignificance and sometimes death. The Roman empire of the ancient times and the Turkish and Austro-Hungarian empires of the modern period are striking examples of this law. The empires in India— the Maurya, Gupta and the Mughal empires—are no exception to this rule. In the face of these objective facts of history, can anyone be so bold as to maintain that there is in store a different fate for the British Empire? The Empire stands today at one of the cross-roads of history. It will either go the way of other empires or it must transform itself into a federation of free nations. Either course is open to it. The Czarist empire collapsed in 1917 but out of its debris sprang the Union of Soviet Socialist Republics. There is still time for Great Britain to take a leaf out of Russian history. Will she do so." Presidential Address of Subhash Chandra Bose delivered at the 51st session of the Indian National Congress held on 19th February, 1938 at Haripura. Quoted in Verinder Grover(Ed.), *Subhash Chandra Bose,* pp.278-79.

7. "There is an inseparable connection between the capitalist ruling classes in Great Britain and the colonies abroad...The British aristocracy and bourgeoisie exist primarily because there are colonies and overseas depend to exist. The emancipation of the latter will undoubtedly strike at the very existence of the capitalist ruling classes in Great Britain and precipitate the establishment of a soicalist regime in that country." *Ibid*, p. 279.

8 "It is a well-known truism that every empire is based on the policy of divide and rule. But I doubt if any empire in the world has practiced this policy so skilfully, systematically and ruthlessly as Great Britain. In accordance with this policy, before power was handed over to the Irish people, Ulster was separated from the rest of Ireland. Similarly, before any power is handed over to the Palestinians, the Jews will be separated from the Arabs. An internal partition is necessary in order to neutralize the transference of power." *Ibid.*, pp. 279-80.

9. "The British Empire at the present is suffering from strain at a number of points. Within the empire in the extreme West there is Ireland and in the extreme East, India. In the middle lies Palestine with the adjoining countries of Egypt and Iraq. Outside the empire there is the pressure enerted by Italy in the Mediterranean and Japan in the Far East, both of these countries being militant, aggressive and imperialist. Against this background of unrest stands Soviet Russia whose very existence strikes terror into the hearts of the ruling classes in every Imperialist State. How long can the British Empire withstand the cumulative effect of this pressure and strain." *Ibid.*, pp.280-81.

10. "Today, Britain can hardly call herself 'the Mistress of the Seas.' Her phenomenal rise in the 18th and 19th centuries was the result of her sea power. Her decline as an empire in the 20th century will be the outcome of the emergence of a new factor in the world history— Air Force." *Ibid.*, p.281.

11. "Amid this interplay of world forces India emerges much stronger than she has ever been before. Ours is a vast country with a population of 350 millions. Our vastness in area and in population has hither to been a source of weakness. It is today a source of strength if we can only stand united and boldly face our rulers." *Ibid.*, p.281.

12 "From the standpoint of Indian unity the first thing to remember is that the diversion between British India and the Indian States is an entirely artificial one. India is one and the hopes and aspirations of

the people of British India and of the Indian States are identical." *Ibid.*

13. "Our goal is that of an independent India and in my view that goal can be attained only through a federal republic in which the provinces and the States will be willing partners. The Congress has time and again offered its symnpathy and moral support to the movement carried on by the States' subjects for the establishment of democratic government in what is known as Indian India." *Ibid* pp. 381-82.

14. "The Congress has solemnly and repeatedly declared its policy in regard to the rights of the minorities in India and has stated that it considers its duty to protect there rights and ensure the widest possible scope for the development of these minorities and their participation in the fullest measure in the political, economic and cultural life of the nation. The objective of the Congress is an independent and united India where no class or group or majority or minority may exploit another to its own advantage, and where all the elements in the nation may cooperate together for the common good and the advancement of the people of India. This objective of unity and mutual cooperation in a common freedom does not mean the suppression in any way of the rich variety and cultural diversity of Indian life, which have to be preserved in order to give freedom and opportunity to the individual as well as to each group to develop unhindered according to its capacity and inclination." *Ibid.*, p.282.

15. अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने अक्तूबर, 1937 में अपनी कलकत्ते में आयोजित बैठक में मूल अधिकारों के संबंध में एक प्रस्ताव पास किया था। उस प्रस्ताव के पाठ के लिए देखिए, *Ibid*, pp.282-84.

16. "We are fighting Great Britain and we want the fullest liberty to determine our future relations with her. But once we have real self-determination, there is no reason why we should not enter into the most cordial relations with the British people." *Ibid.* p. 286.

17. "The party that wins freedom for India should be also the party that will put into effect the entire programme of post-war reconstruction. Only those who have non power can handle it properly." *Ibid.* p. 286.

18. "I have no doubt in my mind that our chief national problems relating to the eradication of poverty, illiteracy and disease and to scientific production and distribution can be effectively tackled only along socialist lines." *Ibid.*, p. 287.

19. *Ibid.*

20. *Ibid.*

21. *Ibid.*, pp. 287-88.

22. *Ibid.*, pp. 288-89.

23. *Ibid.*

24. *Ibid.*, p.290.

25. *Ibid.*, p. 291.

26. *Ibid.*, pp.292.

27. *Ibid.*, pp. 297-98.

28. *Ibid.*, p. 298-99.

29. Ibid., pp. 299-301.

30. "In conclusion, I shall voice your feelings by saying that all India fervently hopes and prays that Mahatma Gandhi may be spared to our nation for many many years to come. India can not afford to lose him and certainly not at this hour. We need him to keep our people united. We need him to keep our struggle free from bitterness and hatred. We need him for the course of Indian independence. What is more, we need him for the cause of humanity." *Ibid.*, p. 302.

31. Leonard A. Gordon, *Brothers Against The Raj— A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose*, p. 355.

32. "...the Executive Council of the All India Muslim League... is fully convinced that the Muslim League is the only authoritative and representative political organisation of the Musalmans of India." M.A. Jinnah, quoted in Zaidi and Zaidi, *Encyclopaedia of Congress*, Vol.11, p. 487.

33. "Bose felt that the Congress right wing was shortsightedly opposing his position. He also realized that even through he was Congress and BPCC President, he was still an outsider to the Gandhi group which controlled the Congress." Leonard A. Gordon.*Brothers Against the Raj--A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose*, p. 368.

34. *Ibid.*, p.370.

35. *Ibid.*, p.371.

36. *Ibid.*

37. "Shri Subhash Bose has achieved a decisive victory...And since I was instrumental in inducing Dr.Pattabhi not to withdraw...the

defeat is more mine than his. It is plain to me that the delcgates do not approve of the principles and policy for which I stand." *Gandhi Collected Works*, Vol.LXVIII. pp. 359-60. यह वक्तव्य मूलतः 4 फरवरी, 1939 के *हरिजन* में प्रकाशित हुआ था।

38. "I do not know what...opinion Mahatma Ji has of me. But whatever his view may be, it will always be my aim and object to try and win his confidence for the simple reason that it will be a tragic thing for me if I succeed in winning the confidence of other people but fail to win the confidence of India's greatest man." Subhash Chandra Bose, Quoted in Leonard A. Gordon, p. 375.

39. Leonard A. Gordon, pp. 376-77.

40. *Ibid.*, pp. 378.

41. Subhash Chandra Bose, *Crossroads* letter dated March 31, 1939, p.154.

42. "I have watched the town that witnessed the beginning of your political *'Sadhana'*. In that uncertain twilight there had been misgivings in my heart and I had hesitated to accept you for what you are now...Today you are revealed in the pure light of midday sun which does not admit of apprehensions you have come to absorb varied experience during these years. Today you bring your matured mind and irresponsible vitality to bear upon the work at hand your strength has surely been taxed by imprisonment, banishment and disease, but rather than imparing, these have helped to broaden your sympatheis — enlarging your vision so as to enhance the vast perspectives of history beyond any narrow limits of territory." Rabindranath Tagore, quoted in *Preface, Crossroads*. Compiled by Netaji Research Bureau, Calcutta, Bombay, 1962, p. IV.

43. Gandhi, *Collected Works*, Vol. XXI, p.94. Letter to C.F. Andrews, January 15, 1940.

44. C.H. Philips, H.L. Singh. B.N. Pande eds. *The Evolution of India and Pakistan 1858 to 1947. Select Documents,* London, Oxford University Press, 1962, pp. 354-55.

11

आज़ाद हिंद फौज़ तथा पूर्णाहुति

सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन अपने उद्देश्य में विफल हुआ। कांग्रेस के सभी नेताओं को जेल में डाल दिया गया। लेकिन इससे भारत का स्वतंत्रता-संग्राम रुका नहीं। अब वह भारत के बाहर लड़ा जाने लगा। इस आंदोलन के नेता सुभाषचन्द्र बोस और उनकी आज़ाद हिंद फौज़ थी। सुभाष बोस ने जापानी सेना की सहायता से भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई। यह सुभाषचन्द्र बोस के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था। अपने लक्ष्य में विफल होने पर भी सुभाषचन्द्र बोस और उनकी आज़ाद हिंद फौज़ ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम में निर्णायक योग दिया। यह दूसरे विश्वयुद्ध का एक रोचक अध्याय है।

सुभाष बोस की मुश्किलें

बोस कांग्रेस के दो बार अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। दूसरी बार वे गांधी जी के विरोध के बावजूद कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे। गांधी जी ने अपने मनोनीत उम्मीदवार डा० पट्टाभि रामय्या की हार को अपनी हार बता कर सुभाष बोस के लिए मुश्किलें पैदा कर दीं। कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं ने बोस की कार्यसमिति से त्याग पत्र दे दिया। विवश होकर बोस को स्वयं कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से त्यागपत्र देना पड़ा और उन्होने अलग से अपनी फारवर्ड ब्लाक नामक पार्टी बनाई।

गिरफ्तारी

ब्रिटिश सरकार सुभाष बोस को खतरनाक क्रांतिकारी समझती थी। उसने 2 जुलाई, 1940 को भारतीय रक्षा नियम की धारा 129 के अधीन बोस को गिरफ्तार कर

लिया। सरकार ने उनके ऊपर फौजदारी के दो मुकदमे पहले से चला रखे थे। बोस ने भूख हड़ताल करने का निश्चय किया और 26 नवंबर, 1940 को बंगाल के गवर्नर को एक पत्र लिखा। पत्र में अन्य बातों के साथ ये दो वाक्य भी थे।

"राष्ट्र को जीवित रखने के लिए व्यक्ति का मरना जरूरी है। आज मेरा मरना जरूरी है जिससे कि भारत स्वतंत्रता तथा गौरव प्राप्त कर सके।"[1]

बोस ने 29 नवंबर, 1940 को अपना उपवास आरम्भ कर दिया। कुछ ही दिनों में उनकी हालत बिगड़ने लगी। सरकार घबरा गई। उसने 5 दिसम्बर, 1940 को उन्हें जेल से मुक्त कर दिया।

पलायन

जेल से मुक्त होने पर बोस कलकत्ते में एल्गिन रोड पर स्थित अपने पैतृक घर में चुपचाप रहने लगे। घर पर पुलिस की कड़ी निगरानी थी। पुलिस ने उन्हें अंतिम बार 16 जनवरी, 1941 को देखा था। इसके दस दिन बार खबर उड़ी कि वे अपने घर पर नहीं है। सुभाष बोस का इस तरह अंतर्ध्यान होना आश्चर्य की बात थी।

सुभाष बोस 5 दिसम्बर, 1940 को जेल से रिहा हुए थे। 16 जनवरी, 1941 तक वे अपने घर पर देश से बाहर निकल भागने की योजना बनाते रहे। उन्होंने अपनी दाढ़ी बढ़ा ली और एक पठान का वेष धारण किया। अपना नाम रखा जिआउद्दीन। 17 जनवरी, 1941 की रात को एक बज कर 25 मिनट पर वे अपने घर से बाहर निकले। वे कार से गोमह तक गए। उन्हें घर से गोमह तक कार में उनके भतीजे शिशिर कुमार बोस ले गए थे।[2] गोमह से सुभाष ट्रेन द्वारा पेशावर पहुंचे। पेशावर से वे जमरूद गए। वहां से उन्होंने भारत की सीमा पार की और वे जलालाबाद के रास्ते काबुल पहुंचे। यह यात्रा उन्होंने कुछ तो पैरों से चल कर तय की, कुछ तांगे पर और कुछ बस या ट्रक पर। इसके बाद वे एक इटालियन पासपोर्ट पर रूस पहुंचे। उनका इटालियन नाम था ओर्लांडो मजोटा। 28 मार्च, 1941 को वे विमान द्वारा मास्को से बर्लिन पहुंच गए। बोस की कलकत्ते से बर्लिन तक की यात्रा ऐतिहासिक यात्रा है।[3] इस घटना से प्रायः तीन सौ साल पहले शिवाजी मुगल सम्राट् औरंगज़ेब की कैद से निकल भागे थे।

सुभाष बोस जर्मनी में

बर्लिन में हिटलर के एक उच्च अधिकारी रिबेनट्राप ने सुभाष बोस का स्वागत किया। बोस ने रिबेनट्राप के सामने तीन प्रस्ताव रखे :

1. सुभाष बर्लिन रेडियो से ब्रिटिश विरोधी भाषण दें।
2. जर्मनी में जो भारतीय युद्धबंदी हैं, सुभाष उनमें से आज़ाद हिंद के दस्ते

तैयार करें।

3. धुरी शक्तियां संयुक्त रूप से भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा कर देंगी।

जर्मनी और इटली पहले दो प्रस्तावों पर तो सहमत हो गए पर वे तीसरे प्रस्ताव पर राजी नहीं हुए। 22 जून, 1941 को जर्मनी ने रूस के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इसके बाद भारतीय सैनिक दस्तों के संगठन का काम तेजी से चलने लगा। इस बीच बोस ने रोम और पेरिस मे स्वतंत्र भारत केंद्रों की स्थापना की और 3,000 भारतीय सिपाहियों की एक टुकड़ी तैयार कर ली।

दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय

1941 मे पूर्व में लड़ाई छिड़ने पर पूर्वी प्रदेशों में प्रवासी भारतीयों की स्थिति संकटापन्न हो गई। जो देश यूरोपीय शक्तियों की परतंत्रता से स्वतंत्र हुए, वहां के भारतीयों ने अपने अलग संघ बनाए। इन संघों के दो उद्देश्य थे : एक, वे भारत के स्वतंत्रत-सग्राम में अपनी ओर से मदद देना चाहते थे। दो, वे बीच के संक्रांतिकाल में प्रवासी भारतीयों के हितों की रक्षा करना चाहते थे। इस तरह के सघ शहर-शहर और गांव-गांव में बन गए। इन संघों से ही इंडियन इंडेपेंडेंस लीग के विचार का जन्म हुआ। ये संघ अपने आपको इंडियन इंडेपेंडेंस लीग की शाखाएं समझते थे। भारत के महान क्रांतिकारी रासबिहारी बोस ने इस विचार को निश्चित रूप दिया। वे जून, 1915 में भारत से जापान भाग गए थे। जापान में उन्होंने एक जापानी लड़की से शादी कर ली और वे जापानी नागरिक बन गए। लेकिन वे अपनी मातृभूमि की मुक्ति के लिए निरंतर कार्य करते रहे। उनके प्रयत्नों से 28 से 30 मार्च, 1942 तक भारत की राजनीतिक समस्या पर विचार करने के लिए टोकियो में एक सम्मेलन हुआ।

टोकियो सम्मेलन में भारत की राष्ट्रीय सेना बनाने के संबंध में प्रस्ताव पास हुआ। उसमें यह भी तय हुआ कि जून, 1942 मे बैंगकोक मे भारतीयों का एक प्रतिनिधिक सम्मेलन आयोजित किया जाए। तदनुसार 15 से 23 जून, 1942 तक बैंगकोक में प्रवासी भारतीय प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन हुआ। इसमें बर्मा, मलाया, थाइलैड, हिंदचीन, फिलिप्पाइन्स, जापान, चीन, बोर्नियो, जावा, सुमात्रा, होंगकोंग और अंदमान के 100 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। रास बिहारी बोस इस सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। रासबिहारी बोस ने तिरंगा झंडा फहराया और इडियन इडेपेंडेस लीग का विधिवत उद्‌घाटन किया। इस संस्था का एक संविधान भी बना। लीग का उद्देश्य था- भारत की तत्काल स्वतंत्रता। सम्मेलन ने कुल 35 प्रस्ताव पास किए। इन प्रस्तावों में एक यह था कि सुभाष बोस को पूर्वी एशिया में आने का आमंत्रण दिया जाए।

इसी बीच भारत की राष्ट्रीय सेना के निर्माण की तैयारी शुरू हो गई थी। जब दिसम्बर, 1941 में जापानियों ने उत्तर मलाया पर आक्रमण किया और ब्रिटिश सेना को

पराजित किया, तब कैप्टेन मोहनसिंह और उनके कुछ सहयोगियों ने जापानी सेना के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। उनकी ज्ञानी प्रीतम सिंह नामक एक संत से भेंट हुई। ज्ञानी प्रीतमसिंह कैप्टेन मोहनसिंह को बैंगकोक ले गए।

ज्ञानी प्रीतम सिंह और जापानी सैनिक अधिकारी फ्यूजीहारा ने कैप्टेन मोहनसिंह को प्रेरणा दी कि वे भारत की आज़ादी के लिए काम करें। मोहनसिंह ने उनकी बात मान ली। 15 फरवरी, 1942 को सिंगापुर का पतन हुआ। ब्रिटिश सरकार की ओर से कर्नल हंट ने 40,000 भारतीय युद्धबंदी जापानी सरकार के प्रतिनिधि मेजर फ्यूजीहारा को सौंप दिए। मेजर फ्यूजीहारा ने ये प्रतिनिधि कैप्टेन मोहनसिंह को सौप दिए। कैप्टेन मोहन सिंह ने इन युद्धबंदियों में से इंडियन नेशनल आर्मी या आज़ाद हिंद फौज़ का निर्माण किया। आज़ाद हिंद फौज़ का काम यह था कि वह जापानी सेना के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अंग्रेजों की सेना से लड़ेगी और अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करेगी। अगस्त, 1942 के अंत तक करीब चालीस हजार युद्धबंदी आज़ाद हिंद फौज़ में शामिल हो गए। कई और नौजवान भी जिन्हें पहले कोई सैनिक प्रशिक्षण नहीं मिला था, आज़ाद हिंद फौज़ में शामिल हो गए। उनके प्रशिक्षण के लिए सैनिक शिविर खोले गए।

कैप्टेन मोहनसिंह ने बैंगकोक सम्मेलन में भाग लिया था। बैंगकोक सम्मेलन ने आजाद हिंद फौज़ तथा एक कार्य-परिषद के गठन के बारे में प्रस्ताव पास किए थे।[4]

रास बिहारी घोष को इंडियन इंडेपेंडेस लीग का अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। कैप्टेन मोहनसिंह प्रस्तावित इंडियन नेशनल आर्मी के प्रधान सेनापति नियुक्त किए गए। 1 सितम्बर, 1942 को इंडियन नेशनल आर्मी अथवा आज़ाद हिंद फौज की विधिवत स्थापना की गई। आई० एन० ए० के आदमियों के प्रशिक्षण का प्रबंध किया गया। सिपाहियों को शारीरिक प्रशिक्षण के साथ ही बौद्धिक प्रशिक्षण भी दिया गया। इस प्रशिक्षण के अंतर्गत उन्हें भारतीय इतिहास की जानकारी दी गई। अंग्रेजी शासन में भारत की क्या दुर्दशा हुई है, इस पर विशेष जोर दिया गया। सिपाहियों को प्रेरणा दी गई कि विदेशी शासन से मातृभूमि को मुक्त करना उनका पुनीत कर्त्तव्य है। सिपाहियों के तीन मंत्र थे– एकता, विश्वास, और बलिदान।

सुभाष बोस एशिया में

सुभाष बोस ने बैंगकोक सम्मेलन का निमंत्रण स्वीकार कर लिया और वे अपने एक सहयोगी आबिद हुसैन के साथ 8 फरवरी, 1943 को जर्मनी से सुदूर पूर्व के लिए चल पड़े। भारी जोखिम उठाकर और समुद्र के रास्ते जापानी पनडुब्बियों में यात्रा करते हुए सुभाष बोस मई में सुमात्रा पहुंचे।

यूरोप की अपेक्षा एशिया मे उन्हें अधिक आत्मीयता का अनुभव हुआ। वे जापान के एक सैनिक अधिकारी यामामोटो के साथ हवाई जहाज से टोकियो गए जहां उन्होंने जापान के अनेक मंत्रियो, सेना अधिकारियों तथा प्रधानमंत्री तोजो से भेंट की। उनकी तोजो से पहली भेंट 10 जून, 1943 को हुई और तोजो उनसे प्रभावित हुए। 16 जून, 1945 को सुभाष ने जापानी संसद की कार्यवाही देखी। तोजो ने संसद को सूचना दी कि जापान भारतीय स्वतंत्रता के लिए हर संभव प्रयत्न करेगा।[5]

कुछ दिनों बाद सुभाष बोस ने एक संवाददाता-सम्मेलन में भाषण दिया। इस सम्मेलन में 60 पत्रकार उपस्थित थे। बोस ने अपने भाषण में स्पष्ट किया कि यदि धुरी शक्तियां विजयी होती हैं, तो भारत को अपनी खोई हुई स्वतंत्रता मिल जाएगी। लेकिन भारतीयों को अपनी स्वतंत्रता खुद अपना खून बहा कर प्राप्त करनी है।[6]

इस संवाददाता-सम्मेलन के बाद बोस ने टोकियो रेडियो से प्रतिदिन भाषण देना शुरू कर दिया। यह क्रम युद्ध के अत तक चलता रहा। इन प्रसारणों में सुभाष ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष की अनिवार्यता पर बल दिया। उन्होंने भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया लेकिन कहा कि उनकी नीति से भारत स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहा है।

2 जुलाई, 1943 को सुभाष बोस टोकियो से सिंगापुर गए। वहां आज़ाद हिंद फौज़ के अधिकारियों ने उनका स्वागत किया। कर्नल प्रेम सहगल को लगा कि सचमुच में ईश्वर ही उनके बीच आ गए है। प्रेम सहगल सुभाषचन्द्र बोस के सैनिक सचिव बन गए।

दो दिन बाद अर्थात् 4 जुलाई, 1943 को रासबिहारी बोस ने सिंगापुर के कैथे थियेटर में एक सार्वजनिक सभा की और सुभाष बोस का जनता से परिचय कराया। उन्होंने पूर्वी एशिया में इंडियन इंडेपेंडेंस लीग की अध्यक्षता भी सुभाष बोस को सौंप दी।[7] इंडेपेंडेंस लीग के अध्यक्ष-पद के लिए सुभाष का निर्वाचन नहीं हुआ था। अपने भाषण में सुभाष बोस ने स्वतंत्र भारत की अंतरिम सरकार बनाने का विचार व्यक्त किया। कुछ दिनो बाद उन्होंने सेना को *दिल्ली चलो* नारा दिया। आज़ाद हिंद फौज का निरीक्षण करने के लिए जापान के प्रधानमंत्री तोजो को भी आमंत्रित किया गया। अर्थात् सुभाष बोस ने सेना की समग्र लामबंदी का आह्वान किया।

सुभाष बोस ने आज़ाद हिंद फौज़ में स्त्रियों की भी एक रेजीमेंट बनाने का निश्चय किया। उन्होंने स्त्री रेजीमेंट का नाम 1857 की वीरांगना रानी झांसी के नाम पर रखा और उसका प्रधान लक्ष्मी स्वामिनाथन को बनाया। इस रेजीमेंट में 1000 स्त्री-सैनिक थे। उन्हें विधिवत् प्रशिक्षण दिया गया। जो योग्य थीं, उन्हें युद्ध क्षेत्र में

भेजा गया। शेष को नर्सिंग के काम में लगाया गया। सुभाष बोस इन महिला सैनिकों के मां-बाप सब कुछ थे। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव तिलस्मी था।[8]

सर्वोच्च सेनापति

सुभाषचन्द्र बोस आज़ाद हिंद फौज़ के सर्वोच्च सेनापति बन गए। उन्होंने कोई सैनिक पदवी ग्रहण नहीं की। उन्होंने नागरिक वेष-भूषा त्याग दी और वे सैनिक पोशाक पहनने लगे। इस समय आज़ाद हिंद फौज के सिपाहियों की संख्या 12,000 थी। सुभाष की वक्तृत्व कला से प्रभावित होकर 10,000 युद्धबंदी उसमें और आ मिले। 1943 और 1945 के बीच प्राय : 18,000 सिविलियन आज़ाद हिंद फौज़ में भर्ती हुए। लगता है कुल मिलाकर सैनिकों की संख्या 40,000 हो गई थी। सुभाष बोस सेना की तीन डिवीज़न और 50,000 सैनिक चाहते थे। इन लोगों के पास भारी तोपखाना या वायु बल नहीं था। ये छोटे हथियारों से गुरिल्ला युद्ध कर सकते थे। सैनिकों के प्रशिक्षण के लिए मलाया और बर्मा में केंद्र खोले गए।

जापानी चाहते थे कि आज़ाद हिंद फौज़ जापान की लड़ाकू फौज़ के साथ रह कर प्रचार का कार्य करे। सुभाष बोस इसके लिए तैयार नहीं हुए। उनका कहना था कि भारत अभियान के समय आज़ाद हिंद फौज़ सबसे आगे रहेगी। जैसे ही नेताजी के नेतृत्व में आज़ाद हिंद फौज़ हिंदुस्तान पहुंचेगी, हिंदुस्तान की जनता ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर देगी। जापानियों के मन में इतना आशावाद न था।

अंतरिम सरकार

सुभाष बोस ने 21 अक्तूबर, 1943 को अंतरिम सरकार की घोषणा की। इस सरकार का प्रधान कार्यालय सिंगापुर में था और इसमें पांच मंत्री, आठ आज़ाद हिंद फौज़ के प्रतिनिधि और आठ दक्षिण पूर्वी तथा पूर्वी एशिया में रहने वाले भारतीयों के प्रतिनिधि थे। सुभाष बोस इस सरकार के अध्यक्ष, प्रधान मंत्री और सर्वोच्च सेनापति थे। अन्य चार मंत्री थे : कैप्टेन लक्ष्मी स्वामिनाथन (स्त्री संगठन), एस० ए० अय्यर(प्रचार), लैफ्टेनैंट कर्नल ए० सी० चटर्जी (वित्त) और ए० एम० सहाय (सचिव)। 23 अक्तूबर, 1943 को जापान की सरकार ने आज़ाद हिंद की अंतरिम सरकार को मान्यता दे दी। बाद में जर्मनी, इटली, क्रोशिया, मांचुको, नानकिंग, फिलिप्पाइन, थाईलैंड और बर्मा ने भी आज़ाद हिंद सरकार को मान्यता प्रदान की। आयरलैंड के राष्ट्रपति एमान डी० वलेरा ने सुभाष बोस को व्यक्तिगत रूप से बधाई भेजी। अगले दिन अर्थात् 24 अक्तूबर, 1943 को आज़ाद हिंद सरकार ने ब्रिटेन और अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सिंगापुर में 50,000 भारतीयों की सभा में सुभाष बोस ने कहा कि यह निर्णायक युद्ध होगा और इसमें विजय निश्चित रूप

से आज़ाद हिंद फौज़ की होगी। उन्होने भारतीयों से त्याग और बलिदान की अपील की और जनता ने 'नेताजी की जय', 'इन्कलाब जिंदाबाद' तथा 'दिल्ली चलो' जैसे नारों से जवाब दिया।

जिस समय सुभाष बोस सिंगापुर में थे, उन्होंने वहां के रामकृष्ण मिशन से संपर्क स्थापित कर लिया था और वे अकसर वहां जाकर ध्यान किया करते थे।

5 और 6 नवंबर, 1943 को जापान ने टोकियो में बृहत्तर पूर्वी एशिया सम्मेलन किया। बोस ने इस सम्मेलन मे भाग लिया। बोस ने जापानी प्रधानमंत्री तोजो से प्रार्थना की कि जापान के नियंत्रण में भारत की जो भूमि है, वह आज़ाद हिंद सरकार को दे दी जाए। इस समय अंदमान और निकोबार द्वीपों पर जापान का अधिकार था। जापान की नौसेना सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इन द्वीपों का नियंत्रण आज़ाद हिंद सरकार के हाथो में देने के लिए तैयार न थी। बीच का रास्ता यह निकाला गया कि औपचारिक रूप से तो इन द्वीपों का नियंत्रण आज़ाद हिंद सरकार को सौंप दिया गया लेकिन उन पर वास्तविक नियंत्रण जापान की सेना का बना रहा। जापान की सेना ने लोगों के ऊपर अत्याचार भी किए जिससे सुभाष बोस की बदनामी हुई। सुभाष बोस ने इन द्वीपों को नए नाम दिए– शहीद द्वीप और स्वराज द्वीप।

बंगाल का अकाल

जिन दिनों बोस दक्षिण एशिया में आज़ाद हिंद फौज़ के संगठन में लगे हुए थे, 1943 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा जिसमें लाखों लोग भूख से मर गए। साल के अंत में सुभाष बोस की माता प्रभावती देवी का निधन हो गया।

आज़ाद हिंद फौज़ की स्थिति

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा उनके अनुयायी यह अच्छी तरह समझते थे कि उनका मुख्य कार्य भारत को अंग्रेजों के चंगुल से आज़ाद कराना है। इसके लिए उन्होंने आज़ाद हिंद फौज़ को सब तरह से तैयार किया। नेताजी ने दक्षिण-पूर्वी एशिया में जापान के प्रधान सेनापति फील्ड मार्शल काउंट तेराची के सामने यह प्रस्ताव पेश किया कि जब जापान इम्फाल पर हमला करेगा, तब आज़ाद हिंद फौज़ भी युद्ध में भाग लेगी। इस पेशकश पर दोनों में कुछ मतभेद पैदा हो गया। जापानी सेनापति को आज़ाद हिंद फौज़ की सैनिक कुशलता में विश्वास नहीं था। उनका विचार था कि भारत की आज़ादी के लिए जापान की सेना युद्ध करे तथा सुभाष बोस और उनके साथी भारतीय जनता का सहयोग तथा सद्भावना प्राप्त करने का प्रयत्न करे। इसके अतिरिक्त उनका यह भी कहना था कि आज़ाद हिंद फौज़ का मुख्य भाग सिंगापुर में ही रहे तथा जासूसी और प्रचार का कार्य करने वाले गुट जापानी सेना के साथ

प्रदेश पर शासन करेगी।

जापानी इम्फाल पर जल्दी से जल्दी कब्जा कर लेना चाहते थे। लेकिन प्रशांत सागर में अमरीका की फौज़ आ जाने से जापान को भारत-बर्मा सीमा से अपनी फौज़ हटा कर प्रशांत की ओर भेजनी पड़ी। ब्रिटेन की फौज़ बड़ी तादाद में भारत-बर्मा सीमा पर आ गई। बरसात भी अपेक्षाकृत जल्दी शुरू हो गई। जिसके कारण मोर्चे पर लड़ने वाली जापान की सेना और आज़ाद हिंद फौज़ को रसद तथा सैनिक सहायता नहीं पहुंच सकी। इस स्थिति में उसे पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा।

अंग्रेजों ने 1944 के जाड़ों में प्रति-आक्रमण आरम्भ किया। वे अराकान पार कर बर्मा की ओर बढ़ते गए। उन्होंने मई, 1945 में रंगून पर अधिकार कर लिया। और जापान तथा आज़ाद हिंद फौज़ के सिपाहियों को निहत्था कर बंदी बना लिया। इस तरह सुदूर पूर्व में भारत के स्वतंत्रता-संग्राम का अंत हो गया।[11]

जापान और आज़ाद हिंद फौज़ की पराजय

जापान और आज़ाद हिंद फौज़ की मिली-जुली सेना ने 1945 में इम्फाल और कोहिमा की ओर से भारत पर आक्रमण किया लेकिन सैनिक संख्या और रसद के अभाव के कारण वह आगे बढ़ने में सफल न हो सकी और उसे पीछे हटना पड़ा। आज़ाद हिंद फौज़ के जनरल शाहनवाज़ ने इसके लिए अधिकारियों को उत्तरदायी ठहराया है।[12]

युद्ध में पराजित होने पर जापानी फौज़ ने आत्म-समर्पण का निश्चय किया। सुभाष चन्द्र बोस नहीं चाहते थे कि आज़ाद हिंद फौज़ आत्म-समर्पण करे। उनकी इच्छा थी कि आज़ाद हिंद फौज़ के सिपाही लड़ते-लड़ते शहीद हो जाएं और अपने पीछे वीरता की एक ऐसी गाथा छोड़ जाएं कि आगे की पीढ़ियां उन पर गर्व कर सकें।[13]

सुभाष बोस के उत्साह के बावजूद युद्ध का रुख जापान तथा आज़ाद हिंद फौज़ के लिए प्रतिकूल होता गया। अंत में उन्हें पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा। 1944 के उत्तरार्ध तथा 1945 के शुरू में जापान तथा आज़ाद हिंद फौज़ बर्मा, मलाया तथा सिंगापुर में पीछे हटती गई। अक्टूबर 1944 में जापान के प्रधानमंत्री तोजो अपदस्थ हो गए। सुभाष जापानी सरकार से और अधिक सैनिक सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से जापान गए लेकिन जापानी सरकार युद्ध के प्रतिकूल रुख को देखते हुए हतोत्साहित थी और आज़ाद हिंद फौज़ को सहायता देने की स्थिति में नहीं थी। सुभाष बोस ने टोकियो में सोवियत राजदूत से संपर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया लेकिन वे सफल न हो सके। 1944 के अंत में बोस शंघाई के रास्ते से बर्मा वापस लौट आए। साधनों की कमी के बावजूद आज़ाद हिंद फौज़ ने लड़ाई जारी रखी। मई, 1945 में

आज़ाद हिंद फौज़ ने आत्म-समर्पण कर दिया।

उधर यूरोप में भी मित्र-राष्ट्रों का जर्मनी के ऊपर शिकंजा कड़ा होता गया। 7 मई, 1945 को हिटलर की आत्महत्या के बाद जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। जापान ने लड़ाई जारी रखी लेकिन 6 अगस्त, 1945 को हीरोशिमा पर और 9 अगस्त, 1945 को नागासाकी पर अमरीका ने एटम बम गिराए। इससे जापान की कमर टूट गई और 10 अगस्त, 1945 को उसने आत्म-समर्पण कर दिया। इसी समय मित्र राष्ट्रों की ओर से सोवियत रूस ने सुदूर पूर्व में प्रवेश किया। बोस ने जापान सरकार से सोवियत रूस जाने की अनुमति चाही। बोस ने सिंगापुर में आज़ाद हिंद फौज के लिए एक श्रद्धांजलि स्तम्भ बनवाया।[14]

नेताजी की मृत्यु

सुभाष बोस को मलाया में जापान के पूर्ण आत्म-समर्पण की सूचना मिली। वे 16 अगस्त, 1945 को बैंगकोक गए और 17 अगस्त को साइगोन पहुंचे। यहां उन्होंने अपने कई विश्वस्त अधिकारियों से बात की। इनमें कर्नल हबीबुर रहमान, कर्नल प्रीतम सिंह, कर्नल गुलजारा सिंह, मेजर आबिद हसन, देवनाथ दास तथा एस० ए० अय्यर मौजूद थे। बोस तथा कर्नल हबीबुर एक विमान से ताईपेई गए। बोस ने जापानी अधिकारी नेगिशी को बताया कि वे रूसी सेना के आगे आत्म-समर्पण कर देंगे। फिर रूस उनके साथ जैसा चाहे व्यवहार करे। बोस का विचार था कि रूसी ही अंग्रेजो का सामना कर सकते है। विमान ने 17 अगस्त, 1945 शाम को 5 और 5.30 बजे के बीच उड़ान भरी। विमान ने विएतनाम के हवाई अड्डे तुराने में रात गुजारी। विमान ने अगले दिन अर्थात् 18 अगस्त, 1946 को सुबह पांच बजे फिर ताइपेई के लिए उड़ान भरी। छह-सात घंटे बाद विमान ताइपेई पहुंच गया। वहां यात्रियों ने मध्याह्न का भोजन किया। विमान 2.30 बजे अपराह्न में उड़ा लेकिन कुछ ही समय बाद दुर्घटना-ग्रस्त हो गया। वह जमीन पर गिर पड़ा और उसके दो टुकड़े हो गए। विमान के कुछ यात्रियों की तत्काल मृत्यु हो गई। नेताजी के कपड़ों में आग लग गई। वे बुरी तरह जल गए। हवाई अड्डे के कर्मचारी उन्हें तथा कुछ अन्य घायल यात्रियों को निकट के सैनिक अस्पताल में ले गए। वहां उनका इलाज किया गया लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ और रात को 9 तथा 10 के बीच भारतमाता के इस सपूत ने विदेश में अपना दम तोड़ दिया। कर्नल रहमान ने लिखा है कि नेताजी के अंतिम शब्द थे : "हबीब, मेरा अंत बहुत शीघ्र आ रहा है। मैंने आजीवन अपने देश की स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया है। मैं अपने देश की स्वतंत्रता के लिए मर रहा हूं। जाओ और मेरे देशवासियों से कह दो कि वे भारत की आज़ादी के लिए लड़ाई जारी रखें। भारत आज़ाद होगा, और जल्दी ही"।[15]

20 अगस्त, 1945 को नेताजी के शव की ताइपेई शमशान गृह में अंत्येष्टि कर दी गई। उनकी अस्थियों को एक कलश में भर कर टोकियो ले जाया गया और वहां के एक बौद्ध मंदिर रन्कोजी में रख दिया गया।

आज़ाद हिंद फौज़ के अफसरों का मुकदमा

ब्रिटिश सरकार ने आज़ाद हिंद फौज के जिन सिपाहियों और अफसरों को पकड़ा था, उन पर दिल्ली के लाल किले में मुकदमा चला। उन पर आरोप था कि उन्होंने सम्राट् के खिलाफ लड़ाई छेड़ी है। तीन प्रमुख अभियुक्त थे– कैप्टेन पी० के० सहगल, कैप्टेन शाहनवाज़ खां और कैप्टेन गुरबख्श सिंह ढिल्लों। इन अफसरों में एक हिन्दू था, एक मुसलमान और एक सिख। ब्रिटिश सरकार ने आज़ाद हिंद फौज़ के सिपाहियों और अफसरों पर जो मुकदमा चलाया, उसने सारे देश में तूफान पैदा कर दिया। भारत के लोगों की दृष्टि में सहगल, शाहनवाज़ और ढिल्लों स्वतंत्रता-सेनानी थे। वे राष्ट्रीय वीर थे। कांग्रेस, मुस्लिम लीग और साम्यवादी दल जैसे सभी राजनीतिक दलों ने आज़ाद हिंद फौज़ के कैदियों की रिहाई की मांग की। आज़ाद हिंद फौज के समर्थन में स्थान-स्थान पर जलूस निकाले गए, हड़तालें हुई और सार्वजनिक सभाएं की गई। लगा कि भारत ज्वालामुखी के कगार पर खड़ा है। भूलाभाई देसाई, तेजबहादुर सप्रू, जवाहरलाल नेहरू और आसफअली ने बचाव-पक्ष की ओर से मुकदमा लड़ा। सैनिक न्यायालय ने तीनों अफसरों को दोषी पाया। लेकिन वायसराय लार्ड वैवेल ने समझ लिया कि देश का मिजाज़ बिगड़ा हुआ है। उन्होंने 1 जनवरी, 1946 को इन अफसरों की सजा माफ कर दी।

नौ-सैनिकों का विद्रोह

आज़ाद हिंद फौज़ अपने मूल उद्देश्य– भारत के लिए स्वतंत्रता– प्राप्त करने में सफल नहीं हुई पर उसने भारत को स्वतंत्रता के द्वार तक पहुंचा दिया। फौज़ की शौर्य गाथाओं ने भारत में उत्साह की लहर दौड़ा दी और अंग्रेजों को यह आभास हो गया कि वे अब अधिक समय तक भारत को अपनी बेड़ियों में जकड़ कर नहीं रख सकते। उनका भारतीय सैनिकों पर से विश्वास हट गया। इसी समय की एक महत्त्वपूर्ण घटना है बम्बई में भारतीय नौ-सैनिकों का विद्रोह। कांग्रेस के सतत प्रचार के फलस्वरूप नौ-सैनिकों के मन में भी राष्ट्रवाद की भावना पैदा हो गई थी। ब्रिटिश सरकार भारतीय नौ-सैनिकों तथा अंग्रेज-नौ सैनिकों के बीच भेदभाव बरतती थी। युद्धकाल में भारतीय नौ-सैनिकों ने मित्र राष्ट्रों के नौ-सैनिकों के साथ कंधे से कंधा मिला कर काम किया था। इससे उनकी विचारधारा में परिवर्तन आया था। 18 फरवरी, 1946 को बम्बई के 11000 नौ-सैनिकों ने विद्रोह किया। विद्रोह की ये लपटें कराची भी पहुंची। जनता ने नौ-सैनिकों के समर्थन में जलूस निकाले और हड़तालें कीं।

सरदार पटेल के प्रयत्नों से नौ-सैनिक शांत हुए और उन्होंने अपने हथियार डाल दिए। भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में नौ-सैनिकों का विद्रोह एक महत्वपूर्ण घटना है।

सुभाष : एक पहेली

सुभाषचन्द्र बोस भारतीय इतिहास की एक पहेली बन कर रह गए हैं। सिंगापुर से जापान जाते हुए 18 अगस्त, 1945 को फारमोसा में एक विमान-दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। भारत के लोगों ने सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु पर विश्वास नहीं किया। उनके मृत्यु-प्रसंग की जांच के लिए भारत सरकार ने आज़ाद हिंद फ़ौज़ के मेजर और सुभाषचन्द्र बोस के सहयोगी शाहनवाज़ खां की अध्यक्षता में 1956 में एक समिति नियुक्त की थी। समिति में सुभाष बोस के बड़े भाई सुरेश बोस और पश्चिम बंगाल सरकार के प्रतिनिधि एस० एन० मैत्र भी थे। समिति ने अप्रैल से जुलाई 1956 तक भारत, जापान, थाईलैंड और विएतनाम में सूचना एकत्रित की। समिति विमान दुर्घटना के स्थल ताइवान नहीं गई। समिति ने दुर्घटना में बचे हुए अनेक यात्रियों से सवाल-जवाब किए। दुर्घटना के समय सुभाष के सहयोगी कर्नल हबीबुर रहमान उनके साथ थे। शाहनवाज़ समिति ने उनकी भी गवाही ली। सुरेश बोस ने समिति की खोजों की आरम्भिक सूची पर तो अपने हस्ताक्षर कर दिए थे, पर अंतिम रिपोर्ट पर हस्ताक्षर नहीं किए। उन्होंने 1956 में अलग से अपनी विमत रिपोर्ट प्रकाशित की। सुरेश बोस का कहना था कि शाहनवाज़ रिपोर्ट झूठी थी। समिति के दो अन्य सदस्यों तथा डॉ० बी० सी० राय ने उन पर दबाव डाला था कि वे भी रिपोर्ट पर हस्ताक्षर कर दें। सुरेश बोस को यह भी शिकायत थी कि विमत रिपोर्ट तैयार करने के लिए वे जिन फाइलों को देखना चाहते थे, वे उन्हें देखने के लिए नहीं दी गई।

सुरेश बोस का विचार था 18 अगस्त, 1946 को ताइवान में कोई विमान-दुर्घटना नहीं हुई। दुर्घटना की कहानी जापानियों ने ईज़ाद की थी। उनका लक्ष्य सुभाष को सुरक्षित रूसी सीमा में पहुंचा देना था।

शाहनवाज़ समिति की रिपोर्ट के बाद 1960 में यह अफवाह फैली कि उत्तर बंगाल में शालपारी आश्रम में सुभाष बोस साधु के वेष में रह रहे है। यह अफवाह सुभाष बोस के एक पूर्व राजनीतिक सहयोगी मेजर सत्या गुप्ता ने फैलाई थी। सुभाष बोस 1941 में जब कलकत्ते से बर्लिन गए थे तब वे काबुल में उत्तमचंद नामक व्यक्ति के घर पर रहे थे। मेहरोत्रा ने भी सत्या गुप्ता के कथन की पुष्टि की और कहा कि शालपारी के साधु बाबा सुभाष बोस ही हैं। आश्रम के ही एक सदस्य हरिपाद बोस ने भी यह विश्वास व्यक्त किया। इस गुट ने सुभाषवादी जनता नामक एक संगठन स्थापित किया और सुभाष बोस के जीवित रहने के बारे में अनेक सार्वजनिक सभाएं कीं तथा पैम्फलेट और पोस्टर वितरित किए। अंग्रेजी तथा बंगाली की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय पर लेख छपे।

नेताजी की मृत्यु के बाद जो अनेक कथाएं उभरीं, उनमें एक यह थी कि बोस संभवत: रूस चले गए थे। रूसियों ने उन्हें बंदी बना लिया था। रूसी अधिकारी नेताजी के जीवित होने के समाचार से नेहरू को डराया करते थे। उनकी धमकी थी कि यदि नेताजी भारत आ गए, तो यह नेहरू के शासन के लिए खतरा हो जाएगा। नेहरू इससे डरते थे और रूसियों की हर बात मानने के लिए विवश थे।[16]

1970 में भारत सरकार ने नेताजी के "तिरोभाव' की जांच करने के लिए पंजाब हाईकोर्ट के अवकाश प्राप्त मुख्य न्यायाधीश जी० डी० खोसला की अध्यक्षता में समिति नियुक्त की। इस समिति के एक ही सदस्य थे– जी० डी० खोसला। खोसला ने 1974 में अपनी जांच पूरी की। वे उपलब्ध साक्ष्य की पूरी तरह जांच करने के बाद इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि बोस की मृत्यु हो गई थी।[17]

अवतारी पुरुष

सुभाष बोस की मृत्यु को 50 वर्ष हो गए हैं लेकिन वे भारतीय जनमानस में इतनी गहराई से अंकित हैं कि उनकी मृत्यु पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता और उनकी मृत्यु के प्राय: 30 वर्ष बाद तक कई क्षेत्रों में कहा जाता रहा कि नेताजी अभी जीवित्त हैं और वे किसी भी समय देश का उद्धार करने के लिए अपनी योग साधना त्याग कर कर्मक्षेत्र में उतर सकते हैं।

सुभाष की कल्पना एक अवतारी पुरुष के रूप में की गई है जिन्होंने अन्याय और अत्याचार को दूर करने और न्याय की स्थापना के लिए मनुष्य शरीर धारण किया था। अवतार का काम जब तक पूरा नहीं हो जाता वह संसार का त्याग नहीं करता। नेताजी का काम पूरा नहीं हुआ था, फिर वे कैसे जा सकते थे।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में अवतारी पुरुष के जो लक्षण गिनाए गए हैं, नेताजी के भक्त उन लक्षणों को नेताजी में आरोपित करते हैं। त्याग, शौर्य, साहस, भक्त-वत्सलता, सत्यनिष्ठा, ध्येय-निष्ठा, अनासक्ति, स्थितप्रज्ञता– ये सारे महापुरुषों के लक्षण हैं। नेताजी में ये सारे गुण पाए जाते थे। उनका देशप्रेम सर्वोपरि था। देशभक्ति के कारण उन्होंने सांसारिक सुखों का त्याग कर दिया था। उनमें गजब का साहस था। देश की खातिर वे बड़े से बड़ा संकट झेलने के लिए तैयार रहते थे। वे पूरी तरह अपने ध्येय के प्रति समर्पित थे। सुभाष बोस ने अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए धुरी शक्तियों का साथ दिया, इस बात से अनेक लोग सहमत न होंगे। लेकिन सुभाष की सत्यनिष्ठा और ध्येय-निष्ठा में कोई संदेह नहीं है। सुभाष को अपने जीवन में सफलताएं और असफलताएं दोनों मिलीं लेकिन मृत्यु के बाद भारत के राष्ट्रीय नेताओं की श्रेणी में उनका स्थान सदा के लिए सुरक्षित है।

सारांश

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन अपने उद्देश्य में विफल हो गया। लेकिन इससे भारत का स्वतंत्रता संग्राम रुका नहीं। वह सुदूर पूर्व में लड़ा गया। इस आंदोलन के नेता थे सुभाष चन्द्र बोस तथा उनकी आज़ाद हिंद फौज।

बोस 2 जुलाई, 1940 को गिरफ्तार किए गए। उन्होंने नवंबर, 1940 में सरकार को भूख हड़ताल की धमकी दी। तब सरकार ने उन्हें जेल से तो रिहा कर दिया लेकिन उन्हें उनके कलकत्ता स्थित पैतृक मकान में ही नज़रबंद कर दिया।

बोस 17 जनवरी, 1941 की रात को अपने घर से भाग गए और भारी मुसीबतें उठाकर काबुल पहुंचे। वे काबुल से मास्को और मास्को से बर्लिन पहुंच गए।

बर्लिन में सुभाष बोस ने जर्मन सेनाध्यक्षों तथा हिटलर से भेंट की। उन्हें जर्मनी से भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के लिए सहायता का कोई संतोषजनक आश्वासन नहीं मिला।

सुभाष बोस के लिए भारतीय स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दक्षिण-पूर्वी एशिया का माहौल अधिक अनुकूल था। भारत के महान् क्रांतिकारी रास बिहारी बोस ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में इंडियन इंडेपेंडेंस लीग की शाखाएं स्थापित कर ली थीं। ज्ञानी प्रीतमसिंह और कैप्टेन मोहनसिंह ने जापान के 40,000 भारतीय युद्धबंदियों में से इंडियन नेशनल आर्मी (आज़ाद हिंद फौज़) का निर्माण किया। आज़ाद हिंद फौज़ का काम यह था कि वह जापानी सेना के साथ कंधे से कंधा मिला कर अंग्रेजों की सेना से लड़ेगी और अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करेगी। आज़ाद हिंद फौज़ के सैनिकों के प्रशिक्षण के लिए सैनिक शिविर खोले गए। इंडियन इंडेपेंडेंस लीग ने सुभाष बोस को दक्षिण पूर्वी एशिया में आकर इंडियन इंडेपेंडेंस लीग तथा आज़ाद हिंद फौज़ की कमान संभालने का निमंत्रण दिया। मई, 1943 में सुभाषचन्द्र बोस सुमात्रा पहुंच गए।

सुभाष बोस जापानी सेना-अधिकारी के साथ टोकियो गए। वहां उन्होंने जापान के अनेक मन्त्रियों, सेनाधिकारियों तथा प्रधानमंत्री तोजो से भेंट की। 16 जून, 1945 को सुभाष ने जापानी संसद की कार्यवाही देखी। तोजो ने जापानी संसद को सूचना दी कि जापान भारतीय स्वतंत्रता के लिए हर संभव प्रयत्न करेगा।

कुछ दिनों बाद सुभाष बोस ने एक पत्रकार-सम्मेलन में स्पष्ट किया कि भारतीय अपने स्वतंत्रता-संग्राम में धुरी शक्तियों से सहायता अवश्य लेंगे लेकिन भारतीयों को अपनी स्वतंत्रता खुद अपना खून बहाकर प्राप्त करनी है।

इस संवाददाता-सम्मेलन के बाद बोस ने टोकियो रेडियो से प्रति दिन भाषण देना शुरू किया। यह क्रम युद्ध के अंत तक चला। इन भाषणों में सुभाष ने भारतीय

स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष की अनिवार्यता पर बल दिया। उन्होंने भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी की महत्त्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया लेकिन कहा कि उनकी नीति से भारत स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहा है।

टोकियो से सुभाष बोस सिंगापुर गए। 4 जुलाई, 1943 को रासबिहारी बोस ने इंडियन इंडेपेंडेंस लीग की अध्यक्षता सुभाष बोस को सौंप दी। अपने भाषण में सुभाष बोस ने स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार बनाने का विचार व्यक्त किया और आज़ाद हिंद फौज को दिल्ली चलो नारा दिया। आज़ाद हिंद फौज़ का निरीक्षण करने के लिए जापान के प्रधान मंत्री तोजो को भी आमंत्रित किया गया।

सुभाष बोस ने आज़ाद हिंद फौज़ में स्त्रियों की भी एक रेजीमेंट बनायी जिसका नाम 1857 की वीरांगना रानी झांसी के नाम पर रखा। इस रेजीमेंट की प्रधान लक्ष्मी स्वामिनाथन थीं। सुभाष बोस ने स्त्री-सैनिकों के विधिवत प्रशिक्षण का प्रबंध किया।

शुरू में आज़ाद हिंद फौज़ के सिपाहियों की संख्या 12,000 थी। बढ़ते-बढ़ते वह 40,000 हो गई। सैनिकों के प्रशिक्षण के लिए मलाया और बर्मा में केंद्र खोले गए।

जापानी चाहते थे कि आज़ाद हिंद फौज़ जापान की लड़ाकू फौज़ के साथ रह कर प्रचार-कार्य करे। सुभाष बोस इसके लिए तैयार नहीं हुए। उनका कहना था कि भारत-अभियान के समय आज़ाद हिंद फौज़ सबसे आगे रहेगी। जैसे ही नेताजी के नेतृत्व में आज़ाद हिंद फौज़ हिंदुस्तान पहुंचेगी, हिंदुस्तान की जनता ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर देगी।

सुभाष बोस ने 21 अक्तूबर, 1943 को अंतरिम सरकार की घोषणा की। सुभाष बोस इस सरकार के अध्यक्ष, प्रधानमंत्री और सर्वोच्च सेनापति थे। जापान, जर्मनी, इटली, क्रोशिआ, मांचुको, नानकिंग, फिलिप्पाइन, थाइलैंड और बर्मा ने आज़ाद हिंद सरकार को मान्यता दे दी। 24 अक्तूबर, 1943 को आज़ाद हिंद सरकार ने ब्रिटेन और अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। सुभाष बोस ने जापानी प्रधानमंत्री तोजो से प्रार्थना की कि जापान के नियंत्रण में भारत की जो भूमि है, उसका प्रबंध आज़ाद हिंद सरकार को सौंप दिया जाए। जापान ने अंदमान और निकोबर द्वीपों का औपचारिक नियंत्रण आज़ाद हिंद फौज़ के हाथों में सौंप दिया।

आज़ाद हिंद फौज के 4 ब्रिगेड थे- गांधी, नेहरू आज़ाद और सुभाष ब्रिगेड। आज़ाद हिंद फौज़ ने भारत-स्थित मोडक चौकी पर अधिकार कर लिया और वहां तिरंगा झंडा लहराया। बाद में ब्रिटेन और अमरीका के प्रत्याक्रमण के भय तथा समय पर रसद न पहुंचने के कारण जापानी मोडक से हट गए लेकिन आज़ाद हिंद फौज़ के सिपाही वहां डटे रहे। आज़ाद हिंद फौज़ की एक दूसरी टुकड़ी ने कोहिमा पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने 1944 के जाड़ों में प्रति-आक्रमण आरम्भ किया। उन्होंने मई, 1945 में रंगून पर अधिकार कर लिया और जापान तथा आज़ाद हिंद

फौज़ के सिपाहियों को निहत्था कर बंदी बना लिया। इस तरह सुदूर पूर्व में भारत के स्वतंत्रता-संग्राम का अंत हो गया।

7 मई, 1945 को हिटलर की आत्महत्या के बाद जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। जापान ने लड़ाई जारी रखी लेकिन 6 अगस्त, 1945 को हीरोशिमा और 9 अगस्त, 1945 को नागासाकी पर अमरीका ने एटम बम गिराए। इससे जापान की कमर टूट गई और 10 अगस्त, 1945 को उसने आत्म-समर्पण कर दिया।

सुभाष बोस बैंगकोक से सोवियत सीमा की ओर जाते हुए 18 अगस्त, 1945 को फार्मोसा में एक विमान दुर्घटना के शिकार हो गए और उनकी मृत्यु हो गई। 20 अगस्त, 1945 को नेताजी के शव की ताइपेई में अंत्येष्टि कर दी गई। उनके अस्थिकलश को टोकियो के रन्कोजी मंदिर में रख दिया गया।

ब्रिटिश सरकार ने आज़ाद हिंद फौज़ के युद्धबंदियों पर दिल्ली के लालकिले में मुकदमा चलाया। इससे सारे देश में तूफान पैदा हो गया। भारत के लोगों की दृष्टि में आज़ाद हिंद फौज़ के सिपाही और अफसर स्वतंत्रता-सेनानी थे। सरकार ने अभियुक्तों की सज़ा माफ कर दी और उन्हें रिहा कर दिया।

फरवरी, 1946 में बम्बई में नौसैनिकों ने विद्रोह किया।

सुभाष बोस भारतीय इतिहास की एक पहेली बन गए हैं। जनता को सुभाष बोस की मृत्यु पर विश्वास नहीं हुआ। भारत सरकार ने 1956 में शाहनवाज़ खां के नेतृत्व में एक जांच समिति नियुक्त की। समिति का विचार था कि सुभाष बोस की विमान-दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। सुभाष बोस के भाई सुरेश बोस भी समिति के सदस्य थे। उन्होंने मृत्यु की घटना पर विश्वास नहीं किया और जांच में अनेक त्रुटियां बताईं।

1970 में भारत सरकार ने नेताजी के गायब होने की जांच करने के लिए पंजाब हाईकोर्ट के अवकाशप्राप्त न्यायाधीश जी० डी० खोसला की एक-सदस्यीय समिति नियुक्त की। न्यायमूर्ति खोसला उपलब्ध साक्ष्य की जांच करने के बाद इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि नेताजी की विमान दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी।

सुभाष बोस को अपने जीवन में सफलताएं और असफलताएं दोनों मिलीं लेकिन मृत्यु के बाद भारत के राष्ट्रीय नेताओं की श्रेणी में उनका स्थान सदा के लिए सुरक्षित है।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. "The individual must die, so that the nation may live. Today I must die so that India may win freedom and glory." Subhash Chandra Bose, *Crossroads*, pp. 342-3.

2. विवरण के लिए देखिए,

   Sisir Kumar Bose, *The Great Escape;* Netaji Research Bureau, Calcutta, 1975.

3. बोस की इस यात्रा में भगतराम तलवार (रहमत खां) तथा उत्तमचंद मेहरोत्रा ने बड़ी सहायता दी। बाद में उन्होंने बोस के पलायन के संस्मरण भी लिखे। भगतराम तलवार की पुस्तक का नाम है – *The Talwars of Pathan and Subhash Chandra's Great Escape* (People's Publishing House, New Delhi,1976). उत्तमचंद की पुस्तक का नाम है– *When Bose was Ziauddin* (Rajkamal, Delhi,1946)

4. "That an army be formed comprising the Indian troops and civilians of East Asia.Capt. Mohan Singh will be the Commander-in-Chief of this 'Armny of Liberation' for India. The Indian Independence League would make arrangements for the supply of men, material and money required by the Indian National Army and would request the Japanese Government to supply the necessary arms and equipment, ships and aeroplanes required by the Indian National Army which would be commanded entirely by Indian officers and would fight only for the liberation of India."

   "That a Council of Action be established for carrying out all necessary actions in connection with the independence movement and prosecution of the War of Independence." A.C. Chatterji, *India's Struggle for Freedom,* pp. 20-21.

5. "Japan is firmly resolved to external all means in order to expel and eliminate from India the Anglo-Saxon influences which are the enemy of the Indian people, and enable India to achieve full independence in the true sense of the term". Hugh Toye, *Subhash Chandra Bose– The Springing Tiger,* p. 29.

6. Indians view the present World War as a struggle between two ideologies. It is a struggle between those who want the status quo to continue and those who are determined to tier that old rag into pieces...Our sincere support is for the new order...If the Axis Powers win...India will regain her lost freedom...We should...get our freedom only by shedding our own blood...Since the enemy fights with his sword, we too should fight with the sword...Only if a large number of Indians undergo this baptism of fire can they win and get the reward of freedom." Subhash Chandra Bose, *Collected Speeches,* p. 162.

7. "Friends and comrades at arms...I have brought you this present. Subhash Chandra Bose...symbolizes all that is best, noblest, the most daring and the most dynamic in the youth of India...In your

presence today ...I resign my office as President of the Indian Independence League in East Asia. From now on, Subhash Chandra Bose is your President, your leader in the fight for India's independence, and I am confident that...you will march on to battle and to victory." M. Sivram, *The Road to Delhi,* 1967, pp. 122-23.

8 कैप्टेन लक्ष्मी ने सुभाष बोस के साथ अपनी पहली भेंट का विवरण देते हुए लिखा है : "When I came out of that meeting, I would say that I was completely awe-struck because I could have never imagined such a man who had such a big vision and yet who in himself was very simple, who made himself very clear, who was not at all arrogant or trying to force his opinion on others. He all the time in a very level-headed, persuasive and rational manner, step by step, was trying to explain why he was doing certain things and what his reasons were and what he believed would be the outcome. His utter, absolute sincerity struck me most and I felt that this man would never take a wrong step, and that one could trust him completely and have the utmost confidence in him." Lakshmi Sahgal as quoted by Leonard A. Gordon, *Brothers Against the Raj*, Viking, 1989, p. 497.

9. "No, Sir, the Japanese can retreat because Tokyo lies that way; our goal– the Red Fort, Delhi– lies ahead of us. We have orders to go to Delhi. There is no going back for us. Shahnawaz. *I N.A. and its Netaji*, p.118.

10. 7 दिसम्बर, 1941 को जापान की जल, थल और वायु सेना ने पर्ल हार्बर में अमरीका के जहाजी बेड़े को डुबाकर अमरीका से लड़ाई मोल ले ली। जापान का अमरीका के खिलाफ युद्ध में उतर आना उसके लिए आत्मघाती सिद्ध हुआ। युद्ध के पहले छह महीनों में उसे आश्चर्यजनक सफलताएं प्राप्त हुई। वह दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा प्रशांत का नियंता बन गया। लेकिन अमरीका शीघ्र ही संभल गया और उसने इंगलैंड के सहयोग से जापान को दबाना शुरू किया। हिरोशिमा तथा नागासाकी पर बम गिरने के बाद 10 अगस्त, 1945 को जापान ने बिना शर्त आत्म-समर्पण कर दिया और उसे अपने पचास सालो के अर्जित क्षेत्रों से हाथ धोना पड़ा।

11 सुभाष ब्रिगेड के सेनाध्यक्ष शाहनवाज खां ने सारी स्थिति का सारांश देते हुए कहा है : "Thus ended the main I.N.A. and Japanese offensive which had been started in March, 1944. During this period the I.N.A., with much inferior equipments and an extremely poor supply system, was able to advance as much as 150 miles into Indian territory. While the I.N.A. was on the offensive, there was not a single occasion when the enemy, despite their overwhelming superiority in men and material was able to capture any post held by the I.N.A.

On the other hand, there were very few cases where I.N.A. attacked British posts and failed to captive them. In these operations the I.N.A. lost nearly 4000 men as killed alone; Shahnawaz Khan, *I.N.A. and Its Netaji,* Delhi,1946, p.159.

12. "...with a clear conscience I can say that the Japanese did not give full aid and assistance to the Azad Hind Fauz deriving their assault on Imphal...they let us down badly and had it not been for their betrayal of the I.N.A. the history of the Imphal campaign naight have been a different one...the Japanese did not trust the I.N.A. They had found out through their Liaison officers that the I.N.A. would not accept Japanese domination in any way and they would fight the Japanese in case they attempted to replace the British...They were too confident of themselves and thought they would be able to capture Imphal without assistance and without much difficulty." Shah Nawaz Khan, *My Memories of I.N A* , p.126.

13. "Netaji was supremely confident of our victory. He said, Even if the axis powers lay down their arms, we must continue our struggle. There is no end to our struggle until the last British quits the shores of our country, he was of the opinion that the British should not be allowed to advance or breakthrough our front, even if all the I.N.A. soldiers were killed. What he wanted most was that the I.N.A. 'shaheeds' should leave behind such a legend and tradition of heroism that future generations of Indians would be proud of them." Shah nawaz Khan, *My Memories of I.N.A.*, p. 143.

14. "The future generations of Indians who will be born, not as slaves but as free men because of your colossal sacrifice, will bless your names and proudly proclaim to the world that you, their forebears, fought and suffered reverses in the battles in Manipur, Assam and Burma, but through temporary failure you paved the way to ultimate suceess and glory." Copied from a reproduction of the Singapore monument outside Netaji Bhavan, Calcutta.

15. "Habib, my end is coming very soon. I have fought all my life for my country's freedom. I am dying for my country's freedom. Go and tell my countrymen to continue the fight for India's freedom. India will be free, and before long."

16. इस कहानी का उल्लेख लिओनार्ड ए० गोर्डोन ने अपनी पुस्तक *Brothers Against the Raj– A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose* में किया है। देखिए पृ० 608-9 ।

17. G.D. Khosla, *Last Days of Netaji*, Thomson Press, Delhi, Publications Division, Government of India, 1974.

खंड : तीन

विचार - प्रवाह

12

धर्म और दर्शन

आधारभूत प्रवृत्तियां

धर्म और दर्शन मनुष्य की आधारभूत प्रवृत्तियां है। हर मनुष्य के मन में इस भौतिक जगत से परे की शक्तियों के बारे में कुछ न कुछ धारणाएं होती हैं। अंतर्मन की ये धारणाएं ही मनुष्य के भौतिक क्रिया-कलापों की प्रेरक होती हैं। जीवन का लक्ष्य क्या है? उस लक्ष्य को हम कैसे प्राप्त कर सकते है? यह संसार क्या है? क्या यह अपने आप चल रहा है या इसको चलाने वाली कोई शक्ति है? पुण्य क्या है? पाप क्या है? हम पुण्य क्यों करें? आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत्, क्या हैं? इनमें क्या परस्पर संबंध है? इस तरह के प्रश्न मानव मन को सदा से उद्वेलित करते रहे हैं। धर्मो और दर्शनों ने इनके उत्तर तलाश करने की कोशिश की है। भारत में इन प्रश्नों के प्रति लोगों की गहरी रुचि रही है।

सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों का स्रोत

सुभाषचन्द्र बोस भारत के अद्वितीय जननेता थे। साधारणतः संसार सुभाष को एक क्रांतिकारी और राजनीतिक नेता के रूप में जानता है लेकिन दर्शन और धर्म के क्षेत्र में उनकी खोजों की ओर प्रायः कोई ध्यान नहीं दिया गया है। उनकी सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों का स्रोत उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति थी।

निरंतर विकास

सुभाषचन्द्र बोस के धार्मिक और दार्शनिक विचारों में निरंतर विकास हुआ। इन विचारों को लेकर उनके मन में संघर्ष होता रहा। उन्होंने अपने बचपन में अनगिनत साधु-सन्यासियों से भेंट की, गुरु की खोज में तीर्थस्थलों पर मारे-मारे फिरे, अनेक

प्रकार की साधना पद्धतियों को आज़माया और फिर जीवन के कुछ सिद्धांत निर्धारित किए जिन पर वे चले।

अंधानुयायी नहीं

सुभाषचन्द्र बोस के धार्मिक और दार्शनिक विचारों पर अपने माता-पिता, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविन्द, हीगेल, वर्गसां, कांट, शंकर, बुद्ध आदि विचारकों का प्रभाव पड़ा था लेकिन वे इनमें से किसी के अंधानुयायी नहीं बने। सुभाष वेदांत से विशेष रूप से प्रभावित थे। आगे के पन्नों में हम सुभाष के दार्शनिक चिंतन पर कुछ प्रमुख प्रभावों का वर्णन कर रहे हैं। उनके धार्मिक और दार्शनिक विचारों पर सबसे पहला प्रभाव अपने माता-पिता का पड़ा था।

पिता का प्रभाव

सुभाषचन्द्र बोस के पिता जानकीनाथ बोस धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने आजीवन गरीबों और अनाथों की सहायता की। उनका थियोसोफी से संबंध रहा था और उन्होंने दो बार दीक्षा ली थी। सुभाष बोस ने अपने पिता के बारे में स्वयं लिखा है कि "तीव्र सक्रियता और संघर्ष के जीवन में धार्मिक प्रेरणा उनकी शक्ति और जिजीविषा का मुख्य स्रोत थीं। अपनी जवानी में उन्हें अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लड़ना पड़ा और उन्होंने अपने प्रयत्नों तथा ईश्वर-विश्वास के बल पर अपने आपको स्थापित किया। बाद में जब उनके अनेक सगे-संबंधियों की आकस्मिक मृत्यु हुई, तब उनकी दृढ़ ईश्वर-निष्ठा ने ही उनको अविचलित रखा। जब उनके दो पुत्रों सुरेश चन्द्र और सुभाषचन्द्र ने सरकारी नौकरियों को लात मार दी, तब वे जरा भी नही घबराये। उल्टे वे आजीवन अपने पुत्रों को उनके सारे सार्वजनिक क्रिया-कलापों में प्रोत्साहन देते रहे। अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले उन्हें एक साथ दो दारुण विपत्तियों का सामना करना पड़ा। उनके दामाद, पुत्री तथा कुछ और संबंधियों की अचानक मृत्यु हो गई। इसके अलावा उनके दो पुत्रों शरत चन्द्र तथा सुभाषचन्द्र को जेल हो गई। लेकिन इन दुखभरी स्थितियों में भी वे चट्टान की तरह अडिग बने रहे तथा उन्होंने एक क्षण के लिए भी ईश्वर के प्रति अपनी अटूट आस्था को विचलित न होने दिया।"[1]

माता का प्रभाव

सुभाषचन्द्र बोस के धार्मिक और दार्शनिक विचारों के निर्माण में उनकी माता प्रभावती देवी का भी हाथ था। सुभाषचन्द्र बोस की संकलित रचनाओं के पहले खंड में उनके अपनी माता को लिखे गए नौ पत्र दिए गए हैं।

वे पत्र संभवत: 1912-13 में लिखे गए थे। इनके अवलोकन से ज्ञात होता है

कि सुभाष को अपनी जननी के प्रति कितनी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। वे देवी की भक्त थीं और अपने पैतृक गांव कोडालिया में देवी-पूजा बड़े समारोहपूर्वक मनाती थीं। सुभाष ने माता को लिखे गए अपने पत्रों में अनेक धार्मिक संदर्भ दिए हैं। इनसे प्रमाणित होता है कि सुभाष के धार्मिक संस्कार गढ़ने में माता की भूमिका महत्वपूर्ण रही थी।[2]

आध्यात्मिक गुरु स्वामी विवेकानंद

स्वामी विवेकानंद सुभाष बोस के प्रेरणा-स्रोत थे। सुभाष बोस अपने अधिकांश धार्मिक और दार्शनिक विचारों के लिए स्वामी विवेकानंद के ऋणी हैं।

स्वामी विवेकानंद अद्वैतवादी थे। वे स्वयं जान स्टुअर्ट मिल, स्पेन्सर, ब्रजेन्द्रनाथ सील और अंग्रेजी कवि शैली से प्रभावित हुए थे। स्वामी विवेकानंद के जीवन-दर्शन पर जो सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा, वह शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत का था। अद्वैत वेदांत *ब्रह्मसूत्र, उपनिषदों* तथा *गीता* पर आधारित दर्शन है। शंकराचार्य ने इन सभी ग्रंथों पर भाष्य लिखे हैं जो वेदांत के प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते हैं। अद्वैत वेदांत की प्रमुख बात यह है कि ब्रह्म या आत्मा ही एकमात्र सत्य है। जगत मिथ्या है। जीव और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं है। जगत एक माया या स्वप्न के समान है। ब्रह्म ज्ञान होने पर जगत और जीवन के भेद का उसी प्रकार ज्ञान हो जाता है जिस प्रकार रस्सी और सर्प अंधेरे में भले ही एक जैसे लगते हों उजाला होने पर दोनों अलग-अलग प्रतीत होने लगते हैं। स्वामी जी की अद्वैत की व्याख्या इतनी व्यापक थी कि वे संसार के सभी प्रमुख धर्मों और दर्शनों को अद्वैत्त की ओर ही झुका हुआ पाते हैं।

स्वामी जी ने इस प्रश्न का उत्तर कि ईश्वर कौन है, *ब्रह्मसूत्र* के आधार पर देने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि जिससे जगत का जन्म, स्थिति तथा प्रलय होता है, वही ईश्वर है। ईश्वर अनंत, शुद्ध, नित्य, मुक्त, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, परम कारुणिक, गुरुओं का गुरु, सर्वोपरि, अनिर्वचनीय तथा प्रेम स्वरूप है।

भारतीय दर्शन का एक बड़ा अंश सगुण और निर्गुण के भेद से भरा पड़ा है। स्वामी जी सगुण और निर्गुण ब्रह्म में भेद नहीं मानते। उनकी दृष्टि में निर्गुण मिट्टी की तरह है। यदि मिट्टी का कोई बरतन बना दिया जाए तो वह आकार ग्रहण कर लेती है। मूल तत्त्व मिट्टी है। जीव और ब्रह्म के अंतर को मुंडकोपनिषद के एक मंत्र में वृक्ष पर बैठे हुए दो पक्षियों के उदाहरण द्वारा समझाया गया है। मनुष्य शरीर मानो एक वृक्ष है। ईश्वर और जीवन दो सदा साथ रहने वाले पक्षी हैं। इन दोनों मे एक पक्षी (जीवात्मा) वृक्ष के फलरूप अपने कर्मफलों को अर्थात् प्रारब्धानुसार प्राप्त हुए सुख-दु:खों को आसक्ति एवं द्वेषपूर्वक भोगता है और दूसरा पक्षी (ईश्वर) उन कर्मफलों से किसी प्रकार भी संबंध न जोड़ कर केवल देखता रहता है। जीवात्मा जब तक अपने साथ रहने वाले परम सुहृद परमेश्वर की ओर नहीं देखता तब तक वह

भोगों के भोगने में ही रचा-पचा रहता है। जब कभी वह भगवान की दया से ईश्वर की महिमा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह शोकरहित हो जाता है।

स्वामी विवेकानंद आत्मा को परमात्मा का ही अंश मानते हैं। उनके अनुसार आत्मा शरीर से अलग है। शरीर का नाश होता है, आत्मा का नहीं।

स्वामी जी ने आत्मानुभूति के लिए विभिन्न प्रकार के योगों- कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, हठयोग और राजयोग की चर्चा की है।

मनुष्य शरीर मन और आत्मा का योग है। उसका चरम लक्ष्य आत्मा के सच्चे स्वरूप का साक्षात्कार करना और मुक्ति प्राप्त करना है।[3]

रामकृष्ण परमहंस का प्रभाव

श्री रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानंद के गुरु थे। विवेकानंद उन्हें अवतारी पुरुष मानते थे। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि जब-जब धर्म का ह्रास होता है तथा अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मनुष्य जाति के उद्धार के निमित्त मैं अवतार लेता हूं। स्वामी विवेकानंद के अनुसार रामकृष्ण परमहंस ऐसे ही अवतारी पुरुष थे। उन्होंने भारत में गहन विषयों की एक तरंग प्रवाहित कर दी थी। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में आधुनिक संसार के लिए श्री रामकृष्ण का संदेश है :

"मतवादों, आचारों, पंथों तथा गिरजाघरों एवं मंदिरों की चिंता न करो। प्रत्येक मनुष्य के भीतर जो सार वस्तु अर्थात् आत्म तत्त्व विद्यमान है, इसकी तुलना में ये सब तुच्छ हैं, और मनुष्य के अंदर यह भाव जितना ही अधिक अभिव्यक्त होता है, वह उतना ही जगत्कल्याण के लिए सामर्थ्यवान् हो जाता है। प्रथम इसी धर्म-धन का उपार्जन करो, किसी में दोष मत ढूंढो, क्योंकि सभी मत, सभी पंथ अच्छे हैं। अपने जीवन द्वारा यह दिखा दो कि धर्म का अर्थ न तो शब्द होता है, न नाम और न संप्रदाय, वरन् इसका अर्थ होता है आध्यात्मिक अनुभूति। जिन्हें अनुभव हुआ है, वे ही इसे समझ सकते हैं। जिन्होंने धर्म लाभ कर लिया है, वे ही दूसरों में धर्मभाव संचारित कर सकते हैं, वे ही मनुष्य जाति के श्रेष्ठ आचार्य हो सकते हैं- केवल वे ही ज्योति की शक्ति हैं"।[4]

अरविन्द घोष

सुभाष बोस के विचारों पर अरविन्द घोष का भी प्रभाव है। उन्हें 'भारतीय विचारकों का सम्राट' और 'एशिया तथा यूरोप की प्रतिभा का समन्वय' कहा गया है। उनकी राजनीति एक योगी की राजनीति थी, एक राजनीतिज्ञ की नहीं। उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया। अरविन्द के लिए भारत एक भौगोलिक सत्ता या प्राकृतिक भूखंड-मात्र नहीं था। उन्होंने देश को अपनी मां माना और देशवासियों से भारतमाता की रक्षा करने और सेवा करने की अपील की।

अरविन्द ने पदार्थ और आत्मा, ईश्वर और सृष्टि तथा योग के विभिन्न संप्रदायों के बीच जो समन्वय स्थापित किया था, सुभाष उससे विशेष रूप से प्रभावित थे। अरविन्द से उन्होंने यह शिक्षा विशेष रूप से ग्रहण की कि आध्यात्मिक प्रकाश के बिना राष्ट्र की समुचित सेवा नहीं की जा सकती।[5]

निरपेक्ष सत्य

सुभाष का किसी निरपेक्ष सत्य में विश्वास नहीं था। उनकी दृष्टि में सत्य सदा सापेक्ष होता है। वे यह भी मानते हैं कि सत्य व्यावहारिक होना चाहिए।[6] इस दृष्टि से उनका चिंतन विशिष्टाद्वैतवाद के निकट था। सुभाष मानते हैं कि सीमित मानव-बुद्धि द्वारा निरपेक्ष सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता।[7] यद्यपि निरपेक्ष सत्य की अनुभूति मुश्किल है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उसकी सत्ता क़ो ही अस्वीकार कर दिया जाए। हिन्दू धर्मशास्त्रों में ऐसे अनेक योगियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने निरपेक्ष सत्य का साक्षात्कार किया है। इन योगियों के अनुभवों के विस्तृत विवरण उपलब्ध होते हैं। इन सारे अनुभवों को नकारा नहीं जा सकता।[8] निरपेक्ष सत्य का वाणी के द्वारा वर्णन संभव नही है। कोई साधक उसके किसी पक्ष से परिचित होता है, कोई किसी से। उसकी स्थिति हाथी के समान है। यदि कुछ अंधे व्यक्ति हाथी का वर्णन करने लगें, तो नहीं कर सकते। कोई अंधा उसकी टांग का स्पर्श करेगा, कोई उसके मुंह का और कोई उसकी सूंड का। अतः किसी के लिए हाथी का अर्थ होगा उसकी टांग, किसी के लिए उसका अर्थ होगा उसका मुंह और किसी के लिए उसका अर्थ होगा उसकी सूंड़। वैदिक शब्दावली में परम सत्ता नेति, नेति है।

सुभाष सत्य को स्थिर नहीं गतिशील तत्त्व मानते थे। वे इसे एक भाव के रूप में ग्रहण करते थे जो देशकाल के माध्यम से एक सचेत प्रयोजन की दिशा में आगे बढ़ रहा है। वे एमर्सन के इस विचार से सहमत थे कि तर्कहीन संगति निःसार है। प्रगति का अर्थ है– परिवर्तन ।

सुभाष का मत था कि संसार भाव की अभिव्यक्ति है। भाव अनादि और अनन्त है। इसी प्रकार सृष्टि भी अनादि और अनन्त है। उसका कभी अंत नहीं हो सकता। सुभाष का यह विचार वैष्णवों की नित्यलीला के सिद्धांत के अनुरूप है।

माया

यद्यपि सुभाष शंकर की वेदांत व्याख्या से सहमत थे, लेकिन वे शंकर के माया-सिद्धांत को स्वीकार करने के लिए तैयार न थे। जीवन में जो अनेक विसंगतियां देखने को मिलती हैं, उन्हें माया कह कर टाल देना उचित नहीं है। संसार को माया मान लेने से जीवन बिल्कुल नीरस हो जाता है।

आत्म–विश्लेषण

अपने छात्र–जीवन में सुभाष ने आत्म–विश्लेषण का अभ्यास किया था और इससे उन्हें बहुत लाभ पहुंचा था। आत्म–विश्लेषण का अभिप्राय है अपनी मानसिक प्रवृत्तियों की निगरानी। रात को सोने से पहले या प्रातः काल जागने पर यह अभ्यास आसानी से किया जा सकता है। इससे मन की गुप्त वासनाओं का पता लगता है और उन पर अंकुश लगाया जा सकता है।

सहिष्णुता

सुभाष अध्यात्म के क्षेत्र में सहिष्णुता की भावना के पोषक हैं। आध्यात्मिक सत्यों का साक्षात्कार विभिन्न साधक अलग–अलग ढंग से करते हैं। 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' सत्य एक ही है लेकिन लोग उसका अपने–अपने ढंग से कथन करते हैं। धार्मिक साधनाओं के प्रति समत्व–बुद्धि भारतीय धर्म–साधना की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। सुभाष का धार्मिक और दार्शनिक चिंतन इस भावना से प्रेरित है।

साध्य और साधन

भारत का राष्ट्रीय आंदोलन, विशेषकर गांधी जी के नेतृत्व में नैतिक आंदोलन था। गांधी जी सत्याग्रह के द्वारा स्वयं कष्ट सह कर विरोधी के हृदय–परिवर्तन में विश्वास रखते थे। उन्होंने अपना समूचा आंदोलन आत्मिक शक्ति, सत्य और अहिंसा के आधार पर खड़ा किया था। गांधी जी के विचार से साधन बीज है और साध्य वृक्ष। इसलिए जो संबंध बीज और वृक्ष में है वही संबंध साधन और साध्य में है। शैतान की उपासना कर के मनुष्य ईश्वर भजन का फल नहीं पा सकता।

नैतिक साधनों की शुद्धता पर इतना अधिक बल देने के कारण गांधी जी ने फरवरी 1922 में उत्तर प्रदेश के चौरी–चौरा थाने की हिंसात्मक घटनाओं के कारण असहयोग आंदोलन अचानक ही स्थगित कर दिया था।

सुभाष बोस राजनीति में नैतिकता के पक्षधर अवश्य थे लेकिन वे साध्य–साधन के विषय पर गांधी जी की तरह अतिवादी नहीं थे। गांधी जी भारत की आजादी अहिंसात्मक साधनों द्वारा प्राप्त करना चाहते थे लेकिन सुभाषचन्द्र बोस इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए हिंसा तथा सैनिक कार्यवाही को उचित समझते थे। इसीलिए उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान विदेशों में जाकर आज़ाद हिंद फौज़ का संगठन किया था।

कर्मयोगी

सुभाषचन्द्र बोस का समूचा जीवन कर्मयोग का उदाहरण है। उन्होंने समाज और राष्ट्र की सेवा में मुक्ति का मार्ग खोजा था। वे स्वभाव से आशावादी थे और

उन्होंने कठिन से कठिन परिस्थिति में भी साहस नहीं छोड़ा। सुभाष भौतिक विषयों में उदासीनता का रुख अपनाने के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि जिस व्यक्ति को कोई बड़ा काम करना हो, उसमें धैर्य होना चाहिए और अपने प्रति पूरा विश्वास। जीवन की क्षणभंगुरता का सिद्धांत मानवी प्रगति में बाधक है। सुभाषचन्द्र अंग्रेजों की कर्त्तव्य-निष्ठा, समय-निष्ठा और श्रम-निष्ठा के कायल थे और चाहते थे कि भारतीय भी इन गुणों को अपनाएं।

प्रेम

सुभाष ने प्रेम को परम सत्ता से अभिन्न माना है। वे जीवन के सभी पक्षों का तर्कयुक्त रीति से अध्ययन करने के बाद ही इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जीवन का आधारभूत सिद्धांत प्रेम है। वे समझते हैं कि प्रेम तत्त्व का अभी संसार में पूरी तरह उद्घाटन नहीं हो सका है। वह धीरे-धीरे प्रस्फुटित हो रहा है। सत्य की भांति वह भी सतत गतिशील है।[9]

निष्कर्ष

सुभाष के अध्यात्म-चिंतन का निष्कर्ष है :

"वास्तविकता भाव है। उसका सार है प्रेम । वह विरोधी शक्तियों और उनके समाधानों के बीच की चिरंतन लीला में शनैः शनैः अपने आप प्रस्फुटित हो रहा है।"[10]

सारांश

धर्म और दर्शन मनुष्य की आधारभूत प्रवृत्तियां हैं। मनुष्य के अंतर्मन की धारणाएं ही उसके भौतिक क्रिया-कलापों को संचालित करती है।

सुभाषचन्द्र बोस को संसार क्रांतिकारी और जननेता के रूप में जानता है, लेकिन दर्शन और धर्म के क्षेत्र में उनकी खोजों की उपेक्षा की गई है। वास्तव में सुभाष बोस की सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों का स्रोत उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति थी। सुभाषचन्द्र बोस के धार्मिक और दार्शनिक विचारों में निरंतर विकास हुआ। उन्होंने अनगिनत साधु-सन्यासियों से भेंट की, गुरु की खोज का भरसक प्रयत्न किया विभिन्न साधना-पद्धतियों को आज़माया और फिर जीवन के कुछ सिद्धांत निर्धारित किए।

सुभाषचन्द्र बोस के धार्मिक और दार्शनिक विचारों पर अपने माता-पिता, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविंद, हीगेल, बर्गसां, कांट, शंकर और बुद्ध आदि विचारकों का प्रभाव पड़ा था लेकिन वे इनमे से किसी के अंधानुयायी नहीं बने।

सुभाष का किसी निरपेक्ष सत्य में विश्वास नहीं था। उनकी दृष्टि में सत्य सदा सापेक्ष होता है।

सुभाष का मत था कि संसार भाव की अभिव्यक्ति है। सुभाषचन्द्र वैष्णवी की नित्य लीला के सिद्धांत में विश्वास रखते थे।

यद्यपि सुभाष शंकर की वेदांत-व्याख्या से सहमत थे, लेकिन शंकर के माया-सिद्धांत को मानने के लिए तैयार न थे। उनके विचार से संसार को माया मान लेने से जीवन बिल्कुल नीरस हो जाता है।

सुभाष ने आत्म-विश्लेषण की पद्धति को मन पर नियंत्रण रखने का उपयोगी साधन माना है।

सुभाष अध्यात्म के क्षेत्र में सहिष्णुता की भावना के पोषक हैं। वे साध्य-साधन के प्रश्न पर गांधी जी की तरह अतिवादी नहीं हैं। उनका आदर्श योग था- कर्मयोग।

साध्य-साधन के प्रश्न पर सुभाष ने जीवन का आधारभूत सिद्धांत प्रेम माना है। उनकी दृष्टि में प्रेम तथा परम सत्ता एक ही हैं।

संदर्भ और पाद टिप्पणियां

1. सुभाषचन्द्र बोस ने अपने पिता जानकीनाथ बोस की संक्षिप्त जीवनी बंगला में लिखी थी। उसका अंग्रेजी अनुवाद उनकी संकलित रचनाओं के खंड-1 में छपा है। देखिए. Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.I, pp. 245-246.
2. Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.I, pp.128-148.
3. विवेकानन्द के सपूर्ण दार्शनिक विचारों के लिए देखिए : *विवेकानन्द साहित्य*, 10 खंड। उनके दार्शनिक विचारों का संक्षिप्त परिचय राजेन्द्र प्रकाश गुप्त ने रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली की पी-एच० डी० (शिक्षा) उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-प्रबंध *स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का अध्ययन* (1985) में दिया है। यह शोध-प्रबंध अभी तक अप्रकाशित है।
4. स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस पर अमरीका में तीन भाषण दिए थे – *मेरे गुरुदेव*, *श्री रामकृष्ण* और *उनके विचार* तथा *श्री रामकृष्ण : राष्ट्र के आदर्श*। इन व्याख्यानों में श्री रामकृष्ण के विचारों तथा व्यक्तित्व का सार आ गया है। देखिए, *विवेकानन्द साहित्य*, सप्तम खंड, पृ०235-271 ।
5. Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.I, p.63.
6. "What I can not live upto what is not workable I feel to discard": Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.I, p. 118.
7. "It is impossible to comprehend the absolute through our human intellect with all its limitations." Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.I, p. 119.

8. "Now can we comprehend the Absolute through yogic perception? Is there a supramental plane which the individual can reach and where the subject and object merge into oneness? My attitude to this is one of benevolent agnosticism... On the one hand, I am not prepared to take anything on trust. I must have first hand experience, but this sort of experience in the matter of the absolute. I am unable to get. On the other hand, I cannot just rule out as sheer moonshine what so many individuals claim to have experienced in the past. To repudiate all that would be to repudiate much, which I am not prepared to do." Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.I, p. 120.

9. डॉ० मक्खनलाल शर्मा ने अपनी हाल की एक पुस्तक *व्यक्तित्व विकास का संदर्भ. प्रेमयोग* मे प्रेम को जीवन का परम तत्व माना है और उसके विविध पहलुओं का विवेचन किया है। उनका कहना है कि प्रेम द्वारा व्यक्ति को वह वातावरण मिल जाता है, जिसमे उसकी संपूर्ण वृत्तियां और गुण विकसित हो उठते हैं। इसी वातावरण की रचना एक ऐसा सार्थक विकल्प है जो आज के मत्सरमूलक समाज का स्थानापन्न वन सकता है। उनके शव्दों मे–

"प्रत्येक व्यक्ति मे अपूर्व क्षमता होती है और यह क्षमता उसे अज्ञात रहती है। हमे पता ही नहीं होता कि हममे कितनी शक्ति है। यह शक्ति तभी प्रस्फुटित होती है, जव हम एकाग्र हो पाते हैं। मन की एकाग्रता के लिए कुछ लोग योग का आश्रय लेते हैं और अनेक प्रक्रियाओ के दौर से गुजरकर उस तक पहुंचते हैं। हमारी समझ में इसका सवसे सरल और सर्वजनसुलभ उपाय प्रेमयोग है। भावनाएं सबके मन में होती हैं। हमें केवल उनका समुचित उपयोग करना है। प्रेमभाव को इस सीमा तक विकसित कर लेना है कि उसमे सव कुछ समाहित हो सके। भाव-विस्तार का सवसे विलक्षण परिणाम यह होता है कि हमारा शत्रु, विरोधी कोई नहीं रहता अर्थात् हमे कुछ भी ऐसा नही लगता जो अपने विपरीत प्रतीत होता हो। मन की यह स्थिति अन्य भावों के नियमन मे सहायक ही नही होती, वरन् अन्य भाव निर्वल होते चले जाते हैं और प्रेमभाव सशक्त होकर उनका स्थान ग्रहण करता चला जाता है। वह व्यापक वनता जाता है और एक दिन सव कुछ उसी भाव मे लय हो जाता है।" डॉ० मक्खनलाल शर्मा, व्यक्तित्व-*विकास का संदर्भ : प्रेमयोग*, शव्द और शव्द, दिल्ली 110052, 1996, पृ० 39 ।

10. "Reality is, therefore, spirit, the essence of which is love, gradually infolding itself in an eternal play of conflicting forces and their solutions." Subhash Chandra Bose, *Netaji Collected Works*, Vol.I, p. 124.

13

सामाजिक पुनर्निर्माण

स्वतंत्रता का लक्ष्य

भारत के स्वतंत्रता-संग्राम का लक्ष्य था तत्कालीन दमन, उत्पीड़न, अन्याय, गरीबी, शोषण और अशिक्षा का अंत तथा समाज का नवनिर्माण, एक ऐसे समाज का संगठन जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति का शोषण न कर सके तथा सब नागरिकों की प्राथमिक आवश्यकताएं पूरी हों। भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के संबंध में सुभाष बोस के अपने विचार थे, और थी अपनी एक कार्य-पद्धति।[1]

जातियों का सम्मिश्रण

सुभाष बोस का विचार है कि जातियों के सम्मिश्रण से जातियों में ऊर्जा बनी रहती है। प्राचीन भारत की उन्नति का एक कारण यह भी था कि भारत में विभिन्न जातियों के आगमन का क्रम बना रहा। विभिन्न संस्कृतियों के मेल-मिलाप से नए-नए विचार भी उत्पन्न होते हैं और जातियों में नई जीवन-शक्ति पैदा होती है।[2]

भारतीय संस्कृति

सुभाष की भारतीय संस्कृति में अटूट आस्था थी। वे कहा करते थे कि मैं उन लोगों में से नहीं हूं जो आधुनिकता के उत्साह में अपने विगत गौरव को भूल जाते हैं। भारत के पास विश्व को देने की लिए दर्शन, साहित्य, कला और विज्ञान में बहुत कुछ है और सारा संसार उससे बहुत कुछ अपेक्षा करता है।[3]

भारत तब और अब

आज भारत संसार के सबसे अधिक गरीब देशों में से है। किंतु अंग्रेजी हुकूमत

कायम होने से पहले भारत गरीब नहीं था। वस्तुतः भारत की संपदा ने ही यूरोपीय देशों को भारत की ओर आकृष्ट किया। यह कोई नहीं कह सकता कि राष्ट्रीय संपदा अथवा साधनों की दृष्टि से भारत गरीब है।

प्राकृतिक साधनों से भारत धनी है किंतु विदेशी शोषण के कारण भारत गरीब होता जा रहा है।

भारतीय संस्कृति का अनुकूलन

सुभाष का कहना था कि पिछले 3000 वर्षों में बाहर से लोग नए विचारों, कभी-कभी नई संस्कृतियों के साथ भारत में आए हैं। ये सभी प्रभाव, विचार धाराएं और संस्कृतियां भारत के राष्ट्रीय जीवन में घुलमिल गई। हम समय के साथ आगे बढ़े हैं। आज अपनी प्राचीन पृष्ठभूमि के बावजूद हम आधुनिक संसार में रहने के योग्य हैं और हमने अपने को उस संसार के अनुकूल ढाल लिया है।

तीन आवश्यक तत्त्व

सुभाष बोस ने आधुनिक भारत को समझने के लिए तीन तत्त्व आवश्यक माने हैं : 1. प्राचीन भारत की सभ्यता। आज भारतीय जनता इसके प्रति सचेत है। 2. स्वाधीनता का संघर्ष। जब से भारत में अंग्रेजों का शासन स्थापित हुआ, तब से ही यह संघर्ष बिना किसी रुकावट के चल रहा है। 3. बहुत से प्रभाव और तत्त्व भारत में बाहर से आए है– पाश्चात्य शिक्षा और विज्ञान, लोकतंत्रात्मक संस्थाएं, सामाजिक पुनर्निर्माण की विभिन्न विचारधाराएं।

नए और पुराने का मेल

सुभाष बोस भारत में नए और पुराने का मेल चाहते थे। वे वेदों की ओर जाने वाली प्रवृत्ति तथा आधुनिक फैशन परस्ती दोनों का मुकाबला करना चाहते थे।

भारतीय राष्ट्रवाद और अंतर्राष्ट्रीयता

सुभाष के विचार से भारतीय राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रीयता का पोषक है। वह न संकुचित है, न स्वार्थी और न आक्रामक। भारतीय राष्ट्रवाद ने सत्यता, ईमानदारी, मानवता के उच्चादर्शों का समर्थन किया है।[4]

महापुरुषों के प्रति सम्मान

सुभाष बोस ने उन सभी देशी-विदेशी महापुरुषों के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया है जो भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान रहे हैं। इन व्यक्तियों में से कुछ हैं– अरविंद, ईश्वरविद्यासागर[5], राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र चटर्जी, स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, विपिन चंद्र पाल, स्वामी

रामतीर्थ, रोमां रोलां आदि।

बंगाल–प्रेम

सुभाष बोस का बंगाल–प्रेम उनके देशप्रेम का ही एक अंग था। उन्हें बंगाल की दुर्दशा पर खेद था। उन्होंने लिखा था :

"आज बंगाल में सर्वत्र केवल अधिकारों के लिए छीना–झपटी चल रही है। जिसके पास क्षमता है वह उस क्षमता की सुरक्षा के लिए चिंतित है और जिसके पास क्षमता नहीं है, वह क्षमता छीन लेने के लिए प्रयत्नशील है। दोनों पक्षों का कहना है कि देशोद्धार हो तो हमारे ही द्वारा हो, नहीं तो उसकी आवश्यकता ही नहीं है।"

बंगाली चरित्र की दुर्बलता

बंगालियों के चरित्र के बारे में सुभाष का कहना था कि उनमें इंद्रिय–सुख की कामना बहुत गहरी समाई हुई है और यही कारण है कि वे कुशाग्र–बुद्धि होते हुए भी इतने कमज़ोर हैं। सुभाष को यह देखकर दुख होता था कि पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से बंगाली नास्तिक बनते जा रहे हैं और अपने धर्म तथा वेश–भूषा को ठुकरा रहे हैं।

क्रांति की भूमिका

सुभाष बोस का मत था कि क्रांति संपूर्ण राष्ट्र की मानसिकता को बदल देती है। जीवंत और प्रगतिशील राष्ट्रों में प्राचीन और नवीन के बीच एक संबंध रहता है। अतीत का ज्ञान और अनुभव उभरती हुई पीढ़ियों को बिना किसी अवरोध के उपलब्ध रहता है। उनकी राय थी कि यदि कोई राष्ट्र अपनी प्राण शक्ति खो देता है तो उसे जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वह प्राणशक्ति खो देने के बाद भी जीवित रहता है, तो उस अस्तित्व का मानव–जाति के लिए कोई मूल्य नहीं रह जाता।

राष्ट्रीय एकता

सुभाष बोस ने राष्ट्रीय एकता पर बल दिया है। वे राष्ट्रीय एकता और संगठन को विकसित करने के लिए अनेक बातों की आवश्यकता समझते थे। इन आवश्यकताओं में सामान्य भाषा का महत्वपूर्ण स्थान था। उनके विचार से राष्ट्रीय एकता की समस्या व्यापक रूप से एक मनोवैज्ञानिक समस्या है।

राष्ट्रोत्थान की नींव

सुभाष यह मानते थे कि केवल त्याग और कष्ट–सहन की धरती पर ही राष्ट्र

के उत्थान की नींव डाली जा सकती है। राष्ट्रीय मुक्ति की कीमत है– त्याग और कष्ट-सहिष्णुता। ये राष्ट्र देवता की मूर्ति पर चढ़ाने के लिए पूजा के पुष्प है।

उच्चतम देशभक्ति

सुभाष बोस का अपना जीवन बाल्यावस्था से लेकर मृत्यु-पर्यंत देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम, त्याग, कष्ट-सहिष्णुता तथा बलिदान की भावना से ओतप्रोत है। उन्होंने भारत से पलायन करने के बाद विदेशों से जो प्रसारण किए और विभिन्न अवसरों पर जो भाषण दिए, वे उच्चतम देशभक्ति से प्रेरित हैं। अप्रैल, 1939 में उन्होंने *माडर्न रिव्यू* में एक लेख प्रकाशित किया था। इस लेख में उन्होंने लिखा था कि भारत माता की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर देना पुण्य का कार्य है।

1940 में उन्होंने प्रेसीडेन्सी जेल से बंगाल सरकार को जो पत्र लिखा था, वह देशभक्ति की भावना का जीवंत दस्तावेज़ है। इस पत्र में सुभाषचन्द्र बोस ने लिखा था कि किसी सिद्धांत की खातिर जीना और मरना संतोष का विषय है। यदि व्यक्ति किसी सिद्धांत की वेदी पर अपने प्राण निछावर करता है, तो भावी पीढ़ियां अधूरे काम को पूरा करेंगी। राष्ट्र के जीवन, स्वतंत्रता और गौरव के लिए व्यक्ति का प्राणोत्सर्ग करना आवश्यक है।[5]

समाजवाद

सुभाष बोस मानते थे कि भारत की मुख्य समस्याएं हैं– गरीबी, अशिक्षा, बेकारी। इन समस्याओं का सीधा संबंध उत्पादन और वितरण से है। इन समस्याओं को समाजवादी आधार पर ही प्रभावशाली ढंग से सुलझाया जा सकता है। वे मानते थे कि भारत का परित्राण समाजवाद पर निर्भर है। भारत को छूट है कि वह दूसरे राष्ट्रों के अनुभव से शिक्षा ग्रहण करे। लेकिन उसे अपनी कार्यप्रणाली अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप विकसित करनी होगी। किसी सिद्धात को व्यवहार में लाते समय इतिहास, भूगोल और संस्कृति की उपेक्षा नहीं की जा सकती ऐसा करने पर असफलता की संभावना अधिक है। भारत के लिए आवश्यक है कि वह समाजवाद के अपने प्रकार को विकसित करे। भारत जिस समाजवाद को विकसित करेगा, उसमें कुछ नया और मौलिक हो सकता है। आशा है कि भारतीय प्रयोग संपूर्ण विश्व के लिए लाभदायक होगा।

किसी भी विचारधारा का अंधानुकरण व्यावहारिक नहीं है। रूस तक में कार्ल मार्क्स का अंधानुकरण नहीं किया गया।

विवेकानंद का समाजवाद

सुभाष बोस की समाजवादी धारणाओं पर जहां मार्क्स और लेनिन के विचारों

की छाप है, वहां स्वामी विवेकानंद का भी प्रभाव है। स्वामी विवेकानंद का कहना था कि नया भारत कारखानों से तथा झोंपड़ियों और बाजारों से प्रस्फुटित होगा। बोस ने भारत की आर्थिक समस्याओं का हल करने के लिए योजना-बद्ध विकास और उद्योगीकरण पर जोर दिया था।[6]

बोस का समाजवाद

बोस का समाजवाद पूरी तरह भौतिक नहीं था। उनका अध्यात्म में विश्वास था और वे इसे व्यावहारिक आवश्यकता मानते थे। उन्हें प्रकृति में एक उद्देश्य और अभिकल्पना दृष्टिगत होती थी। उनकी ईश्वर में, ईश्वर की लीला और उपासना में आस्था थी और जीवन के अंत तक ध्यान तथा आत्म-चिंतन उनकी दिनचर्या का आवश्यक अंग था। उनका कहना था कि जब चिंतन और फूल का स्थान हमारी भक्ति और प्रेम ग्रहण कर लेते हैं तो वह विश्व की सबसे सुंदर उपासना बन जाती है।

योजनाबद्ध आर्थिक विकास की धारणा सुभाष बोस की स्वतंत्र भारत को एक महत्वपूर्ण देन है।[7]

उद्योगीकरण

बोस के समाजवादी चिंतन का एक पहलू था देश का उद्योगीकरण। उनके विचार से उद्योगीकरण का यह अर्थ नहीं है कि हम अपने कुटीर उद्योगों से विमुख हो जाएं। इसका अर्थ केवल यह है कि हमको यह निर्णय करना होगा कि कौन से उद्योग कुटीर आधार पर विकसित किए जाने चाहिएं और कौन से बड़े पैमाने पर। भारत की तत्कालीन अर्थ-व्यवस्था और सीमित साधनों को ध्यान में रखते हुए सुभाष बोस बड़े उद्योगों के साथ-साथ कुटीर उद्योगों के विकास पर भी भरसक ज़ोर देना चाहते थे।[8]

बेकारी की समस्या

बोस बेकारी की समस्या को हल करने के लिए उद्योगीकरण को आवश्यक मानते थे। यदि हर स्त्री व पुरुष को भोजन देना है तो जनसंख्या के एक बड़े भाग को खेती छोड़ कर उद्योगों का रास्ता अपनाना होगा। हमारा ध्येय यह देखना है कि प्रत्येक स्त्री पुरुष और बच्चे को बेहतर वस्त्र प्राप्त हों, बेहतर शिक्षा प्राप्त हो और उसके पास मनोरंज़न एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए पर्याप्त धन हो। अगर इस उद्देश्य को प्राप्त करना है तो औद्योगिक उत्पादन की मात्रा में काफी वृद्धि करना जरूरी होगा।

कृषि

भारत के उद्योगीकरण की चर्चा करते समय सुभाष बोस कृषि-समस्याओं की ओर से भी उदासीन नहीं थे। वे यह समझते थे कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था का आधार कृषि है। इसलिए, उन्होंने कृषि-सुधारों की ओर भी ध्यान दिया। वे जमींदारी प्रथा का अंत चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि सारे देश में एक-सी काश्तकारी प्रथा शुरू हो, किसानों के कर्जे समाप्त हो जाएं और गांव के लोगों को सस्ती कीमत पर ऋण मिलने लगे। ये सारे प्रश्न स्वतंत्र भारत में ज्वलंत रूप में उभरे और उनके समाधान की कोशिश की गई। बोस यह भी चाहते थे कि कृषि की उन्नति में विज्ञान का सहयोग लिया जाए। उन्होंने हालैंड, रुमानिया, डेन्मार्क और चेकोस्लोवाकिया की कृषि-पद्धतियों का स्वयं वहां जाकर अध्ययन किया था और वे इन देशों की बहुत सी अच्छी बातें अपने देश में भी लागू करना चाहते थे।

युवक आंदोलन

सुभाष बोस नयी पीढ़ी के नेता थे। उन्होंने विभिन्न देशों के युवक आंदोलनों का अध्ययन किया था और वे राष्ट्रोत्थान के कार्य में युवकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकार करते थे।

राष्ट्र की कमान

सुभाष बोस का विचार था कि जब कभी पुरातन का नाश और नवीन का निर्माण करना होता है, तब युवकों को आगे आकर राष्ट्र की कमान संभालनी होती है। जब श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अर्जुन से कहा कि तू अपने पुरुषत्व को मत त्याग, तब यह अमर यौवन का संदेश था। विनाश के बाद ही निर्माण का कार्य आरंभ होता है।

युवकों का कार्य

आज के युग में युवकों का कार्य है निरंकुशता, अन्याय और अत्याचारों का विरोध। इतिहास के आरंभ से ही मनुष्य ने अतीत और वर्तमान की सीमाओं को लांघ कर भविष्य में झांकने की कोशिश की है। दुःखद वर्तमान के स्थान पर मनुष्य ने सुखद भविष्य का सपना संजोया है।[9] यौवन की कसौटी है कि वर्तमान की सीमाओं और बंधनों को स्वीकार न किया जाए। युवक वही है जो संघर्ष, विनाश और मृत्यु से भयभीत नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति आयु में बड़ा होने पर भी जीवन में आशा, उल्लास और ताज़गी बनाए रखता है, तो वह सचमुच में युवक है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति आयु में कम होने पर भी बुझा-बुझा रहता है, तो उसे बूढ़ा मानना चाहिए।[10]

विदेशों के युवक आंदोलन

सुभाष बोस ने जर्मनी, चीन और तुर्की के युवक आंदोलनों का अध्ययन किया था और उनका भारतीय तरुणों से आग्रह था कि वे इन देशों के युवकों से प्रेरणा लें।

मानव-निर्माण का प्रश्न

आज संसार के विभिन्न देशों में वादों का संघर्ष चल रहा है। लेकिन वादों से देश का कल्याण नहीं हो सकता। देश का निर्माण होगा मानव के निर्माण से। स्वामी विवेकानंद ने अपना मिशन मानव का निर्माण ही निर्धारित किया था। समाज के नवनिर्माण के लिए सच्चे मनुष्यों की जरूरत है।"

चरित्र-निर्माण

नवयुवकों में प्राय: उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता पाई जाती है। सुभाष बोस इसके विरुद्ध थे। वे युवकों के चरित्र-निर्माण पर जोर देते थे। उन्हें किताबी जानकारी से घोर वितृष्णा थी। वे सदाचार विवेक और सत्कर्म की त्रिवेणी चाहते थे। उनका मत था कि दैनिक कार्य करके संतुष्ट रहने से ही हमारा काम नहीं चलेगा। इन सब कार्यों का लक्ष्य है आत्म-विश्वास प्राप्त करना, इस बात को नहीं भूलना चाहिए। युवकों का कर्त्तव्य है कि वे काम करते हुए अपने चरित्र का विकास करें और अपने जीवन के सर्वांगीण अभ्युदय की ओर ध्यान दें। युवकों को चाहिए कि वे अपने व्यक्तित्व और प्रकृति के अनुसार वैशिष्ट्य लाभ करें।

आदर्शों का महत्व

सुभाष बोस चाहते थे कि युवक अपने सामने कुछ आदर्श अवश्य रखें क्योंकि आदर्श को प्रत्येक क्षण सामने न रखने से जीवन में प्रगति करना असंभव है। वे मानते थे कि इस असार संसार में प्रत्येक वस्तु नष्ट होती है और नष्ट होगी। किंतु, विचार, आदर्श और स्वप्न नष्ट नहीं होते। कोई व्यक्ति एक विचार के लिए मर सकता है किंतु वह विचार उसकी मृत्यु के बाद स्वयं को हजारों जीवनों में प्रस्फुटित करेगा। इसी प्रकार से विकास का क्रम चलता रहता है और एक पीढ़ी के विचार, आदर्श और स्वप्न आगामी पीढ़ी को उत्तराधिकार में मिल जाते हैं। इस संसार में कोई भी विचार और बलिदान अग्नि-परीक्षा के बिना कभी फलीभूत नहीं होता।

युवा पीढ़ी पर विश्वास

सुभाष बोस का युवा पीढ़ी पर पूरा विश्वास था। उनकी सम्मति थी कि जहां भी पुरानी पीढ़ी के नेता असफल रहे हैं वहां के नवयुवक स्वयं सचेत हुए हैं और उन्होंने समाज की नवरचना का उत्तरदायित्व स्वयं संभाल लिया है तथा उसको पहले

से अच्छा और श्रेष्ठ बनाने में मार्गदर्शन दिया है। भारत के युवक अब अपने पुराने नेताओं पर उत्तरदायित्व डालने मात्र से संतुष्ट नही हैं और हाथ पर हाथ रखे बैठे नहीं रह सकते। उन्हें मूक पशुओं की भांति पीछे-पीछे चलना अभीष्ट नहीं है। युवा पीढ़ी भारत को स्वतंत्र कराने का उत्तरदायित्व स्वीकार कर चुकी है। युवक अपने नेताओं को चाहते हैं, उन्हें प्यार करते हैं, उनका आदर करते हैं। लेकिन वे चाहते हैं कि नेता भी समय के साथ चलें। यदि बुजुर्ग नेता युवकों के साथ समन्वय नहीं रखेंगे तो नए और पुरानों के बीच दरार पैदा हो जाएगी।

छात्रों की भूमिका

सुभाष बोस अपने विद्यार्थी जीवन में विद्रोही छात्र रहे थे और अपने एक अंग्रेज अध्यापक के साथ मारपीट के कारण कालिज से निकाल दिए गए थे। अपने इस अनुभव के कारण वे छात्रों की कठिनाइयों को समझते थे। उनका विचार था कि जिस समाज में छात्रों का आदर नहीं होता, वहां छात्र अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकते।

विद्यार्थी और राजनीति

सुभाष बोस चाहते थे कि विद्यार्थी राजनीति में भाग लें। वे मानते थे कि गुलाम जाति के पास राजनीति के अतिरिक्त कुछ होता ही नहीं है। एक पराधीन देश में प्रत्येक समस्या, उचित प्रकार से विश्लेषित किए जाने पर मूलतः एक राजनीतिक समस्या ही सिद्ध होगी। जीवन एक पूर्ण इकाई है और इसलिए राजनीति को शिक्षा से अलग नहीं किया जा सकता। किसी भी स्वाधीन देश में विद्यार्थियों के राजनीति में भाग लेने पर पाबंदी नहीं लगाई जाती। उन्हें वहां विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाता है क्योंकि विद्यार्थियों में से ही राजनीतिक विचारक और राजनीतिज्ञ उत्पन्न होते हैं। भारत में विद्यार्थियों का सक्रिय राजनीति में भाग लेना इसलिए आवश्यक था क्योंकि उनमें से ही राजनीतिक कार्यकर्त्ता प्रशिक्षित किए जा सकते थे। सुभाष बोस यह भी स्वीकार करते थे कि राजनीति में भाग लेना चरित्र और पौरुष के विकास के लिए आवश्यक है। विश्वविद्यालयों को केवल किताबी कीड़े, स्वर्ण-पदक विजेता और कार्यालय लिपिक उत्पन्न नहीं करने हैं, वरन् ऐसे चरित्रवान व्यक्ति उत्पन्न करने हैं जो विभिन्न-विभिन्न क्षेत्रों में अपने देश के लिए महानता को प्राप्त कर के यश अर्जित करें।[12]

नारी-जागृति

अर्वाचीन भारतीय इतिहास की एक बड़ी विशेषता नारियों की अभूतपूर्व जागृति है। प्राचीन भारत में गार्गी, मैत्रेयी और लीलावती, मध्य युगीन भारत में सुल्तान रजिया,

चांद बीबी, नूरजहां और ब्रिटिश भारत में अहिल्याबाई और झांसी की रानी जैसी कुछ इनी-गिनी महिलाओं को छोड़कर स्त्रियां सामान्यत: घर की चहारदीवारी के भीतर ही बंद रहती थीं। आज भारतीय नारियों में जिस अभूतपूर्व जागृति के दर्शन हो रहे हैं, उसका अधिकांश श्रेय हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को और उसके नेताओं को है। इन नेताओं में सुभाषचन्द्र बोस का नाम उल्लेखनीय है।

आज़ाद हिंद फौज़ में स्त्री-सेना

सुभाषचन्द्र बोस स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार देने के समर्थक थे। उन्होंने आज़ाद हिंद फौज़ में स्त्रियों की जो पलटन तैयार की थी, उसका नाम झांसी की रानी रेजीमेंट रखा था। इस पलटन के प्रशिक्षण केंद्र का उद्घाटन करते समय उन्होंने झांसी की रानी के अदम्य शौर्य की प्रशंसा की थी। जिस समय झांसी की रानी ने अंग्रेजों के विरुद्ध तलवार उठाई थी, उनकी आयु सिर्फ 20 वर्ष की थी। वे अपने शत्रुओं से युद्ध करते हुए वीर गति को प्राप्त हुई थीं।[13] सुभाष बोस ने 1928 में कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर स्त्रियों की भी एक सैनिक टुकड़ी तैयार की थी।

भारतीय नारी की सामर्थ्य

सुभाष मानते थे कि जब तक भारतीय नारियां नहीं जागेंगी, भारत नहीं जाग सकता। वे भारतीय नारी की सामर्थ्य से भली-भांति परिचित थे और निश्चित रूप से कह सकते थे कि ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे हमारी नारियां नहीं कर सकती हों और कोई बलिदान अथवा कष्ट ऐसा नहीं है जिसे वे सहन न कर सकें।

माता और पिता दोनों

सुभाष बोस ने आज़ाद हिंद फौज़ की नारी सैनिकों के प्रति माता और पिता दोनों की भूमिका निभाई थी। उन महिला सैनिकों के मन पर सुभाष के व्यक्तित्व का गहरा असर पड़ा था।

शिक्षा

सुभाष बोस ने अपना राजनीतिक जीवन देशबंधु चितरंजन दास द्वारा स्थापित नेशनल कालिज के प्रिंसिपल के रूप में किया था। उनकी भारतीय शिक्षा के सभी पहलुओं में दिलचस्पी थी और उनका विचार था कि भारत में शिक्षा-प्रणाली का विकास भारत की परिस्थितियों, आवश्यकताओं, इतिहास तथा सामाजिकता को ध्यान में रखते हुए करना होगा। सुभाष बोस के मत से पूर्व और पश्चिम के बीच सांस्कृतिक संबंध के प्रति उचित मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण यह नहीं होगा कि भारतीय बच्चों पर कच्ची उम्र में अंग्रेजी शिक्षा लाद दी जाए, बल्कि यह होगा कि जब वे विकसित हो

जाएं तो उन्हें पश्चिम के निकट वैयक्तिक संपर्क में लाया जाए जिससे वे स्वयं यह निर्णय कर सकें कि पूर्व में और पश्चिम में क्या अच्छा है और क्या नहीं है।

अध्ययन की सीमाएं

सुभाष बोस अध्ययन को ही विद्यार्थियों के जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य था बुद्धि को कुशाग्र बनाना और विवेक-शक्ति को विकसित करना। यदि ये दोनों लक्ष्य पूरे हो जाते हैं तो मानना चाहिए कि शिक्षा का लक्ष्य पूरा हो गया। यदि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति चरित्रवान नहीं है तो उसे पंडित नहीं कहा जा सकता। और यदि एक अनपढ़ व्यक्ति ईमानदारी से काम करता है, ईश्वर में विश्वास रखता है और उससे प्रेम करता है तो उसे महापंडित माना जा सकता है।

शिक्षक की महत्ता

सुभाष बोस ने शिक्षा-प्रणाली में शिक्षक की महत्ता स्वीकार की है। उनका कहना है कि यदि शिक्षक योग्य नहीं, तो प्राथमिक शिक्षा सफल नहीं हो सकती। सर्वप्रथम तो शिक्षक को प्राथमिक शिक्षा के मौखिक सिद्धांत समझने चाहिए। तभी वह नई शिक्षा-प्रणाली से शिक्षा प्रदान कर सकता है। शिक्षक को अपने हृदय में प्रेम और सहानुभूति को स्थान देना होगा। यह आवश्यक है कि वह छात्रों के दृष्टिकोण से ही सब वस्तुओं को देखे। यदि शिक्षक अपनी कल्पना छात्रों की स्थिति में नहीं कर सकता, तो वह उनकी कठिनाइयों और भ्रांतियों को नहीं समझ सकता। इसी कारण अध्यापक का व्यक्तित्व सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। यदि शिक्षक का व्यक्तित्व प्रभावशाली नहीं है, तो किसी भी प्रकार की शिक्षा सफल नहीं हो सकती। चरित्रवान, व्यक्तित्व संपन्न शिक्षक मिल जाए तभी शिक्षा की प्रणाली निर्धारित हो सकती है। फिर तो किसी भी विषय की पुस्तक सरलता से पढ़ाई जा सकती है।

शिल्प-शिक्षा

सुभाष बोस ने शिल्प-शिक्षा के महत्त्व को भी अंगीकार किया है। पुतला बनाना, मिट्टी से मानचित्र बनाना, फोटो खींचना, रंग का प्रयोग, गाना सीखना, इन सबकी व्यवस्था करनी चाहिए। इससे न केवल सर्वांगीण शिक्षा मिलेगी अपितु साथ ही साथ लिखने-पढ़ने की भी विशेष उन्नति होगी। कई प्रकार की विद्या सीखने से लड़कों की बुद्धि बढ़ती है, लिखने-पढ़ने में मन लगता है। लिखने-पढ़ने का नाम सुन कर भय नहीं लगता। विभिन्न वस्तुएं न दिखाकर केवल रटाते हुए लिखाई-पढ़ाई प्रारम्भ कर देने से तो उस लिखाई-पढ़ाई में आनंद नहीं आता। बच्चा लिखाई-पढ़ाई से भयभीत हो जाता है और उसकी बुद्धि का विकास नहीं होता।

भाषा

भारतीय शास्त्र-चिंतन में वाणी का अपरिमित महत्व माना गया है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि यदि वाणी का अस्तित्त्व न होता तो धर्म और अधर्म का, सत्य और असत्य का, साधु और असाधु का, प्रिय और अप्रिय का ज्ञान न हो सकता। केवल मात्र वाणी के माध्यम से ही इनका ज्ञान होता है। इसलिए वाणी की उपासना करनी चाहिए।

भारत की भाषाओं के सर्वेक्षण के अनुसार देश में 179 भाषाएं और 544 बोलियां हैं और भाषा-विज्ञान वेत्ताओं ने इन्हें 4 विभिन्न परिवार-समूहों में विभक्त किया है : 1. भारतीय-आर्य ; 2. द्राविड़, 3. आस्ट्रो-एशियाई और 4. तिब्बती-बर्मी। निकट ऐतिहासिक काल में भारत के भाषागत विकास की दृष्टि से दो भाषा-परिवार सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं- भारतीय आर्य और द्राविड़। इस समय द्राविड़ भाषाएं मुख्यतया दक्षिण की चार भाषाएं हैं- तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम। भारतीय आर्य भाषाओं में हिंदी, संस्कृत, गुजराती, पंजाबी, बंगला, मराठी, उड़िया, असमिया, सिंधी, कश्मीरी, उर्दू आदि भाषाओं की गणना होती है।

भारत की भाषा-समस्या

भारत में भापा की समस्या यह है कि इतनी भाषाओं के होते हुए किस भाषा को राष्ट्रभाषा माना जाए। अंग्रेजी शासन-काल में देश की राजभाषा अंग्रेजी थी। लेकिन भारतीय नवजागरण के समय से ही भारतीय नेताओं ने हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद देने की बात कहनी शरू कर दी थी। इस दिशा में स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गांधी ने सबसे अधिक कार्य किया। गांधी जी अंग्रेजी के मोह से छुटकारा पाना स्वराज का एक अनिवार्य अंग मानते थे। उनका कहना था "अंग्रेजी अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य और कूटनीति की भाषा है और इसमें बहुत से साहित्यिक खजाने हैं, और यह हमें पश्चिमी विचारधारा और संस्कृति से परिचित कराती है। इसलिए हममें से कुछ के लिए अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है जिससे वे राष्ट्रीय व्यापार और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का काम चलाएं और राष्ट्र को पश्चिमी देशों के श्रेष्ठ साहित्य, विचारों और वैज्ञानिक प्रगति से अवगत कराएं। अंग्रेजी का इतना प्रयोग युक्तिगत है। लेकिन इस समय तो उसने हमारी मातृभाषाओं को पदच्युत करके हमारे हृदयों पर अपना अधिकार जमा रखा है। अंग्रेजों का और हमारा दर्जा बराबरी का न होने के कारण अंग्रेजी को यह अस्वाभाविक स्थान मिला हुआ है। भारतीयों का चरम बौद्धिक विकास अंग्रेजी के बिना भी संभव होना चाहिए। बालक-बालिकाओं के मन में यह विचार बैठना कि अंग्रेजी के ज्ञान के बिना उच्च समाज में प्रवेश मिलना असंभव है, भारत के पौरुष का और खास कर नारीत्व का अपमान है।"

हिंदी का समर्थन

सुभाषचन्द्र बोस कट्टर राष्ट्रवादी थे और उन्होंने 1928 में कलकत्ते में आयोजित राष्ट्रभाषा सम्मेलन में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का समर्थन किया था। इस संबंध में उन्होंने स्वामी दयानंद सरस्वती की सराहना की थी कि स्वामी जी ने हिंदी के प्रसार में योग दिया। सुभाष बोस ने राष्ट्रभाषा के संबंध में गांधीजी के विचारों की पुष्टि की और कहा कि स्वराज में स्वभाषा सम्मिलित है। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का यह अर्थ नहीं था कि लोग अपनी भाषाओं की उपेक्षा करें। भारत की सभी भाषाओं को समुचित महत्व मिलना चाहिए और उनके विकास का प्रयत्न होना चाहिए। बोस हिंदी और उर्दू में आधारभूत अंतर नहीं मानते थे। उनका विचार था कि इन दोनों भाषाओं का समन्वय भारत की भाषा-समस्या को सुलझाने में काफी हद तक सहायक हो सकता है।

लिपि

जिस प्रकार भारत की विभिन्न भाषाओं के मध्य में प्रबल सारूप्यताएं और समानताएं हैं, उसी प्रकार भारत की विभिन्न लिपियों के अक्षरों में भी सारूप्यताएं और समानताएं पाई जाती हैं। भारतीय लिपियों में देवनागरी लिपि का विशेष महत्त्व और स्थिति है। हिंदी, संस्कृत और मराठी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। गुजराती लिपि शिरोरेखा को छोड़ कर देवनागरी के बहुत अधिक निकट है। गुरुमुखी और बंगला लिपियां भी देवनागरी से काफी मिलती हैं। इसके अलावा देवनागरी संस्कृत भाषा की लिपि है और दक्षिण भारत के एक बहुत बड़े भाग में संस्कृत लिखने के लिए स्थानीय और क्षेत्रीय लिपियों के स्थान पर देवनागरी का ही व्यवहार होता है। इस दृष्टि से भारत की भाषाएं जिन लिपियों में लिखी जाती हैं, उन लिपियों को जानने वाला एक बहुत बड़ा भाग देवनागरी लिपि से परिचित है। इसलिए यदि भारत की समस्त भाषाओं को लिखने के लिए एक लिपि अपनानी हो, तो इसके लिए संख्या की दृष्टि से विचार करने पर सर्वोत्तम दावेदार देवनागरी लिपि होगी। जस्टिस शारदाचरण मित्र, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी ने इस विचार का समर्थन किया है।

समान लिपि का महत्व

लिपि के संबंध में सुभाषचन्द्र बोस का विचार था कि भारत की समान भाषा नागरी अथवा उर्दू लिपि में लिखी जा सकती है। उनका यह भी विचार था कि भारत की सारी भाषाओं के लिए लैटिन लिपि को भी अपनाया जा सकता है। तुर्की ने व्यापक भाषा-सुधार के रूप में रोमन लिपि को स्वीकार किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इंडोनेशिया ने भाषा इंडोनेशिया के लिए रोमन लिपि को अपनाया है। यूरोप की अनेक भाषाएं रोमन लिपि में लिखी जाती हैं।

सारांश

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का लक्ष्य था दमन और अन्याय का अंत कर न्याययुक्त और समातायुक्त समाज की स्थापना। भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के संबंध में सुभाष बोस के अपने विचार थे और अपनी कार्यपद्धति थी।

सुभाष की भारतीय संस्कृति में अटूट आस्था थी। वे उन लोगों में से नहीं थे जो वर्तमान के उत्साह में अपने विगत गौरव को भूल जाते हैं।

आज भारत संसार के सबसे गरीब देशों में से एक है। लेकिन अंग्रेजी हुकूमत कायम होने से पहले भारत गरीब नहीं था, समृद्ध था। भारत की संपदा ने ही विदेशी आक्रमणकारियों को भारत की ओर आकृष्ट किया था।

भारतीय संस्कृति की एक अनूठी विशेषता नए विचारों और संस्कृतियों को अपने अनुकूल बना लेना है।

सुभाष बोस ने आधुनिक भारत को समझने के लिए तीन तत्त्व आवश्यक माने हैं– 1. प्राचीन भारत की सभ्यता, 2. स्वाधीनता का संघर्ष और 3. विदेशी प्रभाव और तत्त्व।

सुभाष बोस भारत में नए और पुराने का मेल चाहते थे।

सुभाष बोस के विचार से भारतीय राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रीयता का पोषक था।

सुभाष बोस ने उन सभी देशी-विदेशी महापुरुषों के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया है जो भारतीय संस्कृति के प्रति अस्थावान रहे हैं।

सुभाष बोस का बंगाल प्रेम उनके देश प्रेम का ही एक अंग था। बंगाल की दुर्दशा पर उन्हें हार्दिक संताप था।

सुभाष बोस का विचार था कि क्रांति राष्ट्र की मानसिकता बदल देती है। कोई राष्ट्र अपनी मूल प्राणशक्ति खो देने के पश्चात् जीवित नहीं रह सकता।

सुभाष बोस ने राष्ट्रीय एकता पर बल दिया है। उनके विचार से राष्ट्रीय एकत्ता की समस्या व्यापक रूप से एक मनोवैज्ञानिक समस्या है।

सुभाष बोस त्याग और कष्ट सहन को राष्ट्र के उत्थान की नींव मानते थे।

सुभाष बोस उच्चतम देशभक्त थे। वे मानते थे कि भारतमाता की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर देना पुण्य का कार्य है।

सुभाषचन्द्र बोस मानते थे कि भारत की मुख्य समस्याएं हैं– गरीबी, अशिक्षा और बेकारी। इन समस्याओं को समाजवाद के द्वारा ही सुलझाया जा सकता है। उनकी समाजवाद-विषयक धारणाओं पर कार्ल मार्क्स के साथ-साथ स्वामी विवेकानंद का भी प्रभाव है। इसलिए बोस के समाजवाद में पदार्थवाद और अध्यात्मवाद दोनों का

समन्वय पाया जाता है। उनके समाजवादी चिंतन का एक पहलू था देश का उद्योगीकरण। इसका यह अर्थ न था कि कुटीर उद्योगों की ओर ध्यान न दिया जए। बोस बेकारी की समस्या को हल करने के लिए देश का उद्योगीकरण आवश्यक मानते थे।

सुभाष बोस नयी पीढ़ी के नेता थे। उन्होंने विभिन्न देशों के युवक आंदोलनों से प्रेरणा ग्रहण की थी और वे राष्ट्रोत्थान के कार्य में युवकों की महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार करते थे।

सुभाष मानते थे कि केवल वादों से देश का कल्याण नहीं होगा। देश का कल्याण होगा मानव के निर्माण से। इसके लिए चरित्र-गठन पर जोर देना आवश्यक है।

सुभाष बोस चाहते थे कि युवक अपने सामने कुछ आदर्श रखें। आदर्श सामने रखने से जीवन में प्रगति आसानी से हो सकती है। विचार और आदर्श कभी नष्ट नहीं होते।

सुभाष बोस छात्रों की कठिनाइयों को समझते थे। वे चाहते थे कि विद्यार्थी राजनीति में भाग लें। विश्वविद्यालयों का कार्य केवल किताबी कीड़ों को पैदा करना नहीं है। उन्हें छात्रों के व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास करना चाहिए।

सुभाषचन्द्र बोस का भारतीय नारियों की शक्ति में विश्वास था। वे नारियों को पुरुषों के समान ही अधिकार देने के समर्थक थे। उन्होंने आज़ाद हिंद फौज में स्त्रियों की भी एक पलटन तैयार की थी।

सुभाषचन्द्र बोस ने अपना सार्वजनिक जीवन देशबंधु द्वारा स्थापित नेशनल कालिज के प्रिंसिपल के रूप में किया था। उनकी भारतीय शिक्षा के सभी पहलुओं में दिलचस्पी थी। उनका विचार था कि भारत में शिक्षा प्रणाली का विकास भारत की परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर करना चाहिए। सुभाष बोस शिक्षा में शिक्षक की महत्ता स्वीकार करते थे। वे शिल्प-शिक्षा को भी प्रोत्साहन देना चाहते थे।

सुभाष बोस हिंदी को भारत की समान भाषा बनाने के पक्ष में थे। वे देश की विभिन्न भाषाओं के लिए एक समान लिपि भी चाहते थे। यह समान लिपि देवनागरी भी हो सकती थी और रोमन भी।

संदर्भ और पाद टिप्पणियां

1. सुभाष बोस ने अपने सपनो के भारत का निम्न शब्दो मे चित्र खींचा है :

   "It is my dream to organize a society free in all its aspects, and one governed by a state, completely independent. It will be a society

where instead of repression individuals will enjoy all freedom in every sphere, with absolutely no trace of distinction of caste or colour; women will be free and will enjoy equal rights with men, and will devote their lives to serving the state and society side by side with men; economic inequality will be totally abolished and all individuals will have equal opportunities for education and career; work and labour will enjoy a very high place of honour, and idles will be completely weeded out of it. No foreign domination nor such intervention will ever be tolerated or allowed to make havoc of this ideal state; it will always function as the principal aid, or to be more precise, an instrument of the Swadeshi Samaj or our own social organism. Indeed this society and the state that I dream of will satisfy not merely all the wants and aspirations of the Indian people but will gradually transcend them so as to develop into institutions which will be the ideal even for humanity at large to attain." Subhash Chandra Bose, Extract from the Presidential Address delivered at the Midnapur Youth Conference on 29 December, 1929. Quoted in Verinder Grover (Ed.). *Subhash Chandra Bose*, Deep and Deep Publications, New Delhi-110027, 1991, pp. 214-15.

2. "Whether we accept the theories of the Western Scientists or not, the fact has to be admitted that in India a commingling of blood of various races has already taken place, and it is due to the immigration of all kinds of foreign peoples that our India is today a confluence of the diverse stream of world culture. Who knows probably it was due to this union and intermingling of blood, that the people of India, with their culture and civilization, were being reborn through the ages, and thus they have enjoyed new life again and again. This perhaps has lent the Indian nation, ancient as it is, the immortality it still enjoys." Subhash Chandra Bose as Quoted in Verinder Grover, *Subhash Chandra Bose*, p.201.

3. सुभाष के जीवन और चिंतन में भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्रति प्रेम बचपन से ही झलकता है। वे पश्चिम की अच्छी बातें ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत थे लेकिन उनके पैर पूरी मजबूती से भारतीय भूमि पर टिके हुए थे। उदाहरण के लिए उन्होंने बचपन में अपनी माता प्रभावती को एक पत्र में लिखा था :

"What was India and what is she now?...Where are those saints, those sages, those philosophers – Our forefathers who had explored the farthest limits of the realm of knowledge? Where is their fiery personality? What is their strict Brahamacharya?

...All is gone!... But there is hope yet – I think there is hope yet – the angel of hope has appeared in our midst to put fire in our souls

and to shake off our dull sloth. It is the saintly Vivekananda. There stands he, with his angelic appearance, his large and piercing eyes and his sacred dress to preach to the whole world, the sacred truths lying embedded in Hinduism." Subhash Chandra Bose, From the letter to his mother, dated January, 1913. Quoted in Leonard A. Gordon. *Brothers Against the Raj– A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose*, p.34.

4. "Nationalism is sometimes assailed as narrow, selfish and aggressive. It is also regarded as a hindrance to the promotion of internationalism.... My reply is that Indian nationalism...is inspired by the highest ideals of the human race, viz. *satyam* (the truth), *shivam* (the good), *sundaram* (the beautiful). Nationalism in India has instilled into us truthfulness, honesty, manliness and the spirit of service and sacrifice. What is more, it has roused the creative faculties which for centures had been lying dormant in our people and as a result we are experiencing a renaissance in the domain of Indian art." Subhash Chandra Bose, Quoted by Leonard A. Gordon.

5. "What greater solace would there be than the feeling that one had lived and died for a principle. A man could not possess higher satisfaction than the knowledge that his spirit would beget kindered spirits to carry on his unfinished task. A soul could not desire a better reward than the certainty that his message would be wafted over hills and dales. Life could attain no higher consummation than the peaceful self-immolation at the altar of one's cause. If one lost anything of the earth out of sacrifice and suffering, one would gain much more in return by becoming the heir to a life immortal. The individual must die, so that the nation might live and may win freedom and glory." Subhash Chandra Bose, as quoted by S.K.Bose (Ed.), *Crossroads*, 1981, p. 380.

6. 19 फरवरी, 1938 को कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते समय सुभाष बोस ने समाजवाद तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास के संबंध में अपने विचार प्रकट किए थे। उन्होंने कहा था : "I have no doubt in my mind that our chief national problems relating to the eradication of poverty, illiteracy and disease and to scientific production and distribution can be effectively tackled only along sqcialistic lines. The very first thing which our future national government – will have to do, would be to set up a commission for drawing up a comprehensive plan of reconstruction." Subhash Chandra Bose, Quoted by Verinder Grover (Ed.), *Subhash Chandra Bose*, p.287.

7. एच० वी० कामथ के अनुसार सुभाषचन्द्र बोस ने आयोजन के निम्न सिद्धान्त निर्धारित किए थे :

1. मुख्य संसाधनों में स्वायत्तता।

2. बिजली, धातु, मशीनों, रसायनिक पदार्थो, परिवहन और संचार साधनों का विकास।

3. तकनीकी शिक्षा और तकनीकी अनुसंधान को प्रोत्साहन।

4. स्थायी राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद की स्थापना।

5. वर्तमान औद्योगिक स्थिति का आर्थिक सर्वेक्षण। Leonard A. Gordon, *Brothers Against the Raj– A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose*, p.355.

8. उद्योगीकरण के संबंध मे बोस के विचार गांधी जी के विचारों से मेल नहीं खाते। गांधी जी मशीनों और बड़े उद्योगों के विरुद्ध थे। उनका तो यहां तक कहना था कि जब भारत का उद्योगीकरण होगा, तब वह दूसरे राष्ट्रों के लिए एक अभिशाप और संसार के लिए एक खतरा बन जाएगा। विश्वप्रकाश गुप्त तथा मोहिनी गुप्त, *महात्मा गांधी– व्यक्ति और विचार*, दिल्ली, 1996, पृ० 170–171.

9. "Their ideal should be to destroy all the existing bonds of despotism as well as injustice and irrational practices, and to build in its place a new society and a new kind of people. Ever since the beginning of history the man has always tried to see beyond the ramparts of the past and present, in order to have a glimpse of the future." Subhash Chandra Bose, Quoted by Verinder Grover (Ed.), *Subhash Chandra Bose*, p.197.

10. "Whoever is truly going is neither cowed down at the approach of struggle and destruction, nor does he ever fall in his task of creating the new. A man even when old in years could still remain young if he has preserved the inner freshness of his life, but in its absence even a young man would be old enough not advanced in years." *Ibid.*, p.198.

11. "Men, true in spirit, were indeed the basic need, for without men hopes of national reconstruction... on any firm ground would be idle dreams." *Ibid.*, p.199.

12. "If all the problems of a subject nation boil down to one major problem, I mean the political problem, then all its national activities would in the final analysis amount to political activity. In no free country politics is ever banned: students, on the contrary, are encouraged to join it, for there the people know that the future national leaders and statesmen must come out of the students community." Subhash Chandra Bose, Quoted by Verinder Grover (Ed.), *Subhash Chandra Bose*, p.261.

13. "Our past has been a great and glorious one. India could not have produced a heroine like the Rani of Jhansi if she did not have a glorious tradition... If for the war of independence of Jhansi, India had to produce a Lakshmi Bai, today for the war of Independence of the whole of India, India has to produce and shall produce thousands of Ranis of Jhansi." Subhash Chandra Bose, quoted by Verinder Grover, *Ibid.*, pp.368-9.

14

राजनीति-दर्शन

दार्शनिक नहीं कर्मयोगी

सुभाष बोस मुख्य रूप से दार्शनिक नहीं, कर्मयोगी थे। वे राष्ट्रीय आंदोलन के कर्मठ नेता थे और उनके जीवन की मुख्य अभिलाषा जिस तरह भी हो, भारत की स्वतंत्रता प्राप्त करना था। उनका सारा जीवन और चिंतन इस एक और अनन्य लक्ष्य की पूर्ति के लिए समर्पित था।[1]

अभौतिक सिद्धांत बनाम व्यावहारिक लक्ष्य

उनके राजनीति-दर्शन को उनके इस एक आदर्श के आलोक में समझना उचित होगा। स्थितियां सदा एक-सी नहीं रहतीं। वे बदलती रहती है। व्यावहारिक नेता को बदलती हुई स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में अपने सिद्धांत और कार्यक्रम निश्चित करने पड़ते हैं। उसकी मुख्य आस्था अभौतिक सिद्धांतों के प्रति नहीं, व्यावहारिक लक्ष्यों के प्रति होती है।[2]

चिंतन और कर्म का समन्वय

सुभाष बोस का कड़े से कड़ा विरोधी भी उन पर यह आरोप नहीं लगा सकता कि उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन में कोई काम अपने वैयक्तिक लाभ और प्रतिष्ठा के लिए किया है। राष्ट्रीय आंदोलन के बहुत कम ऐसे नेता हैं जिन्होंने सुभाष के समान तकलीफें सहीं हों और जोखिम उठाए हों। एक ओर उनकी गणना लोकमान्य तिलक, लाजपत राय, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे राजनीतिक नेताओं में की जा सकती है, दूसरी ओर वे चंद्रशेखर आज़ाद, जतिनदास और भगतसिंह जैसे क्रांतिकारियों में अग्रगण्य हैं। इन शहीदों की भांति वे भी देश की आज़ादी के लिए शहीद हुए। सुभाष बोस के जीवन में चिंतन और कर्म, लक्ष्य और मार्ग, निर्माण और क्रांति का अपूर्व समन्वय मिलता है।[3]

समस्याएं

स्वतंत्रता के आंदोलन के नेता होने के कारण सुभाष को अनेक व्यावहारिक समस्याओ का सामना करना पड़ा था। कुछ समस्याएं थीं- भारतीय इतिहास, समाज और संस्कृति का विश्लेषण, भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों की कार्य-प्रणाली और विचारधारा का अध्ययन, ब्रिटिश सरकार की नीतियों की समीक्षा, स्वतंत्रता आंदोलन की पद्धति, विदेशी संपर्क, स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय समाज और शासन का संगठन। एक राष्ट्रीय नेता होने के नाते सुभाष बोस भारतीय नवनिर्माण की समस्याओं से अवगत थे और इन समस्याओं के समाधान के बारे में उनकी अपनी एक दृष्टि थी।

सुभाष बोस की अपनी योजना

राष्ट्रीय नेताओं की श्रेणी में सुभाष बोस ही एक ऐसे नेता थे जिन्होंने गांधी जी द्वारा निर्दिष्ट कार्य-पद्धति से भी कार्य किया और उससे हट कर भी। भारत को स्वतंत्र कराने की सुभाष बोस की अपनी योजना सफल नहीं हुई। लेकिन उनकी योजना ने भारतीय स्वतंत्रता के लक्ष्य को निकट अवश्य ला दिया।[4]

चिंतन के स्रोत

सुभाष बोस के राजनीति दर्शन के निर्माण और विकास में अनेक व्यक्तियों और परिस्थितियों का हाथ है। सुभाष के पिता जानकीनाथ बोस और माता प्रभावती बोस दोनों ही धर्मपरायण प्राणी थे। उनके पैतृक घर में दुर्गापूजा हर साल निष्ठापूर्वक आयोजित होती थी और सुभाष के बाल-मन पर इसका प्रभाव पड़ा था। काली की उपासना तथा ध्यान अंत तक सुभाष के जीवन के अभिन्न अंग बने रहे। छात्र-जीवन में सुभाष का स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा श्री अरविंद घोष की रचनाओं तथा विचारों से परिचय हुआ। इन महापुरुषों के व्यक्तित्व तथा विचारों ने सुभाष के किशोर मानस को गढ़ने में योग दिया। सुभाष ने अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में गुरु की खोज का भी प्रयत्न किया था और इसके लिए वे काफी दिनों तक घर से बाहर भी रहे थे।

क्रांतिकारियों का प्रभाव

सुभाष के छात्रजीवन में बंगाल मे अनेक क्रांतिकारी गुट और सामाजिक सेवा संगठन सक्रिय थे।[5] उनकी क्रांतिकारी गुटों में नहीं, समाजसेवी संस्थाओं में दिलचस्पी थी और उन्होने इन संस्थाओं के समाज-सेवा कार्यक्रमो में हाथ बंटाया था। सुभाष अपने अध्यापक बाबू बेनी माधवदास से भी प्रभावित हुए थे। सुभाष को उनके मुखमंडल पर एक ऐसी भावाभिव्यक्ति के दर्शन होते थे जिन्हें वे केशवचन्द्र सेन के चित्रों में पाते थे। यह आश्चर्यजनक भी नहीं था क्योंकि बेनी माधवदास केशवचन्द्र

के कट्टर भक्त और शिष्य थे। सुभाष ने जीवन की आधारभूत समस्याओं को सुलझाने के लिए बी० ए० में दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया था। उन्होंने इस संदर्भ में कांट, हीगेल, मार्क्स, वर्गसां तथा अन्य पश्चिमी चिंतकों की रचनाओं को भी पढ़ा था और उनके अपने चिंतन में इन पाश्चात्य विचारकों के भी सूत्र उपलब्ध होते हैं।

राजनीतिक गुरु

सुभाष ने 1921 में आई० सी० एस० की नौकरी से इस्तीफा देने के वाद भारतीय राजनीति में प्रवेश किया और 1921 से 1925 तक देशवंधु चितरंजन दास के नेतृत्त्व में काम किया। देशवंधु चितरंजनदास सुभाष वोस के राजनीतिक गुरु थे।[6]

गांधी जी का महत्त्व

यद्यपि सुभाष वोस का गांधी जी से मतभेद रहा लेकिन वे गांधी जी की अनुपम देन के कायल थे। सुभाष ने गांधी जी की आलोचना करते हुए भी यह स्वीकार किया है कि गांधी जी एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जो जनता के सर्वसम्मत प्रतिनिधि के रूप में खड़े हो सके। गांधी जी के नेतृत्त्व में भारत ने 10 साल में 100 साल की मंजिल तय की।

रवीन्द्रनाथ टैगोर

सुभाष रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रतिभा और सांस्कृतिक भूमिका से भी प्रभावित थे। उनके विचार से टैगोर का संदेश जवानी का संदेश था। टैगोर ने काव्य और कला का सृजन ही नहीं किया वे काव्य और कला के लिए जिए भी थे। जव सुभाष वोस को प्रेसीडेन्सी कालिज से निकाला गया था, तव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इसका विरोध किया था और भारतीय विद्यार्थियों की शोचनीय स्थिति के वारे में अपने विचार प्रकट किए थे। सुभाष ने शांतिनिकेतन जाकर रवीन्द्रनाथ के दर्शन किए थे। 1921 में यूरोप से वापस आने पर भी वे टैगोर से मिले थे। टैगोर की अनेक कविताएं सुभाष को कंठस्थ थीं और वे उन्हें गुनगुनाया करते थे। टैगोर ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन, विदेशी माल के वहिष्कार और खादी कार्यक्रम की सार्थकता के वारे में संदेह प्रकट किए थे। टैगोर ने रूस की यात्रा के जो अनुकूल संस्मरण लिखे थे, उनका सुभाष पर भी प्रभाव पड़ा था। जिन दिनों दूसरी वार कांग्रेस के अध्यक्ष-पद के प्रश्न पर सुभाष वोस का महात्मा गांधी से मतभेद हुआ था, टैगोर ने सुभाष का साथ दिया था और उन्हें *देशनायक* की पदवी दी थी।

समाजवाद के प्रति झुकाव

1917 में रूस की क्रांति के वाद देश में वामपंथी विचारधारा का विकास हुआ था।[7] सुभाष वोस इस विचारधारा के पक्षधर थे। उनका मानना था कि भारत की मुख्य

राष्ट्रीय समस्याएं जो गरीबी, अशिक्षा और बीमारी के उन्मूलन से एवं वैज्ञानिक उत्पादन एवं वितरण से संबधित हैं, समाजवादी आधार पर ही प्रभावशाली ढंग से सुलझायी जा सकती है। वे मानते थे कि भारत का परित्राण समाजवाद पर निर्भर है। लेकिन उनका विचार था कि भारत दूसरे राष्ट्रों के अनुभवो से शिक्षा ग्रहण कर सकता है, किंतु उसे अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप अपनी कार्यपद्धति विकसित करनी होगी। सुभाष बोस को आशा थी कि समाजवाद के उस प्रकार में जो भारत विकसित करेगा, कुछ नया और मौलिक होगा जो संपूर्ण विश्व के लिए लाभदायक हो सकता है।

साम्यवाद

सुभाष बोस साम्यवाद के विरुद्ध थे। उनके विचार से साम्यवाद की सबसे बड़ी यह है कि वह राष्ट्रीय भावनाओं का मूल्य नही समझता। बोस भारत में एक प्रगतिशील व्यवस्था को अपनाना चाहते थे जो जनता की सामाजिक आवश्यकताओं को फलीभूत करे और राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित्त हो।

फारवर्ड ब्लाक

बोस द्वारा स्थापित फारवर्ड ब्लाक का कार्य्क्रम समाजवाद पर आधारित था।[8]

नाज़ीवाद और फासीवाद

1930 के बाद के वर्षो में सुभाष बोस नाज़ीवाद और फासीवाद से प्रभावित हुए थे। उनका मानना था कि फासीवाद ने इटली में राष्ट्रीय एकता और संगठन स्थापित किया है, पर वह आर्थिक व्यवस्था को पूरी तरह सुधारने में सफल नहीं हो पाया है। सुभाष बोस धुरी शक्तियों– जर्मनी, इटली और जापान– के सहयोग से अंग्रेजों को भारत से निकालना चाहते थे। इन देशों के संगठन और अनुशासन को वह भारत के लिए भी उपयोगी मानते थे।

देशभक्ति

सुभाष बोस के राजनीतिक चिंतन में सबसे प्रमुख तत्त्व देशभक्ति और राष्ट्रीयता का है.। सुभाष महान् देशभक्त थे। उनका लक्ष्य था– भारत की ब्रिटिश दासता से मुक्ति और पूर्ण स्वाधीनता। उनका कहना था–

"अपने जीवन की अंतिम सांस तक मैं मातृभूमि की सेवा करता रहूंगा और उसके लिए बड़े-से बड़ा बलिदान करने से न झिझकूंगा। चाहे मैं संसार के किसी भाग मे क्यों न हूं, मेरे लिए भारत का हित सर्वप्रिय है।"

लोकतंत्र का अर्थ

लोकतंत्र का अर्थ है जनता की सरकार अथवा वह शासन-प्रणाली जिसमें सर्वोच्च सत्ता अंतत. जनता के हाथों में केंद्रित हो। इसी आशय को ध्यान में रखकर

लिंकन ने लोकतंत्र को 'जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए' शासन कहा था।

जीवन का समग्र दर्शन

लोकतंत्र जीवन का एक समग्र दर्शन है और उसके विविध पहलू हैं– राजनीतिक, सामाजिक, मानसिक और आर्थिक।

विविध पहलू

लोकतंत्र के राजनीतिक पहलू में राजनीतिक समानता के आदर्श को स्वीकार किया जाता है और राजनीतिक शक्ति पर किसी एक वर्ग-विशेष का अधिकार नहीं माना जाता। इसमें शासन का संचालन बहुमत के सिद्धांत के अनुसार होता है। सामाजिक आदर्श के रूप में लोकतंत्र सभी स्त्री और पुरुष, अमीर और गरीब, सबल और निर्बल की मूलभूत एकता का प्रतिपादन करता है। लोकतंत्रात्मक समाज में न तो कोई सुविधासंपन्न विशिष्ट वर्ग ही हो सकता है और न जाति, धर्म, वर्ण, धन और लिंग-भेद के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच ऊंच-नीच की दीवारें ही खड़ी की जा सकती हैं। मानसिक दृष्टिकोण के रूप में लोकतंत्र के अंतर्गत स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक औसत व्यक्ति ईमानदार होता है। उसमें अपना शासन आप करने और अपना बुरा-भला पहचानने की योग्यता पाई जाती है। लोकतंत्र में जनसाधारण की महिमा और गरिमा पर भरोसा रखा जाता है। आर्थिक लोकतंत्र का अभिप्राय है समाज मे आर्थिक शक्ति का समता युक्त वितरण जिससे प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति के समान अवसर मिल सकें तथा जनसाधारण का जीवन सुखी और समृद्ध हो सके।

सर्वश्रेष्ठ शासन-प्रणाली

लोकतंत्र सर्वश्रेष्ठ शासन-प्रणाली है। लेकिन वह सबसे कठिन शासन-प्रणाली भी है। लोकतंत्र एक विशेष परिवेश में ही सफल हो सकता है और उसकी सफलता के लिए आवश्यक शर्तें हैं– उचित जनशिक्षा, प्रबुद्ध जनमत, संगठित राजनीतिक दल, शासन में नागरिकों की भागीदारी, सतत सतर्कता, सहिष्णुता, सद्भावना, एकता, आर्थिक सुरक्षा।

"आश्चर्यजनक संस्था"

सुभाष बोस लोकतंत्र के समर्थक थे। वे लोकतंत्र को एक "आश्चर्यजनक संस्था" मानते थे। आधुनिक युग में लोकतंत्र प्रत्येक राजनीतिक संगठन का मूलमंत्र है।

अंधभक्त नहीं

बोस लोकतंत्र के अंधभक्त नहीं थे। उन्होंने लोकतंत्र की विशेषताओं के साथ उसकी त्रुटियां भी रेखांकित की हैं। लोकतंत्र जनता का शासन है। लोकतंत्र में सारी

शक्ति अंततः जनता के हाथों में आ जाती है। इसलिए बोस चाहते थे कि जनता लोकतंत्र के मूल्यों की रक्षा करने के लिए तैयार हो। यदि जनता लोकतंत्र के लिए तैयार नहीं होती, तो सत्ता कुछ स्वार्थी व्यक्तियों के हाथों में केंद्रित हो सकती है। बोस भारत के लिए एक ऐसे संविधान की रचना चाहते थे जो लोक-प्रभुसत्ता के सिद्धांत पर आधारित हो

पश्चिम की देन नहीं

बोस का विचार था कि लोकतंत्र पश्चिम की देन नहीं है। प्राचीन भारत में भी गणराज्यों की दीर्घ परम्परा रही थी। बोस जन्म के ऊपर आधारित विशेषाधिकारों का अंत चाहते थे। वे चाहते थे कि सबको अपने विकास के समान अवसर मिलें। स्वतंत्रता, समानता, बंधुता और न्याय लोकतंत्र की बुनियादें हैं और सुभाष बोस इन बुनियादों को पक्का रखना चाहते थे। उन्होंने लोकतंत्र के इन मूल्यों की व्याख्या की है।

स्वतंत्रता

सुभाष बोस के लिए स्वतंत्रता से तात्पर्य है- सर्वतोमुखी स्वतंत्रता, व्यक्ति के अलावा समाज के लिए स्वतंत्रता, धनी के साथ निर्धन के लिए स्वतंत्रता, आदमी के साथ महिलाओं के लिए स्वतंत्रता, सभी वर्गों के लिए स्वतंत्रता। इस स्वतंत्रता का तात्पर्य मात्र राजनीतिक बंधनों से मुक्ति नहीं है। इसका तात्पर्य है धन का समान बंटवारा, जातिगत अवरोधों और सामाजिक असमानताओं की समाप्ति, सांप्रदायिकता और धार्मिक असहिष्णुता का विनाश। यह आदर्श कठोर लग सकता है। पर यही आदर्श आत्मा की भूख को शांत कर सकता है।

समानता

बोस ने समानता के आदर्श का भी गुणगान किया है। वे मानते हैं कि सच्चे लोकतंत्र की स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि जन्म, जाति और संप्रदाय पर आधारित विशेष सुविधाएं समाप्त हों और जाति, मत एवं धर्म से निरपेक्ष होकर सबको समान अवसर प्राप्त हों।

बंधुता

सुभाष बोस की लोकतंत्र-विषयक संकल्पना में बंधुता का आदर्श भी महत्त्वपूर्ण है। इस आदर्श के दो पहलू हैं- आंतरिक और बाह्य। आंतरिक संदर्भ में बंधुता का अर्थ है भारत में विभिन्न क्षेत्रों, भाषाओं, जातियों और रीति-रिवाजों के बावजूद एक बुनियादी एकता है और इस एकता को दृढ़ आधार प्रदान करना भारतीय जनजीवन के लिए सर्वथा आवश्यक है। बाह्य क्षेत्र में बंधुता की भावना का अभिप्राय है विश्वबंधुत्व अथवा *वसुधैव कुटुम्बकम्* की धारणा।

भारतीय एकता

सुभाष बोस भारतीय एकता के कट्टर पोषक थे। उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन में हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ाने का प्रयास किया। उनका विचार था कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज्य करो' नीति का फल है और जहां अंग्रेज भारत-भूमि से विदा हुए, भारत में राष्ट्रीय सौहार्द स्थापित हो जाएगा। सुभाष बोस की आज़ाद हिन्द फौज़ में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी जातियों और प्रांतों के लोग थे और उन्होंने आपस में मिलकर भारत की आज़ादी के लिए अपना खून बहाया।

अंतर्राष्ट्रीयता

बोस अंतर्राष्ट्रीयता के पक्षधर थे। उन्हें राष्ट्रसंघ से बड़ी आशाएं थीं लेकिन अमरीका के स्वार्थ के कारण वह अंतर्राष्ट्रीय शांति कायम रखने में सफल न हो सका। बोस का एशियाई एकता में सुदृढ़ विश्वास था और वे चाहते थे कि एशिया के देश एक-दूसरे के निकट आएं।

न्याय

न्याय समाज-दर्शन की एक ऐसी बुनियादी धारणा है जिस पर सामाजिक चिंतन के आरम्भ से ही विचार होता रहा है। इतिहास में न्याय की अनेक प्रकार से व्याख्या हुई है। कभी उसे 'जैसी करनी वैसी भरनी' का पर्याय माना गया और कभी पूर्व जन्म के कर्मों का फल। सत्तारूढ़ व्यक्तियों ने न्याय की परिभाषा सदा अपने स्वार्थ को ध्यान में रखकर की। यूनानी दार्शनिक प्लेटो के अनुसार जब समाज के विभिन्न वर्ग अपनी मर्यादाओं के भीतर रहते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं, तब समाज में न्याय की सृष्टि होती है। भारतीय संस्कृति में न्याय की व्यापक संकल्पना है और वह 'धर्म' शब्द के निकट है।

मार्क्सवाद और सामाजिक न्याय

मार्क्सवाद के प्रति जनता के आकर्षण का स्रोत उसका सैद्धांतिक आधार नहीं प्रत्युत उसका सामाजिक न्याय है

न्याय के तीन रूप

न्याय के तीन रूप हैं– सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और राजनीतिक न्याय। सामाजिक न्याय का अर्थ यह है कि नागरिक-नागरिक के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद न माना जाए और प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-विकास के पूर्ण अवसर सुलभ हों। आर्थिक न्याय का अभिप्राय यह है कि धन-संपदा के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच विभेद की कोई दीवार खड़ी न हो। राजनीतिक

न्याय का मंतव्य यह है कि राजनीतिक क्षेत्र में नागरिक-नागरिक के बीच मनमाना भेद नहीं किया जाता तथा सभी को समान राजनीतिक अधिकार उपलब्ध होते है।

सपनों का भारत

सुभाष बोस ने अपनी रचनाओं में स्वतंत्रता-परवर्ती भारत का चित्र प्रस्तुत किया है। उनके सपनों का भारत समाजवाद के सिद्धांतों पर आधारित है। इस भारत में सभी व्यक्तियों को अपने विकास के अवसर उलब्ध हैं और उन्हें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय प्राप्त होता है। सुभाष इस उद्देश्य को आयोजन के द्वारा प्राप्त करना चाहते थे।[9]

संसदात्मक बनाम अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली

सुभाष बोस ब्रिटेन के ढंग की संसदीय शासन-प्रणाली के पक्ष में नहीं थे। वे अमरीका के आदर्श पर अध्यक्षात्मक शासन-प्रणाली के पक्ष में थे।

केन्द्रोन्मुख शासन

बोस भारत के लिए केन्द्रोन्मुख शासन के पक्ष में थे। वे प्रांतों को सांस्कृतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में पर्याप्त स्वायत्तता देना चाहते थे। वे गांधी जी के इस विचार से सहमत नहीं थे कि सत्ता का ऊपर से नीचे तक विकेन्द्रीकरण हो। उनकी दृष्टि में केद्रीकरण और विकेन्द्रीकरण सापेक्ष शब्द थे। 10 मई, 1938 को उन्होने बम्बई नगर निगम के सम्मुख भाषण देते हुए कहा था कि लोकतंत्र की वास्तविक पाठशाला स्थानीय स्व-शासन है।

राजनीतिक दल

सुभाष बोस अपने राजनीतिक जीवन के आरम्भ से ही यह चाहते थे कि राजनीतिक दल का आधार व्यापक हो और वह लोकतंत्र के आधार पर चले। कांग्रेस पार्टी पर उनका आक्षेप था कि उसमें सत्ता गांधी जी के हाथों में केंद्रित हो गई है और विरोध बर्दाश्त नहीं किया जाता।

कांग्रेस-संगठन

1938 में बोस का कांग्रेस-अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण उनके लोकतंत्रात्मक रुझान को प्रकट करता है। उनका कहना था कि कांग्रेस को व्यक्ति-पूजा के आधार पर नहीं प्रत्युत लोकतंत्रात्मक आधार पर चलना चाहिए।

मूल अधिकार

बोस ने 1928 में ही यह कह दिया था कि प्रत्येक संविधान में मूल अधिकारों

की घोषणा होनी चाहिए। उन्होंने अपने हरिपुरा भाषण में मूल अधिकारों के संबंध में कांग्रेस के प्रस्तावों का समर्थन किया था।

दमन और उत्पीड़न का विरोध

बोस का विचार था कि स्वतंत्र भारत में दमन और उत्पीड़न के कानूनों या सरकारी आदेशों के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। बोस जीवन में अन्याय और जबर्दस्ती के विरोधी थे। उन्होंने 26 नवंबर, 1940 को प्रेसीडेन्सी जेल से बंगाल सरकार को लिखा था कि उसे कोई नैतिक अधिकार नहीं है कि वह अनशन के दौरान उन्हें बलात् खाना खिलाए।

जनता की सहमति

दूसरा विश्वयुद्ध शुरू होने पर ब्रिटिश सरकार ने केंद्रीय विधानसभा से सलाह-मशविरा किए बिना ही भारत को ब्रिटेन की तरफ से युद्ध में भागीदार बना दिया था। सुभाष बोस ने इसका विरोध किया था और सलाह दी थी कि केंद्रीय विधानसभा के सभी सदस्य त्याग-पत्र दे दें और युद्ध में भारत की भागीदारी के प्रश्न पर दुबारा निर्वाचन कराएं। बोस के इस सुझाव से एक बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है- राजनीतिक पद्धति का सार है कि कोई भी बड़ा निर्णय करते समय जनता तथा उसके प्रतिनिधियों की राय ली जानी चाहिए और अंतिम प्रभुसत्ता जनता में ही निहित होती है।

फासिस्ट नहीं

सुभाषचन्द्र बोस की लोकतंत्र-निष्ठा पर एक आक्षेप यह लगाया जाता है कि वे फासिस्ट थे और उन्होंने दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान तीनों धुरी शक्तियों- जर्मनी, इटली तथा जापान- का सहयोग चाहा था। ये तीनों शक्तियां अधिनायकवादी थीं, उनकी सैन्यवाद में आस्था थी और उन्होंने अपने नागरिकों की स्वतंत्रताओं का हनन किया था। ये तीनों शक्तियां विस्तारवादी भी थीं और उन्होंने दूसरे देशों की स्वाधीनता का अपहरण किया था।

धुरी शक्तियों का सहयोग क्यों?

6 जुलाई, 1944 को सुभाष बोस ने गांधी जी के नाम संबोधित अपने एक भाषण में बताया था कि उन्होंने भारत के स्वतंत्रता-संघर्ष में धुरी शक्तियों का सहयोग क्यों लिया। बोस का विचार था कि अहिंसक साधनों से भारत आज़ाद नहीं हो सकता। वे अंग्रेजों की सरकार को अंग्रेजों से भिन्न नहीं मानते थे। अंग्रेजी सरकार अपनी इच्छा से भारत को कभी स्वतंत्रता नहीं देगी। स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए भारत को खून की दरिया से गुज़रना पड़ेगा। भारत में सशस्त्र प्रतिरोध संगठित नहीं किया जा सकता। युद्ध से पहले किसी विदेशी शक्ति की सहायता नहीं मिल सकती

थी। लेकिन युद्ध आरभ होने के बाद यह संभावना पैदा हो गई है। ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रुओं और विदेश-स्थित भारतीयों से राजनीतिक और सैनिक दोनों प्रकार की सहायता मिल सकती है।

विदेशी सहायता

सुभाष बोस के इतिहास-अध्ययन का निष्कर्ष था कि संसार का एक भी देश ऐसा नहीं है जिसने विदेशी सहायता के बिना स्वतंत्रता प्राप्त की हो। हो सकता है कि कुछ लोग विदेशी सहायता लेना नैतिक दृष्टि से अनुचित मानें। इस बारे में सुभाष बोस का मत था कि लोग अपने निजी जीवन में भी संकट पड़ने पर ऋण लेते ही हैं। लेकिन बाद में यह ऋण वापस कर दिया जाता है। भारत की स्वतंत्रता के लिए विदेशी सहायता ऋण के रूप में ग्रहण की जा सकती है। स्वाधीन भारत इस ऋण को चुका देगा। यदि ब्रिटिश साम्राज्य जैसा शक्तिशाली साम्राज्य दूसरे देशों से सहायता की याचना कर सकता है तो भारत जैसे पराधीन और निहत्थे देश को विदेशों से सहायता लेने में कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

महायुद्ध का अवसर

सुभाष बोस का निश्चित मत था कि यदि बाहरी सहायता के बिना देश आज़ाद हो सकता तो वे भारी जोखिम उठा कर भारत से पलायन न करते। महायुद्ध जैसा अवसर फिर आने वाला नहीं था। सुभाष बोस को इस अवसर से लाभ उठाना उचित लगा।

धोखा नहीं

बोस ने इस प्रश्न का भी उत्तर दिया कि कहीं धुरी शक्तियों ने उन्हें धोखा तो नहीं दिया है। उनका कहना था कि मेरा सारा जीवन अंग्रेजों से संघर्ष करते बीता है। अंग्रेजो से अधिक धूर्त और कोई जाति नहीं है। जब अंग्रेज उन्हें धोखा नहीं दे सके, तो वे संसार की अन्य किसी शक्ति के भुलावे में नहीं आ सकते।

सत्तावाद

सुभाष में अनुशासन के प्रति आग्रह था। वे आदेश देना और उसका पालन करना दोनों जानते थे। उन्होंने अपनी छात्रावस्था में सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उनके जीवन का एक मूलमंत्र यह था कि शक्ति और विश्वास प्राप्त किया जाए। वे सभी तरह की शक्ति प्राप्त करना चाहते थे- मानसिक, आध्यात्मिक और शारीरिक। सुभाष के दो आराध्यों- स्वामी विवेकानंद और अरविंद ने शारीरिक स्वास्थ्य को अध्यात्म की पहली सीढ़ी माना था। आई० सी० एस० परीक्षा के लिए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन करते समय भी सुभाष बोस ने सैनिक शिक्षण प्राप्त करने

की कोशिश की थी, लेकिन इसमें वे सफल नहीं हो सके थे। 1928 में कलकत्ते में जब पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था, तब सुभाष बोस 2,000 स्वयंसेवकों की टुकड़ी के प्रधान सेनापति बने थे। सैनिक जीवन के प्रति उत्साह होने के कारण सुभाष बोस को आज़ाद हिंद फौज़ का संगठन करने और अपने सहयोगियों में अनुशासन की भावना का संचार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई थी।

शक्तिशाली केंद्रीय सरकार

1938 के बाद से बोस ने अपने हरिपुरा अध्यक्षीय भाषण में तथा कई अन्य लेखों में यह बात बार-बार दुहराई थी कि स्वतंत्र भारत को एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकार की आवश्यकता होगी। इस सरकार की पीठ पर अनुशासित सेना तथा अनुशासित अखिल भारतीय दल होगा। इस व्यवस्था के बिना देश की सुरक्षा और एकता कायम नहीं रखी जा सकती। जब नयी शासन-व्यवस्था सुदृढ़ हो जाएगी, तब प्रांतों को अधिक स्वायत्तता दी जा सकती है। बोस व्यक्तिगत स्वतंत्रता के पोषक थे।

स्वतंत्र भारत का चित्र

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रायः सभी नेताओं के मन में स्वतंत्र भारत का कुछ न कुछ चित्र रहा है। उदाहरण के लिए गांधी जी विकेन्द्रीकरण, कुटीर उद्योगों और ग्राम पंचायतों के आधार पर स्वतंत्र भारत की रचना करना चाहते थे। उनकी यह भी राय थी कि स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस पार्टी की कोई आवश्यकता नहीं रही है और उसे समाप्त कर एक लोक सेवक संघ का रूप दे देना चाहिए। सुभाष बोस इस विचारधारा से सहमत नहीं थे। उनकी राय थी कि जो दल स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा है, वही दल आज़ादी मिलने पर पुनर्निर्माण का कार्य कर सकता है। बोस योजनाबद्ध विकास और उद्योगीकरण के द्वारा भारत की गरीबी दूर करना चाहते थे। बोस का विचार था कि कांग्रेस कार्यसमिति में देश के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए और उसे छाया मंत्रिमंडल की भांति काम करना चाहिए। बोस स्वतंत्र भारत के समस्त भेदभावों, न्यस्त स्वार्थों और विशेषाधिकारों को नष्ट करने के पक्ष में थे। वे देश में पूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता स्थापित करना चाहते थे। बोस ने स्वतंत्र भारत के निर्माण में प्रशासकों के महत्व को स्वीकार किया है। भारत में सिविल सर्विस का निर्माण अंग्रेजों ने अपने हितों को ध्यान में रख कर किया था। स्वतंत्र भारत में सिविल सर्विस के सदस्यों की भूमिका बदल जाएगी। उन्हें राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से जनता के सेवक बन कर काम करना होगा।

विदेश नीति

जिस तरह कोई व्यक्ति समाज से अलग होकर नहीं रह सकता, उसी प्रकार

किसी देश के लिए यह संभव नहीं है कि वह संसार के दूसरे देशों की ओर से आंखें बंद कर रह सके। हर देश को दूसरे देशों से अपना संबंध बनाना पडता है। कुछ उसके मित्र होते है और कुछ शत्रु।

जब तक भारत अंग्रेजों की पराधीनता में था, उसकी अपनी विदेशी नीति का कोई प्रश्न नहीं था। लेकिन जब भारत स्वतंत्रता के लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगा, तब राष्ट्रीय नेताओं के मन में स्वतंत्र भारत की विदेश नीति का प्रश्न उभरने लगा। इस दिशा में दो नेताओं ने सबसे अधिक ध्यान दिया– पडित जवाहरलाल नेहरू ने और सुभाषचन्द्र बोस ने।

राष्ट्रसंघ की विफलता

सुभापचन्द्र बोस अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और संगठनों को बड़ा महत्व देते थे। उन्हें राष्ट्रसंघ (लीग आफ नेशन्स) की विफलता पर खेद हुआ था। वे इसके लिए अमरीका और यूरोपीय शक्तियों को दोषी ठहराते थे।

प्रादेशिक संगठन

बोस प्रादेशिक संगठनों के निर्माण के पक्ष में थे। उनका विचार था कि प्रादेशिक संगठनों के आधार पर ही सशक्त विश्व संगठन का निर्माण हो सकता है। उन्होंने 6 नवंबर, 1943 को टोकियो विश्वविद्यालय में दिए गए अपने भाषण में एशियाई देशों की स्वतंत्रता और एकता पर बल दिया था।

संसार एक इकाई

सुभाषचन्द्र बोस संसार को एक इकाई मानते थे। यदि संसार के किसी एक भाग में कोई घटना घटित होती है, तो उसका शेष संसार पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।

दूसरे देशों की आंतरिक राजनीति

बोस ने 1938 में कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित होने पर अपने अध्यक्षीय भाषण में भारत की विदेश नीति और अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों के बारे में अपने विचार प्रकट किए थे। सुभाष बोस की राय थी कि किसी दूसरे देश के साथ संपर्क स्थापित करते समय हमें उस देश की आंतरिक राजनीति से प्रभावित नहीं होना चाहिए। सोवियत रूस साम्यवादी देश था उसने गैर-साम्यवादी देशों के साथ भी अपने संपर्क स्थापित किए थे। हमें हर देश में ऐसे व्यक्तियों से संपर्क स्थापित करना चाहिए जो हमसे सहानुभूति रखते हों। इस दिशा में प्रवासी भारतीय छात्र अथवा भारतीय व्यापारी सहायक हो सकते हैं। भारत की संस्कृति समृद्ध है। यदि भारतीय संस्कृति के संबंध में फिल्में बना कर विदेशों में दिखाई जायें तो वहां के लोगों में भारत के प्रति रुचि जागृत हो सकती है।

मध्य अमरीका और दक्षिण अमरीका

सुभाष बोस ने अपने अध्यक्षीय भाषण में मध्य अमरीका और दक्षिण अमरीका की ओर भी भारतीयों का ध्यान खींचा था। वहां भारत के प्रति लोगों के मन में दिलचस्पी है। भारत इन देशों के साथ मधुर संबंध स्थापित कर सकता है। उनकी राय थी कि ईरान, अफगानिस्तान, नेपाल, चीन, बर्मा, स्याम, मलयेशिया, श्रीलंका के साथ भारतीयों को अधिक प्रगाढ़ संबंध स्थापित करने चाहिएं।

यूरोपीय संपर्क

1933 से 1938 तक बोस स्वास्थ्य-लाभ के लिए यूरोप में रहे थे और इस अवधि में उन्होंने यूरोप के प्रमुख देशों– जर्मनी, आयरलैंड, पोलैंड, रुमानिया, इटली, स्विटज़रलैंड, चेकोस्लोवाकिया, फ्रांस, हंगरी, तुर्की, बल्गेरिया, आस्ट्रिया आदि देशों की यात्राएं की थीं और उनके अनेक प्रतिष्ठित नेताओं से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित किए थे। उन्होंने यूरोप के राजनीतिक घटना-चक्र पर अनेक भाषण दिए थे और लेख लिखे थे।

एशियाई संपर्क

जीवन के अंतिम दिनों में सुभाष बोस का कर्मक्षेत्र दक्षिण-पूर्वी एशिया रहा था। इस क्षेत्र के प्रमुख देशों जापान, चीन, हिंदचीन, हिंदेशिया, बर्मा, मलयेशिया, सिंगापुर, फिलिप्पाइन और थाइलैंड में सुभाष बोस ने भारत की आजादी के लिए प्रवासी भारतीयों का संगठन किया था और इन देशों के राष्ट्रीय नेताओं के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किए थे। इन नेताओं में प्रमुख थे– बर्मा के भूतपूर्व प्रधानमंत्री बा माउ, बर्मा के प्रमुख राष्ट्रवादी नेता आंग सान, जापान के प्रधान मंत्री तोजो, तथा अन्य सैनिक अफ़सर।

जापान

सुभाष बोस ने जापान पहुंचने पर 19 जून, 1943 को समाचार-पत्रों को जो वक्तव्य दिया था, उसमें कहा था कि गत 20 शताब्दियों से भारत और जापान अपने घनिष्ठ सांस्कृतिक संबंध बनाए हुए हैं। भारत में ब्रिटिश शासन के कारण ये संपर्क अवरुद्ध हुए हैं। किंतु जब भारत स्वतंत्र हो जाएगा, तब ये सम्बंध पुनः पुष्ट किए जाएंगे। यह स्वाभाविक ही है कि भारतीय घनिष्ठ रूप से जापान के साथ सहयोग करेंगे ताकि वे अपने देश में पूर्ण स्वतंत्रता से रह सकें और स्वतंत्र रूप से राष्ट्रीय प्रारब्ध को आकार दे सकें।

बर्मा

सुभाष बोस कुछ महीने बर्मा की दो जेलों– मांडले और इन्सीन में रहे थे। बर्मा स्थित प्रवासी भारतीयों ने आज़ाद हिंद फौज़ की भरपूर सहायता की थी। 25 अप्रैल,

1945 को बर्मा से प्रस्थान करते समय सुभाष बोस ने बर्मा-स्थित भारतीयों को संदेश दिया था कि यदि आपको अस्थायी रूप से झुकना पड़े तो वीरों की तरह झुको, आदर और अनुशासन के उच्चादर्श को कायम रखते हुए झुको। भारत की भावी पीढ़ियां आपकी कृतज्ञ होंगी। आपने अपनी अस्थायी असफलता के द्वारा स्थायी सफलता और गौरव का मार्ग तैयार किया है।

पंथ-निरपेक्षता

पंथ-निरपेक्ष राज्य न धार्मिक होता है, न अधार्मिक, न धर्म-विरोधी। वह धार्मिक रुढ़ियों से सर्वथा विमुक्त होता है। धार्मिक मामलों में उसके कार्य-कलाप पूर्णतः तटस्थ होते हैं। पंथ-निरपेक्ष राज्य में धर्म एक वैयक्तिक मामला माना जाता है और व्यक्ति के क्या धार्मिक विचार या विश्वास हैं इस बारे में राज्य कोई हस्तक्षेप नही करता।

पंथ-निरपेक्ष राज्य का उल्टा सांप्रदायिक राज्य होता है। यह राज्य एक धर्म-विशेष से संबद्ध होता है और उसके कायदे-कानून धर्म-पुस्तकों के आधार पर निर्मित होते है।

पंथ-निरपेक्षता का उद्भव

पंथ-निरपेक्षता की धारणा यूरोप के प्रोटेस्टैंट आंदोलन की देन है। इस आंदोलन के फलस्वरूप यूरोपीय राज्य ईसाई धार्मिक संगठन के बंधनों से मुक्त हुए। आधुनिक काल के सभी प्रगतिशील राज्य पंथ-निरपेक्षता के सिद्धांत पर आधारित हैं। वहां किसी धर्म-विशेष के साथ पक्षपात नहीं किया जाता। हर धर्म का अनुयायी अपनी धार्मिक प्रथाओं पर आचरण कर सकता है। राज्य धर्म को लेकर नागरिक-नागरिक के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता।

धर्मान्धता के विरोधी

सुभाष बोस पंथ-निरपेक्ष राज्य के समर्थक थे। वे अपने व्यक्तिगत जीवन में पूरी तरह धार्मिक थे। वे दुर्गा-पूजा जैसे धार्मिक त्योहार उत्साह से मनाते थे। वे धर्मान्धता के विरोधी थे और उसे सांस्कृतिक आत्मीयता के मार्ग में सबसे बड़ा कांटा मानते थे। उनका विचार था कि धर्मान्धता को दूर करने के लिए निरपेक्ष एवं वैज्ञानिक शिक्षा से अधिक उपयुक्त और कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार की शिक्षा एक अन्य प्रकार से भी उपयोगी है। इससे आर्थिक चेतना के विकास में सहायता मिलती है। आर्थिक चेतना का प्रभात धर्मान्धता के अंधकार का विनाशक है।

सांस्कृतिक आत्मीयता

सुभाष बोस की दृष्टि में विभिन्न धार्मिक समूहों का एक दूसरे की परम्पराओं,

आदर्शों और इतिहास से परिचित होना आवश्यक है क्योंकि सांस्कृतिक आत्मीयता से सांप्रदायिक शांति और समन्वय का मार्ग प्रशस्त होता है। सांस्कृतिक समन्वय ही विभिन्न समुदायों के बीच एकता का मूल आधार है।

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

भारत में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों की समस्या राष्ट्रीय आंदोलन के मार्ग में एक बड़ी बाधा थी। सुभाष बोस इसे ऐसी समस्या नहीं समझते थे जिसका समाधान न हो सके। विभिन्न जातियों के बीच सहिष्णुता और सद्भावना इस समस्या को सुलझाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय था।

भारत-विभाजन का विरोध

सुभाष बोस धर्म के आधार पर भारत-विभाजन के विरोधी थे। उनका मानना था कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही ब्रिटिश सरकार कांग्रेस के विरुद्ध अन्य संस्थाओं का उपयोग करती रही थी। ताकि वह कांग्रेस की मांगों को अस्वीकार कर सके। उसने मुस्लिम लीग का भी इसी दृष्टिकोण से उपयोग किया था। ब्रिटिश सरकार मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण अपने अनुकूल मानती थी। वस्तुतः ब्रिटिश सरकार ने अपने दुष्प्रचार से यह प्रभाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया था कि मुस्लिम लीग भी कांग्रेस जैसी प्रभावशाली संस्था है और वह भारतीय मुसलमानों के बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है। यह बात सच्चाई से बहुत परे थी। वास्तव में भारत में ऐसे प्रभावशाली और महत्वपूर्ण मुस्लिम संगठन थे जो पूरी तरह राष्ट्रवादी थे।

मुस्लिम सहयोगी

सुभाष बोस की आज़ाद हिंद फौज़ में विभिन्न धर्मों के लोग शामिल थे और बोस का सबके साथ समान व्यवहार था । उनके व्यक्तिगत और पारिवारिक कर्मचारियों में भी अनेक मुसलमान थे। उन्होंने अपने जीवन की सबसे अधिक जोखिम भरी यात्राएं अपने मुस्लिम सहयोगियों के साथ की थीं।

साध्य और साधन

संसार के इतिहास में इस बात का एक भी उदाहरण नहीं मिलता जब कि किसी राष्ट्र ने विदेशी शासन से हिंसा और रक्तपात के बिना स्वतंत्रता पाई हो। इटली के एकीकरण, अमरीका के स्वतंत्रता-संग्राम और आयरलैंड के राष्ट्रीय आंदोलन-इन सबसे एक ही सत्य मुखर होता है कि यदि किसी पराधीन देश को विदेशी साम्राज्यशाही से मुक्ति प्राप्त करनी है, तो हिंसा और रक्तपात जरूरी है। इसके बिना काम नहीं चल सकता। स्वयं हमारे देश में लोकमान्य तिलक जैसे उग्रवादी नेता इस बात का समर्थन करते थे कि साध्य के सम्मुख साधन नगण्य हैं। उनका कहना था कि यदि हम श्रेष्ठ

आदर्शों की प्राप्ति के लिए हीन उपायों का आश्रय लेते हैं, तो यह बिल्कुल अनुचित नहीं है।

महात्मा गांधी की नैतिकता

महात्मा गांधी ने भारत के स्वतंत्रता-संग्राम को नैतिक आधार दिया। वे साध्य और साधन में अभिन्न संबंध मानते थे। उनका विश्वास था कि श्रेष्ठ साध्य की प्राप्ति के लिए साधन भी श्रेष्ठ होने चाहिएं।[10] वे भारत की स्वतंत्रता के लिए बहुत उत्सुक थे लेकिन इसके लिए हिंसा, छल-कपट और असत्य जैसे हीन उपायों का उपयोग करना उन्हें पसंद नहीं था। उनके जीवन-दर्शन में साध्य और साधन के बीच कोई भेद नहीं था। वे मानते थे कि जैसे साधन होंगे, वैसा ही साध्य होगा। हिंसक साधन हिंसक स्वराज देंगे। वह संसार के लिए और स्वयं भारत के लिए एक खतरा होगा। गांधी जी ने भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को आध्यात्मिक प्रेरणा दी। उन्होंने देशभक्ति को आत्म-बलिदान का पर्याय बना दिया। उनके नैतिक दृष्टिकोण का ही यह फल था कि जहां उनसे कोई बड़ी भूल होती थी, वे उसे निस्संकोच स्वीकार कर लेते थे और उस पर प्रायश्चित करने के लिए तैयार रहते थे। वे अपने नैतिक आचरण द्वारा शत्रु के हृदय परिवर्तन में विश्वास रखते थे। वे ईसा और बुद्ध की भांति पाप से घृणा करते थे, पापी से नहीं, अन्याय से घृणा करते थे, अन्यायी से नहीं।

बोस की दृष्टि

साध्य और साधन के संबंध में सुभाष बोस का गांधी जी से मतभेद था। उन्होंने 1921 में भारतीय राजनीति में प्रवेश किया था और वे 1925 में देशबंधु चितरंजन दास की मृत्यु तक उनके नेतृत्व में काम करते रहे थे। उस समय गांधी जी देश के सबसे बड़े नेता थे और असहयोग आंदोलन उनके द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चल रहा था। स्थिति ऐसी थी कि राष्ट्रीय आंदोलन का कोई दूसरा विकल्प लोगों के सामने नहीं था। 1921 से 1939 तक सुभाष बोस कांग्रेस में वामपक्ष के नेता माने जाते थे और वे गांधी जी पर यह दबाव बराबर डालते रहे कि वे अंग्रेजों पर विश्वास न करें और आंदोलन में तीव्रता लाएं। लेकिन उन्होंने खुले आम गांधी जी का विरोध नहीं किया। 1939 में वे कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए दुबारा खड़े हुए और गांधी जी के विरोध के बावजूद जीत गए। यहां से उनके और गांधीजी के बीच मतभेद गहरे होते गए तथा अंत में उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष-पद छोड़ना पड़ा और उन्हें कांग्रेस से भी निष्कासित कर दिया गया।

पूरक आंदोलन

जब द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हुआ, तब सुभाष बोस को लगा कि भारत के लिए

तलवार उठाने का समय आ गया है। वे असहयोग और अहिंसक आंदोलन की महत्ता समझते थे लेकिन उनका विचार था कि अकेले इससे अंग्रेजों को भारत से नहीं निकाला जा सकता। वे अहिंसक आंदोलन के साथ-साथ उसके पूरक साधन के रूप में, हिंसक आंदोलन भी आरंभ करना चाहते थे। इसी उद्देश्य को सामने रख कर वे भारत से बाहर गए, उन्होंने धुरी शक्तियों का सहयोग प्राप्त किया और आज़ाद हिंद फौज़ का संगठन किया। सुभाष मानते थे कि स्वतंत्रता का मार्ग शहीदों के रक्त से आवृत्त होता है। अपनी आज़ादी के लिए जितनी अधिक यातनाएं हमें भोगनी होंगी, जितना अधिक त्याग हमें करना पड़ेगा, उसी मात्रा में भारत की इज्जत भी दुनिया की आंखों में बढ़ेगी। हम अपने खून से अपनी स्वतंत्रता का मूल्य चुकाएंगे लेकिन ऐसा करके हम राष्ट्रीय एकता की नींव रखेंगे। हम अपनी आज़ादी को बनाए रखने में तभी समर्थ होंगे जब कि हम इसे अपने बलिदान और खून देकर प्राप्त करें। सुभाष बोस पूर्ण लामबंदी के समर्थक थे। उनका मत था कि यदि हम बिना बलिदान और कष्टों के आज़ादी प्राप्त करते हैं, तो वह निष्प्रयोजन होगी क्योंकि हम उस आजादी को संभाल कर रखने में समर्थ नहीं होंगे जो इतनी आसानी से प्राप्त की गई हो। सुभाष आज़ादी को कष्ट उठा कर ही प्राप्त करना चाहते थे। वे मानते थे कि अपने देश की वेदी पर आत्मोत्सर्ग जीवन की सबसे बड़ी संसिद्धि है।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद

भारत के उदारवादी नेताओं का ब्रिटिश सरकार की नेकनीयती में विश्वास था। वे मानते थे कि भारत और ब्रिटेन के हित परस्पर-विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। वे समझते थे कि अंग्रेज लोकतंत्रप्रिय जाति है और वह भारत में धीरे-धीरे लोकतंत्र की स्थापना करेगी।" शुरू में महात्मा गांधी का रुख भी ब्रिटिश सरकार के प्रति सहानुभूति का था। उन्होंने समय-समय पर ब्रिटिश सरकार की सहायता की थी और वे पूरी तरह राजभक्त थे। उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन दक्षिण अफ्रीका में 1893 में आरंभ किया था। एक भारतीय होने के नाते उन्हें अनेक अपमान सहने पड़े थे लेकिन वे मानते रहे कि मूलतः ब्रिटिश सरकार अच्छी है और यदि उसमें कुछ दोष हैं, तो वे व्यवस्था के दोष हैं और उन्हें सुधारा जा सकता है। इसलिए गांधी जी ने 1899 में बोअर युद्ध के समय, 1906 में जुलू विद्रोह के समय और 1914 में प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेजों के युद्ध-प्रयत्नों में सहायता दी थी। लेकिन रौलट एक्ट, जलियांवाला हत्याकांड तथा खिलाफत के प्रश्न ने गांधी जी को ब्रिटिश सरकार का विरोधी बना दिया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अंग्रेजों ने भारत को आर्थिक और राजनीतिक दोनों दृष्टियों से असहाय बना दिया है। इसलिए भारत के लिए यह आवश्यक हो गया है कि भारत अंग्रेजों के बंधन से मुक्त हो और आज़ादी पाए।

गांधी जी और ब्रिटिश शासन

आज़ादी की लड़ाई के दौरान भी गांधी जी अंग्रेजी सरकार के प्रति नरमी का रुख अपनाते रहे। उन्होंने अपने विविध आंदोलनों में बातचीत का द्वार सदा खुला रखा। वे ब्रिटिश सरकार से समझौता करने के लिए सदैव तैयार रहे।

बोस और ब्रिटिश सरकार

ब्रिटिश सरकार और साम्राज्यवाद के प्रति सुभाष बोस का दृष्टिकोण गांधीजी से उल्टा था। वे भारत में घूसखोरी और भ्रष्टाचार के लिए ब्रिटिश सरकार को जिम्मेदार ठहराते थे। वे मानते थे कि भारत में अंग्रेजों का लक्ष्य 'लड़ाओ और राज्य करो' रहा है। इस उद्देश्य में वे काफी हद तक सफल भी हुए। विभिन्न वर्गों के बीच फूट का तर्क देकर उन्होंने भारत को स्वराज देने से इन्कार किया। अग्रेजों के षड्यंत्र का कोई अंत नहीं था। सुभाष बोस के विचार से अग्रेजों का यह दावा गलत था कि उन्होंने भारत को राजनीतिक संगठन प्रदान किया। अपने शासन-काल में अंग्रेजों ने भारत में जो कुछ भी किया अपने लाभ के लिए किया। उनकी सदा यह कोशिश रही कि भारतवासियों को विभाजित किया जाए, कमज़ोर किया जाए, निशस्त्र किया जाए, पुंसत्वहीन किया जाए।

आज़ादी की कीमत

सुभाष बोस की दृष्टि में भारत ब्रिटिश साम्राज्य का हीरा था और उस हीरे को बचाए रखने के लिए ब्रिटिश जनता अंत तक लड़ेगी। इसलिए भारतीय जनता, विशेष कर उसके नेताओं को ऐसी सभी उम्मीदों को तिलांजलि दे देनी चाहिए कि अंग्रेज उनकी मांगे मान लेंगे। उन्हें तो उस समय तक संघर्ष करते रहना होगा कि जब तक आखिरी अंग्रेज भारत से निकाल न दिया जाए। 'स्वतंत्रता संग्राम के आखिरी दिनों में भारतीयों को बहुत से कष्ट झेलने पड़ेंगे और कत्ले आम का सामना करना पड़ेगा। लेकिन वह तो आज़ादी की कीमत होगी जो हमें चुकानी ही होगी। यह स्वाभाविक है कि ब्रिटिश सिंह अपने आखिरी दिनों में खूंखार बन कर काटे, फाड़े लेकिन वह तो मर रहे शेर की हरकत होगी जिसे हम झेल लेंगे।

ब्रिटिश साम्राज्य की देन

सुभाष बोस सोचते थे कि आत्मिक अध:पतन, सांस्कृतिक अपकर्ष, दारुण गरीबी और राजनीतिक दासता ही मात्र वे चीज़े थीं जिन्हें भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य से प्राप्त किया था। इसलिए, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भारतीय जनता ब्रिटिश जंजीरों को तोड़ने और स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए साहस के साथ उठ खड़ी हुई है।

ब्रिटिश शासन का अंत निश्चित

सुभाष बोस ने यह कभी स्वीकार नहीं किया कि ब्रिटिश साम्राज्य चिरंतन साम्राज्य है और उसका कभी नाश नहीं होगा। इतिहास ने उन्हें सिखाया था कि प्रत्येक साम्राज्य का अपरिहार्य हास और पतन होता है। नगर और किले जो कभी सुरक्षित प्राचीर थे विगत साम्राज्यों की कब्रें बन गए। यद्यपि एक वृद्ध पुरुष का जीवन कुशल चिकित्सकों और गुणकारी औषधियों एवं इंजेक्शनों की सहायता से बढ़ाया जा सकता है लेकिन उसके लाभकारी ओज को वापस नहीं लाया जा सकता। युद्धकाल में ब्रिटिश शासन अमरीकी बैसाखियों के सहारे आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा था लेकिन अमरीकी बैसाखियां ब्रिटेन की लम्बे समय तक सहायता नहीं कर सकती थीं।

अंतिम जीत अपने प्रयत्नों से

सुभाष बोस अंग्रेजों से आखिरी दम तक लड़ते रहने के पक्षपाती थे चाहे उसका परिणाम कुछ भी निकले। उनका निष्कर्ष था कि युद्ध में सभी क्षेत्रों पर हो रही विनाशकारी हार के कारण ब्रिटिश साम्राज्य का ढह कर टूट जाना अवश्यम्भावी था। आखिर में जब साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो जाएंगे, तो सत्ता स्वत: ही जनता के हाथ लगेगी। लेकिन अंतिम जीत हमें अपने प्रयत्नों के फलस्वरूप ही मिलेगी।

वामपक्ष

वामपक्ष का अर्थ है वर्तमान स्थिति में परिवर्तन की पोषक विचारधारा। सुभाष बोस ने भारतीय राजनीति में आधारभूत परिवर्तन की पैरवी की थी, इसलिए उन्हें भारतीय वामपक्ष का जनक कहा जा सकता है। 1921 में भारतीय राजनीति में प्रवेश करने के बाद से ही उन्होंने अपना झुकाव वामपक्ष की ओर प्रकट किया था। सुभाष बोस के लिए वामपक्ष का पहला काम देश के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना था। सुभाष बोस का विश्वास था कि ब्रिटिश नृशंसता का शस्त्रबल से विरोध करने पर ही भारत को आज़ाद किया जा सकता है। अपना रक्त बहाए बिना प्राप्त की गई स्वतंत्रता वास्तविक स्वतंत्रता नहीं होगी। राजनीतिक स्वतंत्रता के बिना भारत अपने भाग्य का निर्माण नहीं कर सकता। सुभाष बोस ने स्वतंत्रता की व्यापक धारणा प्रस्तुत की है। उनके अनुसार स्वतंत्रता की अवधारणा का तात्पर्य है– विकास की प्रक्रिया, सर्वतोमुखी स्वतंत्रता, व्यक्ति के अलावा समाज के लिए स्वतंत्रता, धनी के साथ निर्धन के लिए स्वतंत्रता, पुरुषों के साथ महिलाओं के लिए स्वतंत्रता, सभी वर्गों के लिए स्वतंत्रता। इस स्वतंत्रता का तात्पर्य मात्र राजनीतिक बंधनों से मुक्ति नहीं है। इसका आशय है समाज का पुनर्निर्माण, ऐसे समाज का पुनर्निर्माण जिसमें धन का समान बंटवारा हो, जातीय विरोध समाप्त हो जाएं, सांप्रदायिकता का नाम-निशान न रहे, सबको अपने विकास का अवसर मिले और सबकी प्रारंभिक आवश्यकताएं पूरी हों।

कांग्रेस समाजवादी दल

1934 में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई। इसके प्रमुख नेता थे- आचार्य नरेन्द्र देव, अच्युत पटवर्धन, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अशोक मेहता, यूसुफ़ मेहर अली और अरुणा आसफ अली। बोस ने इस दल का समर्थन किया था। लेकिन उनका विचार था कि यह दल समाजवाद के सिद्धांत-पक्ष की ओर अधिक ध्यान देता था और राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति उसकी कम रुचि थी।

कांग्रेस का दक्षिणपंथ

बोस गांधी जी तथा उनके सहयोगियों को दक्षिणपंथी मानते थे। उनका कहना था कि गांधी जी ब्रिटिश सरकार से समझौता करने के लिए तैयार रहते हैं। सुभाष बोस ब्रिटिश साम्राज्यवाद से किसी तरह का कोई समझौता नहीं चाहते थे। उन्होंने भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के अधीन प्रस्तावित संघीय योजना का विरोध किया था। शिमला-सम्मेलन की विफलता पर उन्हें प्रसन्नता हुई थी। गांधी जी के 'भारत छोड़ो आंदोलन' का उन्होंने स्वागत किया था।

सारांश

सुभाष बोस मुख्य रूप से दार्शनिक नहीं, कर्मयोगी थे। उनके जीवन की मुख्य अभिलाषा भारत की स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त करना था।

सुभाष बोस के जीवन में चिंतन और कर्म का समन्वय मिलता है।

स्वतंत्रता-आंदोलन के प्रमुख नेता होने के कारण सुभाष को अनेक व्यावहारिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। ये समस्याएं थीं- भारतीय इतिहास, समाज और संस्कृति का विश्लेषण, भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों की कार्य-प्रणाली और विचारधारा का अध्ययन, ब्रिटिश सरकार की नीतियों की समीक्षा, स्वतंत्रता-आंदोलन की पद्धति, विदेशी संपर्क, स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय समाज और शासन का संगठन, भारतीय उत्थान में विभिन्न वर्गों- मजदूरों, किसानों, छात्रों, युवकों और स्त्रियों की भूमिका आदि। सुभाष बोस ने इन सभी समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किए है। राष्ट्रीय नेताओं की श्रेणी में सुभाष बोस ही एक ऐसे नेता हैं जिन्होंने गांधी जी द्वारा निर्दिष्ट कार्य-पद्धति से भी कार्य किया और उससे हट कर भी। आज़ादी की लड़ाई के अंतिम दौर में सुभाष बोस की अपनी एक योजना थी। वह सफल नहीं हुई, लेकिन उसने भारतीय स्वतंत्रता के लक्ष्य को निकट अवश्य ला दिया।

सुभाष के राजनीतिक-चिंतन के मुख्य स्रोत हैं- पिता जानकी नाथ, माता प्रभावती, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविंद घोष, अध्यापक बेनी माधवदास, कांट, हीगेल, बर्गसां, मार्क्स, देशबंधु चितरंजन दास, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, कमाल अतातुर्क, नाज़ीवाद, फासीवाद, डी० वैलेरा।

सुभाष बोस के राजनीतिक चिंतन का सबसे प्रमुख तत्त्व देशभक्ति और राष्ट्रीयता का भाव है। वे लोकतंत्रवादी थे लेकिन उन्होंने लोकतंत्र की त्रुटियां भी रेखांकित की है। बोस का विचार था कि लोकतंत्र पश्चिम की देन नहीं है। प्राचीन भारत में भी गणराज्यों की दीर्घ परम्परा थी। वे जन्म के ऊपर आधारित विशेषाधिकारों का अंत चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि समाज के सभी वर्गों को स्वतंत्रता प्राप्त हो और सबको विकास के समान अवसर मिलें। बोस समाज में समानता, बंधुता और पंथ-निरपेक्षता के भी कायल थे। वे भारतीय एकता के कट्टर पोषक थे।

उनका मत था कि भारत में हिन्दू-मुस्लिम समस्या अंग्रेजों की 'फूट-डालो और राज्य करो' नीति का फल है।

बोस अंतर्राष्ट्रीयता और एशियाई एकता के पक्षधर थे।

सुभाष के सपनों का भारत समाजवाद के सिद्धांतों पर आधारित है। वे इस आदर्श को योजनाबद्ध आर्थिक विकास के द्वारा प्राप्त करना चाहते थे।

सुभाष बोस अध्यक्षात्मक और केन्द्रोन्मुख शासन-प्रणाली के पक्ष में थे।

बोस का कांग्रेस के ऊपर यह आक्षेप था कि उसका संचालन लोकतंत्रात्मक आधार पर नहीं हो रहा।

बोस फासीवाद के संगठन और अनुशासन से प्रभावित अवश्य थे, पर वे फासिस्ट नहीं थे। उन्होंने भारत के स्वतंत्रता-संघर्ष में धुरी शक्तियों का सहयोग लेना चाहा था और उन्हें जापान का सहयोग मिला भी था। उनका विचार था कि अहिंसक साधनों से भारत स्वतंत्र नहीं हो सकता। उनके इतिहास-अध्ययन का निष्कर्ष था कि संसार का एक भी देश ऐसा नहीं है जिसने विदेशी सहायता के बिना स्वतंत्रता प्राप्त की हो। बोस का कहना था कि लोग अपने निजी जीवन में भी संकट पड़ने पर दूसरों से ऋण लेते हैं। लेकिन बाद में यह ऋण चुका दिया जाता है। भारत की स्वतंत्रता के लिए विदेशी सहायता ऋण के रूप में ग्रहण की जा सकती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध ने ब्रिटिश सरकार को जीवन-मरण के संकट में डाल दिया था। सुभाष बोस ब्रिटिश सरकार के इस संकट से लाभ उठाना चाहते थे।

जब भारत स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होने लगा, तब राष्ट्रीय नेताओं के मन में स्वतंत्र भारत की विदेशी नीति का चित्र उभरना शुरू हुआ। इस दिशा में दो नेताओं ने सबसे अधिक ध्यान दिया- पंडित जवाहरलाल नेहरू ने और सुभाष बोस ने। सुभाष बोस अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और संगठनों को बड़ा महत्व देते थे। वे प्रादेशिक संगठनों के निर्माण के पक्ष में थे। उन्होंने एशियाई देशों की स्वतंत्रता और एकता पर बल दिया था। वे संसार को एक इकाई मानते थे। यदि संसार के किसी एक भाग में कोई घटना घटित होती है, तो उसका शेष संसार पर प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है।

बोस की राय थी कि किसी दूसरे के साथ सपंर्क स्थापित करते समय हमें उसकी आंतरिक राजनीति से प्रभावित नहीं होना चाहिए। सोवियत रूस साम्यवादी देश था लेकिन उसने दूसरे देशों के साथ भी अपने संपर्क स्थापित किए थे। विदेशी संपर्कों के विकास में प्रवासी भारतीयों से सहायता मिल सकती है। 1933 से 1938 तक सुभाष बोस स्वास्थ्य-लाभ के लिए यूरोप में रहे थे और इस अवधि में उन्होंने यूरोप के प्रमुख देशों- जर्मनी, आयरलैंड, पोलैंड, रुमानिया, इटली, स्विट्ज़रलैंड, चेकोस्लोवाकिया, फ्रांस, हंगरी, तुर्की, बल्गेरिया और आस्ट्रिया आदि देशों की यात्राएं की थीं और उनके अनेक प्रतिष्ठित नेताओं से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित किए थे।

जीवन के अंतिम दिनों में सुभाष बोस का कर्मक्षेत्र दक्षिण-पूर्वी एशिया रहा था। इस क्षेत्र के प्रमुख देशों- जापान, चीन, हिंदचीन, हिंदेशिया, बर्मा, मलयेशिया, सिंगापुर, फिलिप्पाइन और थाईलैंड में सुभाष बोस ने भारत की आज़ादी के लिए प्रवासी भारतीयों का संगठन किया था और इन देशों के प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किए थे।

सुभाष बोस पंथ-निरपेक्ष राज्य के समर्थक थे। व्यक्तिगत जीवन में धार्मिक होते हुए भी सुभाषचन्द्र बोस राजनीति को धर्म से अलग रखने के पक्षपाती थे। उनकी आज़ाद हिंद फौज़ में सभी धर्मों के मानने वाले सैनिक थे।

सुभाष बोस भारत की स्वतंत्रता के लिए हिंसा और युद्ध जैसे साधनों का उपयोग उचित मानते थे। इस दृष्टि से उनका गांधीजी से मतभेद था।

ब्रिटिश सरकार और साम्राज्यवाद के प्रति सुभाष का दृष्टिकोण गांधी जी से उल्टा था। सुभाष मानते थे कि अंग्रेज अपनी मर्जी से भारत नहीं छोड़ेंगे। उन्हें तलवार के ज़ोर से भगाना होगा।

सुभाष बोस ने भारतीय राजनीति में आधारभूत परिवर्तन की पैरवी की थी इसलिए उन्हें भारतीय वामपक्ष का जनक कहा जा सकता है।

संदर्भ और पाद टिप्पणियां

1. गीता के कर्मयोगी का आदर्श सुभाष बोस पर पूरी तरह लागू होता है। वे मूलत: धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्ति थे और कर्म का क्षेत्र उनके लिए अध्यात्म की साधना था। सुभाष बोस के जीवन के इस पक्ष पर उनके मित्र दिलीप कुमार राय ने अपनी दो पुस्तकों में प्रकाश डाला है। वे पुस्तकें हैं : Dilip Kumar Roy, *The Subhash I Know*, Nalanda Bombay, 1946, और *Netaji– The Man, Reminiscences*, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay, 1966.
2. आधुनिक भारत के सभी राजनीतिक विचारकों का मूल्यांकन इसी आधार पर करना युक्तिसंगत है। वास्तव में वे शुद्ध विचारक न होकर सक्रिय नेता थे और भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के बारे में उनकी एक

दृष्टि थी जिसके आधार पर उन्होंने इन समस्याओं को निपटाने का प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय (1772-1833), स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883), स्वामी विवेकानंद (1863-1902), एनी बीसेंट, (1847-1933), महादेव गोविंद रानाडे (1842-1901), दादाभाई नौरोजी (1825-1917), फीरोज शाह मेहता (1845-1915), सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी (1848-1925), गोपाल-कृष्ण गोखले (1866-1915), बाल गंगाधर तिलक (1856-1920), लाला लाजपत राय (1865-1928), और विनोबा भावे (1895-1982) आदि नेता इसी प्रकार के विचारक थे।

3. भारतीय संस्कृति की एक मुख्य विशेषता है अनेक विविधताओं तथा विरोधों के बीच में एकता की खोज। भारतीय जीवन के सभी क्षेत्रों में यह समन्वय वृति दृष्टिगत होती है। भारत के सभी जननायक इस समन्वय-वृत्ति के प्रतीक रहे है। आधुनिक युग में महात्मा गांधी इस समन्वय के श्रेष्ठ प्रतीक थे। वे संत भी थे और क्रांतिकारी भी। संत के रूप में उनकी तुलना सुकरात, बुद्ध और ईसा से की जाती है। क्रांतिकारी के रूप में वे वाशिंगटन, मेज़िनी और लेनिन के बराबर ठहरते हैं। अर्नेस्ट बार्कर ने गांधी जी के समन्वयशील व्यक्तित्व के बारे यह ठीक ही लिखा है :

"मैंने उनमें संत फ्रांसिस को पाया जिसने समस्त विश्व के साथ सामंजस्य और विश्व की सारी वस्तुओं के साथ प्रेम का अनुभव करते हुए गरीबी की सादी जिंदगी बिताने की प्रतिज्ञा कर रखी थी। मैंने उनमें संत टामस एक्वीनास को भी पाया जो संसार का एक महान विचारक और दार्शनिक हो गया है और जो बड़ी-बड़ी दलीलें देने में समर्थ था तथा सारे तर्कजाल से परिचित था। इन दोनों के अलावा मैंने उनमे एक व्यावहारिक मनुष्य को भी पाया जिसके पास अपनी व्यावहारिकता को मजबूत बनाने के लिए कानून की शिक्षा थी और जो अपने सत्परामर्श से लोगों का पथ-प्रदर्शन करने के लिए पहाड़ की चोटी से उतर कर घाटी में भी आ सकता था"। विश्वप्रकाश गुप्त तथा मोहिनी गुप्त, *महात्मा गांधी– व्यक्ति और विचार*, पृ० 140-141

4. सुभाषचन्द्र बोस के राजनीतिक जीवन को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। उनके जीवन का पहला भाग 1921 से 1941 तक का है जब वे गांधी जी से मतभेद रखते हुए भी कांग्रेस की नीतियों और कार्यक्रमों के अनुसार काम करते रहे। जनवरी, 1941 में सुभाष बोस कलकत्ते से काबुल और फिर वहां से बर्लिन चले गए। 1941 से अगस्त, 1945 में अपनी मृत्यु-पर्यंत सुभाष ने धुरी शक्तियों की सैनिक सहायता से भारत की आज़ादी के लिए संघर्ष किया। गांधी जी को सुभाष की सैनिक कार्यवाही पंसद नहीं थी लेकिन उनकी देशभक्ति और नेकनीयती में उन्हें रंचमात्र भी संदेह नहीं था।

5. प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बंगाल में क्रांतिकारियों के दो गुट विशेष रूप से सक्रिय थे– युगांतर और अनुशीलन समिति। देशबंधु चितरंजन दास ने इन गुटों के

सदस्यो को कांग्रेस में मिला लिया था। लेकिन गांधीजी के असहयोग आंदोलन के समाप्त होने और देशबंधु के विधानसभा में चले जाने के बाद इन गुटो के सदस्य पुन: क्रांति के मार्ग पर चल पड़े। सुभाष की इन गुटों के साथ सहानुभूति अवश्य थी हालांकि उनकी मुख्य रुचि समाजसेवी संगठनो में थी।

6. देशबंधु चितरंजनदास सुभाष के राजनीतिक गुरु ही नहीं थे, वे सुभाष के लिए पिता तुल्य तथा उनकी पत्नी बासंती देवी माता तुल्य थीं। देशबंधु चितरंजन दास की 1925 में मृत्यु हो गई थी लेकिन बासती देवी अपने पति की मृत्यु के चालीस वर्ष बाद तक जीवित रही थीं। सुभाष के मन में बासंती देवी के प्रति अपनी मृत्यु-पर्यंत प्रगाढ़ श्रद्धा भावना रही थी। बासंती देवी के प्रति सुभाष की श्रद्धा-भावना देख कर सुभाष की माता प्रभावती देवी को कभी-कभी आश्चर्य होता था कि सुभाष उनके पुत्र हैं या बासंती देवी के।

7. 1917 की रूसी क्रांति ने एशियाई देशों के स्वतंत्रता-आंदोलनों पर व्यापक प्रभाव डाला था, इस क्रांति के फलस्वरूप विभिन्न देशों में जिनमें भारत भी सम्मिलित था वामपक्षी आंदोलनों का जन्म हुआ, समाजवादी और साम्यवादी पार्टियां बनीं और समाज के शोषित वर्गों- किसानों और मज़दूरो के हितों की रक्षा की बात की जाने लगी। विस्तार के लिए देखिए E.H. Carr, *The Bolshevik Revolution, 1917-1923*, Vol. III, 1966, pp. 232-271; Hans Kohn, *A History of Nationalism in the East*, New York, 1929.

8. सुभाषचन्द्र बोस ने अप्रैल, 1939 मे कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से इस्तीफा देने के बाद 3 मई, 1939 को फारवर्ड ब्लाक का संगठन किया था। इस संगठन को कांग्रेस के भीतर रह कर काम करना था और इसका उद्देश्य देश के सभी क्रांतिकारी और साम्राज्य-विरोधी प्रगतिशील तत्त्वों को न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर एक मंच पर लाना था। बोस अपने इस लक्ष्य में सफल नहीं हुए। समाजवादी, साम्यवादी, एम० एन० राय के अनुयायी तथा अन्य वामपक्षी गुट अपने पृथक् अस्तित्व को समाप्त करने तथा फारवर्ड ब्लाक में मिलने के लिए तैयार नही हुए।

9. सुभाषचन्द्र बोस के विरोधी उन्हें स्वप्नदर्शी कहते थे। सुभाष को इस आलोचना पर कोई-आपत्ति न थी। उनका कहना था :

   "I plead guilty if I am accused of being a dreamer. I am a dreamer and I love my dreams. These dreams are to me as real as the work-a-day world is to the man in the street. From my dreams I derive inspiration and motive power. Without these dreams I can hardly live – for life then loses its meaning and its charm. The dream that I love is that of a free India – India resplendent in all her power and glory." Subhash Chandra Bose. Quoted by Verinder Grover (Ed.) *Subhash Chandra Bose*, p. 483.

10. "Means are after all everything. As the means so the end... There

is no wall of separation between the means and the end." Mahatma Gandhi, *Young India*, 17.7.1924, pp. 236-7.

11. "I am not anti-English; I am not anti-British; I am not anti- any Government; but I am anti-untruth, anti-humbug and anti-injustice. So long as the Government spells injustice, it may regard me as its enemy, implacable enemy."Mahatma Gandhi; *Speeches and Writings of Mahatma Gandhi*, Madras, 1933, p.523.

खंड : चार

अनमोल विरासत

15

महात्मा गांधी और सुभाष चन्द्र बोस

1920 से 1947 तक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के तीन सबसे बड़े नेता थे– महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस। आरंभ में जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस वामपक्ष, युवकों और समाजवादी तत्त्वों के प्रवक्ता थे। बाद में जवाहरलाल नेहरू गांधी जी के प्रभाव में आ गए और गांधी जी ने उन्हें अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी भी घोषित कर दिया। मतभेद तो जवाहरलाल नेहरू और गाधी जी में भी थे। जवाहरलाल नेहरू पर पाश्चात्य जीवन-शैली, वैज्ञानिक मनोवृत्ति तथा समाजवादी विचारों का प्रभाव था तथा उनका गांधी जी की धार्मिक आस्थाओं, ग्रामपरक विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था और यंत्र-विरोधी दृष्टि से पूरी तरह मेल नहीं बैठता था। लेकिन इन विरोधों के बावजूद गांधी जी और नेहरू एक-दूसरे के निकट आते गए। अनेक प्रश्नों पर गांधी जी से असहमत होते हुए भी नेहरू ने कभी गांधी जी का खुल कर विरोध नहीं किया और उनका आचरण "अच्छे बालक" सा रहा।

गांधी जी के साथ संबंधों के संदर्भ में सुभाष इतने सौभाग्यशाली नहीं थे। उनके गांधी जी से मतभेद बने रहे।[1] गांधी जी ने सुभाष को अपने परिवार का "बिगड़ा बालक" कहा जिसे सुधारने की आवश्यकता थी।[2]

गांधी जी और सुभाष बोस के मतभेद 1921 में बोस के भारतीय राजनीति में प्रवेश करने के साथ ही आरम्भ हो गए थे। ये मतभेद शुरू में तो राष्ट्रीय आंदोलन की रणनीति के बारे में थे। आगे चलकर वे स्वतंत्र भारत के प्रस्तावित पुनर्निर्माण के बुनियादी तत्त्वों को लेकर भी उभरे। गांधीजी और सुभाष बोस का दृष्टि भेद 1939 में उग्र रूप मे सामने आया। इसका तात्कालिक कारण था गांधी जी के प्रकट विरोध के बावजूद सुभाष बोस का कांग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए दुबारा निर्वाचन में खड़ा होना और गांधी जी के मनोनीत उम्मीदवार डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या को पराजित कर

विजयी हो जाना। गांधी जी और उनके निकट सहयोगियों के विरोध के कारण सुभाष कांग्रेस का काम न चला सके और अंततः उन्हें पार्टी के अध्यक्ष-पद से त्याग-पत्र देना पड़ा। उन्हें कांग्रेस के भीतर किसी भी निर्वाचित पद को धारण करने से वंचित कर दिया गया। सुभाष बोस ने फारवर्ड ब्लाक की स्थापना की लेकिन एक दल के रूप में फारवर्ड ब्लाक विशेष सफलता न पा सका। जनवरी, 1941 में सुभाष देश छोड़ कर जर्मनी और फिर वहां से सुदूरपूर्व चले गए जहां उन्होंने आज़ाद हिंद फौज़ की स्थापना की। वे जापान की सहायता से भारत को आज़ाद कराना चाहते थे। लेकिन अगस्त, 1945 में एक विमान-दुर्घटना में मृत्यु हो जाने के कारण सुभाष बोस का प्रयत्न सफल न हो सका।

सुभाष बोस के जीवन-काल में गांधीजी ने सुभाष बोस के विचारों तथा कार्य-पद्धति की, विशेष कर धुरी शक्तियों के साथ उनके सहयोग की तीव्र आलोचना की।[3] गांधी जी के प्रमुख अनुयाइयों मुख्यतः पंडित जवाहरलाल नेहरू ने तो यहां तक कहा कि यदि सुभाष बोस ने जापानी सेना के साथ भारत की भूमि पर पैर रखा, तो वे जापानी सेना के साथ तो लड़ेंगे ही, सुभाष बोस के साथ भी युद्ध करेंगे।[4] सुभाष बोस के संबंध में आलोचनाओं का यह क्रम उनकी मृत्यु तक चलता रहा। लेकिन उनकी वीरोचित मृत्यु, आज़ाद हिंद फौज़ के शौर्यपूर्ण कार्यो और बलिदान गाथाओं ने मृत सुभाष बोस को जीवित सुभाष बोस की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली बना दिया। कांग्रेस के वे अकेल प्रमुख नेता थे जिन्होंने कांग्रेस की मुख्य धारा से उल्टी दिशा में तैरने की कोशिश की और यद्यपि वे किनारे तक नहीं पहुंच सके, लेकिन उन्होंने देशवासियों को वह किनारा दिखा दिया। मृत्यु के बाद सुभाष बोस जनता के आराध्य बन गए हैं। उनके प्रति वही सम्मान है जो किसी अवतारी पुरुष के प्रति होता है। उन्होंने क्षत्रिय की भांति लड़ते-लड़ते प्राण दिए। ऐसा व्यक्ति मर नहीं सकता। कांग्रेस के नेताओं ने भी उनके बारे में अपनी राय बदली है। उनकी विचार-संपदा तथा कार्यशैली पर नए सिरे से सोचा ज़ा रहा है। भारतमाता के मंदिर में जिन राष्ट्र-देवताओं की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं, उनमें सुभाष बोस की मूर्ति भी है। इस मूर्ति के भी लाखों-करोड़ों उपासक हैं।

मतभेदों की पृष्ठभूमि

महात्मा गांधी और सुभाष बोस दोनों ही भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के ऐसे दो सेनानी हैं जिनके बीच धूप-छांव का रिश्ता बना रहा। दोनों के बीच मतभेद का कारण उनकी अपनी-अपनी पृष्ठभूमि और अनुभव थे। सुभाष की पृष्ठभूमि बंगाल के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उत्थान की थी। उन पर योद्धा सन्यासी स्वामी विवेकानंद और क्रांतिकारी विचारक अरविंद घोष के ओजस्वी विचारों तथा

उग्रवादी नेताओं की ब्रिटिश साम्राज्यशाही के प्रति अविश्वास तथा घृणा का प्रभाव था। बंगाल में बीसवीं सदी के आरम्भ से ही सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन की सुदृढ़ और अटूट परम्परा रही थी। बोस की क्रांतिकारी आंदोलन से सहानुभूति थी और इतिहास तथा क्रांति-साहित्य के अध्ययन के फलस्वरूप उनके मन में यह बात बैठ गई थी कि कोई राष्ट्र सशस्त्र विद्रोह के बिना स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता। आयरलैंड के स्वतंत्रता-संग्राम से वे प्रभावित थे और भारत के राष्ट्रीय आंदोलन की अनेक स्थितियों का उन्होंने आयरलैंड के स्वतंत्रता-संग्राम से सादृश्य माना था। इटली के क्रांति-नेता मेज़िनी और गेरीबाल्डी तथा तुर्की के नियंता कमाल अतातुर्क ने स्वतंत्रता आंदोलन के बारे में उन्हें प्रेरित किया था। भारतीय राजनीति में प्रवेश करते समय उनकी आयु 24 वर्ष की थी और युवकोचित उत्साह के कारण उनमें अधीरता का भाव भी था। वे इंडियन सिविल सर्विस की सुविधासंपन्न नौकरी को छोड़ कर देश सेवा के लिए राजनीति के मैदान में उतरे थे और प्रथम महायुद्ध के बाद की बदलती हुई विश्व-राजनीति उनकी आंखों के सामने थी। उन्होंने भारत को उसके अपने इतिहास के आलोक में ही नहीं, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में भी परखा था।

सुभाष बोस के मुकाबले गांधी जी राजनीति के मंजे हुए खिलाड़ी थे। 1921 मे उनकी आयु 52 वर्ष थी और उन्हें राजनीति के खेल का प्रायः 25 वर्षो का अनुभव था। उनके मन का गठन वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत, धम्मपद, बाइबिल, रास्किन, थोरो और टालस्टाय ने किया था। अपने 25 वर्ष के राजनीतिक जीवन में प्रायः 20 वर्ष उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में बिताए थे। जहां उन्होंने गोरी सरकार के विरुद्ध अपने सत्याग्रह-अस्त्र का सफलतापूर्वक प्रयोग किया था। उनके विचारों में परिपक्वता आ गई थी। उनका विश्वास था कि भारत की निहत्थी जनता हिंसक क्रांति के लिए बिल्कुल तैयार नहीं है। वह शस्त्र-बल में भू-मंडल के सबसे बड़े और शक्तिशाली साम्राज्य का किसी भी हालत में सामना नहीं कर सकती। लेकिन भारत के पास संख्या-बल था। उनकी जनसंख्या इतनी अधिक थी कि यदि एक बार भी उसके मन से ब्रिटिश सत्ता के प्रति डर निकल जाए, तो मुट्ठी भर अंग्रेज लोग उसके ऊपर अनिश्चित काल तक शासन नहीं कर सकते। इसलिए गांधी जी के अनुसार स्वतंत्रता-आंदोलन का सबसे श्रेष्ठ उपाय था लोगों में जागृति पैदा करना, उन्हें उनकी वर्तमान दुरवस्था तथा विदेशी शासन की त्रुटियों से परिचित कराना, उनके सामने स्वतंत्र भारत का चित्र प्रस्तुत करना। गांधी जी का आंदोलन नए तरह का आंदोलन था। इतिहास में उसका कोई उदाहरण नहीं मिलता।

समानताएं

राजनीतिज्ञों, राजनीतिक समीक्षकों और इतिहासकारों ने महात्मा गांधी और

सुभाष बोस के मतभेदों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया है। यह दोनों ही व्यक्तियों के साथ अन्याय है। महात्मा गांधी और सुभाष बोस में अनेक समानताएं थीं जिनकी ओर प्रायः ध्यान नहीं दिया गया है।

व्यावहारिक आदर्शवाद

गांधी जी और सुभाष बोस दोनों ही व्यावहारिक आदर्शवादी थे। दोनों ही अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करना जानते थे। गांधी जी का चिंतन और जीवन आदर्श और यथार्थ की गंगा-जमना का संगम था। वे कवि शैली की उस चिड़िया की भांति नहीं थे जो पृथ्वी पर स्थित अपने नीड़ की सुध-बुध भूल कर अनंत आकाश में पर फैलाए उड़ती है। वे कवि वर्ड्सवर्थ की उस चिड़िया की भांति थे जिसे आकाश में उड़ते समय भी पृथ्वी पर स्थित अपने नीड़ की बराबर याद बनी रहती है। उनकी राय थी कि आदर्शवाद को यथार्थ का रूप धारण करने के लिए व्यावहारिक होना आवश्यक है। वे भावात्मक सत्य को उस समय तक बिल्कुल व्यर्थ मानते थे जब तक कि वह व्यक्तियों के जीवन में प्रकट न हो। हिंसा और कायरता के बीच चुनाव की स्थिति में गांधी जी का मत हिंसा के पक्ष में था। जीवन में थोड़ी-बहुत हिंसा है ही इसलिए हमें गांधी जी की सम्मति में न्यूनतम हिंसा के मार्ग को चुनना है। आचार्य जे० बी० कृपलानी ने गांधी जी के व्यावहारिक आदर्शवाद की पुष्टि करते हुए कहा है :

"महात्मा गांधी इस बात को भलीभांति जानते थे कि कब दृढ़ रहा जाए और कब झुका जाए। कब और किन बातों में सहयोग किया जाए और किन में असहयोग, कब प्रहार किया जाए और कब चुपचाप रहा जाए, कभी-कभी वर्षों तक।"

सुभाष बोस ने जीवन में आदर्श के महत्व को स्वीकार किया है। उनके विचार से आदर्श को प्रत्येक क्षण सामने न रखने से जीवन में प्रगति करना असंभव है। इस असार संसार में प्रत्येक वस्तु नष्ट होती है और नष्ट होगी। किंतु विचार, आदर्श और स्वप्न नष्ट नहीं होते। कोई व्यक्ति एक विचार के लिए मर सकता है किंतु यह विचार उसकी मृत्यु के बाद स्वयं को हजारों जीवनों में प्रस्फुटित करेगा। इसी प्रकार विकास का क्रम चलता रहता है और एक पीढ़ी के विचार, आदर्श और स्वप्न आगामी पीढ़ी को उत्तराधिकार में मिल जाते हैं।

सुभाष बोस के जीवन का चरम आदर्श था- देश की स्वतंत्रता। वे इस आदर्श के साथ किसी भी कीमत पर समझौता करने को तैयार न थे। उनका कहना था कि हम अपने रास्ते चलेंगे, कोई हमारा साथ दे न दे। यदि कुछ व्यक्ति हमारा साथ छोड़ देंगे, तो हज़ारों और व्यक्ति हमारी स्वतंत्रता-सेना में सम्मिलित होंगे। सुभाष मानते थे कि यदि हमारा कोई आदर्श है तो उसे हम जीवन में उतार सकते हैं। उदाहरण

के लिए अगर हमारा आदर्श पूर्णता प्राप्त करना है तो हम पूर्ण हो सकते हैं, अन्यथा पूर्णता के आदर्श का कोई मतलब नहीं रहता।

संगठनकर्त्ता

गांधी जी और सुभाष बोस दोनों ही महान् संगठनकर्त्ता थे।

जिस समय गांधी जी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया, भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना को प्रायः 150 वर्ष हो गए थे। इस बीच भारतीय राजनीति में अनेक उतार-चढ़ाव आए थे, लेकिन इन सबके बावजूद ब्रिटिश शासन अक्षुण्ण बना रहा था। लोगों के मन में ब्रिटिश सरकार की अपराजेयता का विचार दृढ़ हो गया था। इस समय राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना अंकुर रूप में ही थी। गांधी जी ने इन सारी बाधाओं के बावजूद राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक जन-आंदोलन का रूप दिया। उन्होंने समाज के सभी वर्गों को राष्ट्रीय आंदोलन की ओर आकृष्ट किया। गांधी जी ने तीन मुख्य जन-आंदोलनों का संचालन किया था- असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन। गांधी जी के नेतृत्व में खद्दर के कपड़े पहनना और जेल जाना गौरव का विषय बन गया। लोगों में स्वाभिमान और त्याग की भावना पैदा हुई। जनता में सरकारी खिताबों के प्रति कोई आदर नहीं रहा। लोगों के दिल और दिमाग से सरकार के प्रति भय जाता रहा। आंदोलन शहरों तक सीमित न रह कर गांव-गांव मे पहुंच गया। गांवों की दुरवस्था की ओर लोगों का ध्यान गया। विदेशी शिक्षा और भाषा के प्रति लोगों का मोह टूटा। राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की नींव पड़ी। देशी भाषाओं का महत्व बढ़ने लगा। देश में अभूतपूर्व एकता के दर्शन हुए। ब्रिटिश प्रांतों के साथ-साथ देशी रियासतों में भी उत्तरदायी शासन की मांग बढ़ी।

गांधी जी की भांति ही सुभाष बोस में भी आश्चर्य की संगठन-क्षमता थी। 1925 में देशबंधु चितरंजन दास की मृत्यु के बाद वे बंगाल के सबसे प्रमुख राजनीतिक नेता के रूप में तो उभरे ही, नवयुवकों और छात्रों के बीच उनका प्रभाव अप्रतिम था। उनकी संगठन-क्षमता का सबसे बड़ा उदाहरण आज़ाद हिंद फौज़ और स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार का संगठन था। आज़ाद हिंद फौज़ का निर्माण भारत के उन युद्धबंदियों में से किया गया था जो जापान के नियंत्रण में थे। आज़ाद हिंद फौज़ में विभिन्न धर्मो के मानने वाले लोग थे लेकिन सुभाष बोस के नेतृत्व में वे सब भारतीय थे और एक ही लक्ष्य के प्रति समर्पित थे- भारत की आज़ादी।

अनुशासन-प्रियता

गांधी जी और सुभाष बोस दोनों ही अनुशासन-प्रिय थे।

गांधी जी मूलतः एक साधक थे। साधक को अपने आध्यात्मिक साध्य की

सिद्धि के लिए नैतिक अनुशासन में बंध कर रहना पड़ता है। इस नैतिक अनुशासन से साधक का अंत:करण शुद्ध होता है और उसे अपने आप पर नियंत्रण रखने में सहायता मिलती है। मनुष्य अपने चरम ध्येय को किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, इसके लिए महात्मा गांधी ने कुछ नैतिक नियमों के आचरण पर ज़ोर दिया है। गांधी जी ने इन नैतिक नियमों को व्रत कहा है। गांधी जी के साबरमती आश्रम में इन नियमों का पालन आवश्यक था। जब गांधी जी 1930 में यरवदा जेल में बंदी थे, उन्होंने साबरमती आश्रम-वासियों के नाम आश्रम के मुख्य व्रतों के बारे में पत्र लिखे थे। इन पत्रों में गांधी जी ने अपने द्वारा प्रतिपादित व्रतों की व्याख्या प्रस्तुत की थी। गांधी मार्ग के व्रत हैं : (1) सत्य, (2) अहिंसा, (3) ब्रह्मचर्य, (4) अस्वाद, (5) अस्तेय, (6) अपरिग्रह, (7) अभय, (8) अस्पृश्यता-निवारण, (9) शरीर-श्रम, (10) सर्वधर्म समवाय और (11) स्वदेशी। इन नियमों के अतिरिक्त गांधी जी ने नम्रता तथा यज्ञ-भावना को भी सत्याग्रही के लिए उपयोगी माना है हालांकि उन्हें नियमित व्रतों में शामिल नहीं किया गया है।

गांधी जी के सामाजिक और राजनीतिक दर्शन में आध्यात्मिक और नैतिक अनुशासन का भारी महत्व है। सत्याग्रही के लिए प्रथम कोटि के आत्मिक बल की आवश्यकता है। अनुशासन की आग में तपे बिना सत्याग्रही यह आत्मिक बल नहीं पा सकता।

गांधीजी की भांति ही सुभाष बोस में भी अनुशासन की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे बचपन से ही विद्रोही स्वभाव के अवश्य थे लेकिन सार्वजनिक जीवन में प्रवेश के बाद स्वराज दल, कलकत्ता नगर निगम, कांग्रेस पार्टी और फिर अंत में आज़ाद हिंद फौज़ में उन्होंने अनुशासन-प्रियता का परिचय दिया था। वे आज़ाद हिंद फौज़ के प्रधान सेनापति थे और आज़ाद हिंद फौज़ में अनुशासन और समर्पण की भावना भरना उन्हीं का काम था।

गांधीजी की भांति ही सुभाष बोस के चिंतन में आंतरिक अनुशासन का भाव उपलब्ध होता है। वे मानते हैं कि किसी कार्य में सफलता अथवा असफ़लता से जो अहंकार एवं निराशा मिलती है, उनका उन्मूलन करके मनुष्य को संयत बनाने के लिए अध्ययन एवं मनन ही एकमात्र उपाय है। मनुष्यों में तभी आंतरिक अनुशासन आ सकता है! आंतरिक संयम न होने पर बाह्य संयम स्थायी नहीं हो सकता। नियमित व्यायाम से जिस प्रकार शरीर का विकास होता है ठीक उसी प्रकार नियमित साधना से सद्वृत्तियों का उद्भव और वासनाओं का नाश होता है।

भारतीयता

गांधी जी और सुभाष बोस दोनों ही सच्चे अर्थों में भारतीय थे, भारतीय संस्कृति

और धर्म में उनकी अटूट आस्था थी और दोनों ही भारत का पुनर्निर्माण भारत की परम्परा और परिवेश के आधार पर करना चाहते थे।

महात्मा गांधी के चिंतन पर भारतीय संस्कृति तथा भारतीय परम्पराओं का स्पष्ट प्रभाव खोजा जा सकता है। गांधी जी भारतीय सभ्यता और संस्कृति के बडे हिमायती थे। उन्होंने अपनी पुस्तक *हिंद स्वराज* के परिशिष्ट मे अनेक पाश्चात्य विद्वानों के उद्धरण दिए हैं जिनमें भारतीय संस्कृति का प्रशस्ति गान किया गया है। गांधी जी मानते थे कि संसार के देशों में भारत ही ऐसा देश है जो अहिंसा की कला सीख और सिखा सकता है। उनकी भारतीय ऋषियों में अपार श्रद्धा थी। जिन ऋषियों ने हिंसा के बीच अहिंसा की खोज की, वे न्यूटन से अधिक प्रतिभाशाली थे। गांधी जी का भारत की आध्यात्मिक शक्ति में विश्वास था। भारत को इस बात का अनुभव करना है कि उसकी अपनी एक आत्मा है जो नष्ट नही की जा सकती। गांधी जी का निश्चित मत था कि दुनिया में किसी सस्कृति का भंडार इतना भरा-पूरा नहीं है जितना भारतीय संस्कृति का। वेदों के समय से हमारी सभ्यता चली आ रही है। जिस तरह गंगा जी में अनेक नदियां आकर मिली हैं, उसी तरह भारत की संस्कृति गंगा मे अनेक संस्कृति रूपी सहायक नदियां आकर मिली हैं। गांधी जी का विचार था कि भारतीय सभ्यता की प्रवृत्ति नैतिकता के विकास की ओर है जब कि पश्चिमी सभ्यता अनैतिकता को पोत्साहन देती है।

गांधी जी ने अपने अनेक विचारो का स्रोत हिंदू धर्म को माना है। उनकी दृष्टि में हिंदू धर्म समावेशक, व्यापक, सदा वर्धमान और परिस्थिति के अनुरूप नवीन रूप धारण करने वाला है। गांधी जी ने वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, रामचरितमानस कबीर, मीरा, सूरदास, नरसिंह आदि मध्ययुगीन संत कवियों का अध्ययन किया था और अपनी रचनाओं में उनके उद्धरण दिए है। ईश्वर, आत्मा, मानव जीवन का ध्येय, प्रार्थना, उपवास आदि के संबंध मे गांधी जी के विचार एक सनातनी हिदू के विचार हैं।

भारतीय संस्कृति और इतिहास का सुभाष बोस ने भी गहरा अध्ययन किया था। वे उन लोगों में से नहीं थे जो आधुनिकता के जोश में अपने अतीत के गौरव को भूल जाते हैं। वे मानते थे कि हमें भूतकाल को अपना आधार बनाना है। भारत की अपनी संस्कृति है। इस संस्कृति को अपनी सुनिश्चित धाराओं में विकसित होना है। हम संसार को बहुत कुछ दे सकते हैं विशेष कर दर्शन, साहित्य और कला के क्षेत्रों में।

सांस्कृतिक अंतर्राष्ट्रीयता की दृष्टि से कभी-कभी राष्ट्रीयता पर प्रहार किया जाता है कि वह स्वार्थी और आक्रामक है। इस विषय में सुभाष बोस का कहना था कि भारतीय राष्ट्रवाद संकुचित, स्वार्थी और आक्रामक नहीं है। यह मानवता के उच्च

आदर्शो से प्रेरणा ग्रहण करता है।

सुभाष बोस यह मानते थे कि ब्रिटिश शासन के अंतर्गत आने से पहले भारत गरीब नहीं था। वस्तुतः भारत की संपदा ने ही यूरोपीय देशों को भारत की ओर आकृष्ट किया था।

सुभाष बोस का विचार था कि पिछले 3000 वर्षो में बाहर से लोग नए विचारों, कभी-कभी नई संस्कृतियों के साथ भारत में आए हैं। ये सभी प्रभाव, विचारधाराएं एवं संस्कृतियां धीरे-धीरे भारत के राष्ट्रीय जीवन में घुल-मिल गईं। यद्यपि मूल रूप से हमारी सभ्यता प्राचीन सभ्यता के अनुकूल है लेकिन हमारा जीवन स्थिर नहीं रहा है। हम समय के साथ बदले हैं और आगे बढ़े हैं।

गांधी जी की भांति ही सुभाष बोस का ईश्वर, आत्मा, प्रार्थना, धर्म, नैतिकता, भक्ति, प्रेम, भजन , संयम, श्रद्धा आदि नैतिक धारणाओं में विश्वास था। उन्होंने इन नैतिक धारणाओं की व्याख्या भारतीय संदर्भो में की है। ईश्वर, आत्मा और धर्म संबंधी धारणाओं का अंतिम् सत्य जो भी हो, धर्म में आरंभ से ही रुचि तथा योगाभ्यास से उन्हें बहुत लाभ हुआ। इन धारणाओं के फलस्वरूप उन्होंने जीवन को गम्भीरता से ग्रहण करना सीखा। कालिज जीवन की दहलीज पर सुभाष को अनुभव हुआ कि जीवन का कोई अर्थ और उद्देश्य है।

लक्ष्य

महात्मा गांधी और सुभाष बोस दोनों के जीवन का राजनीतिक लक्ष्य एक ही था- भारत की स्वाधीनता।

महात्मा गांधी ने भारत की स्वतंत्रता के लिए एक शब्द प्रचलित किया था- 'स्वराज्य' या 'स्वराज' । मूलतः इस शब्द का प्रयोग लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने किया था और कहा था कि "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूंगा।" गांधी जी ने "स्वराज्य" शब्द की अंतर्निहित धारणा को व्यापक रूप दिया है और उसे लोगों के मन में उतार दिया है। "स्वराज्य" का शाब्दिक अर्थ है अपने ऊपर राज्य अर्थात् अपने ऊपर नियंत्रण। दूसरे शब्दों में आत्म-नियंत्रण। इस दृष्टि से स्वराज्य में एक आध्यात्मिक और नैतिक भावना का समावेश हो जाता है। महात्मा गांधी की "स्वराज्य" विषयक कल्पना अत्यंत उदात्त तथा उनके एक अन्य प्रिय शब्द 'रामराज्य' की पर्याय थी। इस शब्द में उनके सपनों के भारत का चित्र था।

अपने सपनों के भारत का चित्र खींचते हुए महात्मा गांधी ने कहा था कि उसमें राजा से लेकर रंक तक का एक भी अंग अविकसित रहे, ऐसा नहीं होना चाहिए। उसमें कोई किसी का शत्रु न हो, सब अपना काम करें, कोई निरक्षर न रहे, उत्तरोतर सबके ज्ञान की वृद्धि होती जाए, सारी प्रजा को कम से कम बीमारियां हों, कोई भी

दरिद्र न हो, परिश्रम करने वालों को बराबर काम मिलता रहे, उसमें जुआ, चोरी, मद्यपान और व्याभिचार न हो, वर्ग-विग्रह न हो और धनिक अपने धन का विवेकपूर्ण उपभोग करें। यह नहीं होना चाहिए कि मुट्ठीभर धनिक मीनाकारी के महलों में रहें और हज़ारों अथवा लाखों लोग हवा और प्रकाश रहित कोठरियों में।

गांधी जी का स्वराज्य चौमुखी राज्य है। इसमें राजनीतिक स्वाधीनता, आर्थिक समानता, नैतिक उत्थान और सामाजिक भाईचारा सम्मिलित हैं। गांधीजी ने सच्चे स्वराज्य की कुंजी सत्याग्रह, आत्म बल और दयाबल माना है। उनके मत से इस बल को काम में लाने के लिए सर्वथा स्वदेशी बनने की ज़रूरत है। गांधी जी के स्वराज्य में गरीबों के लिए परमात्मा का अर्थ था सिर्फ दाल-रोटी।

सुभाष बोस ने स्वाधीन भारत का जो चित्र खींचा है, वह गांधी जी के चित्र से अधिक भिन्न नहीं है। वह एक ऐसे भारत की कल्पना करते हैं जो विदेशी नियंत्रण से पूरी तरह स्वतंत्र है, जिसमें व्यक्ति को जीवन के हर क्षेत्र में पूरी तरह स्वतंत्रता प्राप्त है, जिसमें जाति-वर्ग और वर्ण का कोई भेदभाव नही है, जिसमें स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं और वे पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिला कर समाज के उत्थान में लगी हुई हैं, जिसमें आर्थिक असमानता का अंत कर दिया गया है और सभी लोगों को शिक्षा तथा रोजगार की समान सुविधाएं उपलब्ध हैं, जिसमें कारीगरों और मज़दूरों को सम्मान का स्थान मिला हुआ है और आलसियों का बिल्कुल सफाया कर दिया गया है। हमारे सपनों के भारत में किसी विदेशी शक्ति का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा और सभी लोगों की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी होंगी। यह समाज स्वयं मानवता के लिए एक आदर्श होगा।

मतभेद के मुद्दे

महात्मा गांधी और सुभाष के मतभेद दो प्रश्नों को लेकर थे : 1. भारत की स्वतंत्रता किस प्रकार प्राप्त की जाए, और 2. स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज का पुनर्निर्माण किन आधारों पर हो।

राष्ट्रीय आंदोलन की प्रक्रिया

महात्मा गांधी 1915 के आरम्भ में दक्षिण अफ्रीका से भारत आ गए थे। उन्होंने देश की सामाजिक और राजनीतिक अवस्था का बारीकी से अध्ययन आरंभ किया। एक वर्ष तक गांधी जी ने सक्रिय राजनीति में कोई भाग नहीं लिया। वे होमरूल आंदोलन और 1916 के कांग्रेस-लीग समझौते से भी अलग रहे। इस समय राष्ट्रीय आंदोलन पर श्रीमति एनी बीसेंट तथा लोकमान्य तिलक का प्रभाव था। सरकार भी उन्हीं को महत्त्व देती थी। तिलक उस समय भारत के सबसे प्रभावशाली व्यक्ति थे।

गांधी जी को निरा समाज सुधारक और आदर्शवादी व्यक्ति समझा जाता था। वे स्वयं प्रसिद्धि से दूर भागते थे। उनके विचार और काम करने के तरीके तत्कालीन नेताओं से अलग थे। कांग्रेस के उग्र और नरम दोनों पक्ष उन्हें पूरी तरह समझने और अपनाने में असमर्थ थे। उग्र पक्ष दक्षिण अफ्रीका में किए गए उनके कार्य की सराहना करता था। पर वे गोखले के सहयोगी थे और सरकार से सहयोग करने के लिए तैयार थे। अत: गरम दल वालों में वे लोकप्रिय नहीं हो पाए। गोखले का विश्वास-भाजन होने पर भी नरम दल वालों तक में उनकी साख नहीं बन पाई। उनकी धार्मिक और नैतिक दृष्टि, उनका सत्याग्रह-सिद्धांत, उनकी हद से ज्यादा सादगी पूरी तरह नरम दल वालों के गले नहीं उतर पा रही थी। इन दो अतियों के बीच गांधी जी को अपना रास्ता निकालना था। ज्यादातर मामलों में गांधी जी के विचार परिपक्व हो चुके थे। गांधी जी किसी संस्था के भीतर गौण स्थिति में काम नहीं कर सकते थे। उन्हें अपनी संस्था स्वयं बनानी थी, एक ऐसी संस्था जो उनके विचारों और कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप दे सके।

युद्धकाल में सक्रिय राजनीति से अलग रहते हुए भी गांधी जी जनता की स्थानीय समस्याओं से जूझने के लिए तैयार थे। उन्होंने 1917 में बिहार के चंपारन जिले में नील की खेती से त्रस्त किसानों की समस्या को सफलतापूर्वक सुलझाया, अहमदाबाद के मिल मजदूरों तथा मालिकों के बीच सुलह करवायी और खेड़ा जिले के किसानों की मुश्किलों को हल किया। भारतीय शासन अधिनियम, 1919 की त्रुटियों, रौलट एक्ट तथा जलियांवाला हत्याकांड ने गांधी जी का मन अंग्रेजों की ओर से फेर दिया। वे राजभक्त से राजद्रोही बन गए। उनके कदम ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने की दिशा में उठने के बजाए असहयोग करने की दिशा में उठने लगे। सितम्बर, 1920 में सारी स्थिति पर विचार करने और सरकार के विरुद्ध व्यापक आंदोलन की रूपरेखा तैयार करने के लिए कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय इस अधिवेशन के अध्यक्ष थे। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने पहली बार, गांधी जी के प्रयत्नों से, विदेशी शासन के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करने, विधान सभाओं का बहिष्कार करने और असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ करने का निर्णय किया। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा पंजाब में सैनिक अधिकारियों द्वारा किए गए अत्याचारों की निंदा की और राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा के लिए स्वराज्य की स्थापना को आवश्यक बताया। कांग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन विशेष अधिवेशन था। कुछ समय बाद ही नागपुर में कांग्रेस का नियमित वार्षिक सम्मेलन हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस के उद्देश्यों, कार्यक्रम और साधन-प्रणाली में व्यापक परिवर्तन किए गए। गांधी जी कांग्रेस के एकछत्र नेता बन गए। पुरानी पीढ़ी के अधिकांश नेता, जो गांधी जी का विरोध कर सकते थे अथवा उन्हें चुनौती दे

सकते थे, दिवंगत हो चुके थे। दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में अब तक की सफलताओं, धार्मिक स्वरूप, संत-स्वभाव, सादगी और नूतन कार्य-प्रणाली ने गांधी जी को भारतीय राजनीति के शिखर पर पहुंचा दिया। जो नेता उनसे सहमत नहीं थे, वे कांग्रेस से निकल गए। इन नेताओं में श्रीमति एनी बीसेंट, मोहम्मद अली जिन्ना और विपिन चन्द्र पाल जैसे व्यक्ति भी शामिल थे। यह भारतीय राजनीति में गांधी युग का आरम्भ था।

गांधी जी के असहयोग आंदोलन विषयक प्रस्ताव में खिलाफत का प्रश्न भी जुड़ा हुआ था। भारत के मुसलमान तुर्की के सुलतान को इस्लाम का खलीफा (प्रमुख नेता) मानते थे। प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की ने जर्मनी का साथ दिया था और मित्र देशों के विरुद्ध हथियार उठाए थे। युद्ध काल में ब्रिटिश सरकार ने वायदे किए थे कि युद्ध का अंत होने पर तुर्की साम्राज्य को कोई नुकसान नही पहुंचाया जाएगा। लेकिन जैसे ही महायुद्ध समाप्त हुआ, विजेता राष्ट्रों की नीयत बदल गई। उन्होंने तुर्की साम्राज्य को समाप्त करने का निश्चय किया। भारत के मुसलमानों को इससे ठेस पहुंची। गांधी जी ने मुसलमानो के प्रति सहानुभूति प्रकट की। उन्होंने नवम्बर, 1919 में दिल्ली में हुए अखिल भारतीय खिलाफत सम्मेलन का सभापतित्व भी किया। गांधी जी का विचार था कि यदि खिलाफत आंदोलन में हिन्दू मुसलमानों का साथ देगे तो मुसलमान भी राष्ट्रीय आदोलन में आगे आएंगे और इससे राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिलेगा। खिलाफत समिति ने गाधी जी के असहयोग आंदोलन का सुझाव मान लिया।

गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन तेजी से चला लेकिन 5 फरवरी, 1922 को उत्तरप्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी-चौरा नामक स्थान पर क्रुद्ध भीड़ ने थाने मे आग लगा दी जिसमें पुलिस के 22 सिपाहियों की मृत्यु हो गई। गांधी जी ने आंदोलन स्थगित कर दिया। गांधी जी पर मुकदमा चला और उन्हें छह वर्ष का कारावास दंड मिला।

असहयोग आंदोलन की विफलता और गांधी जी की गिरफ्तारी से देश में निराशा का वातावरण छा गया। ऐसे समय में देशबंधु चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने विचार प्रस्तुत किया कि कांग्रेस को विधानमंडलों के निर्वाचनों में भाग लेकर आज़ादी की लड़ाई विधान मंडलों के भीतर लड़नी चाहिए। उन्होंने इस काम के लिए स्वराज दल का सगठन किया। फरवरी, 1924 में बीमारी के बाद जेल से बाहर आने पर गांधी जी ने स्वराजवादियों के कार्यक्रम की पुष्टि कर दी। वे स्वयं और उनकी विचारधारा वाले लोग रचनात्मक कार्यक्रम में लगे रहे। स्वराजवादियों ने केंद्रीय विधान सभा और कुछ प्रांतीय विधानसभाओं में उल्लेखनीय कार्य किया।

1930 में गांधी जी ने भारत का दूसरा बड़ा जन आंदोलन सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ किया। जिस समय भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन चल रहा था,

लंदन में ब्रिटिश सरकार ने भारत के भावी संविधान पर विचार करने के लिए गोलमेज़ परिषद का आयोजन किया। पहली गोलमेज़ परिषद में कांग्रेस ने भाग नहीं लिया। मार्च, 1931 में गांधी-इर्विन समझौते के फलस्वरूप गांधी जी कांग्रेस की ओर से अकेले प्रतिनिधि के रूप में दूसरी गोलमेज़ परिषद में शामिल हुए लेकिन उसका कोई फल न निकला। भारत पर ब्रिटिश सरकार के सांप्रदायिक निर्णय के विरोध में गांधी जी ने आमरण उपवास किया जो पूना समझौते के बाद समाप्त हुआ।

तीन गोलमेज़ परिषदों के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासन अधिनियम, 1935 का निर्माण किया। इस अधिनियम के अंतर्गत प्रांतों में निर्वाचित प्रतिनिधियों के मंत्रिमंडल बने जिन्होंने अपना काम योग्यता और निष्ठा से किया।

सितम्बर, 1939 में यूरोप में दूसरा महायुद्ध शुरू होने पर वायसराय लार्ड लिन्लिथगो ने केंद्रीय अथवा प्रांतीय विधानमंडलों की सलाह लिए बिना ही यह घोषणा कर दी कि भारत भी जर्मनी के विरुद्ध ब्रिटेन के साथ लड़ाई में शामिल है। कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने ब्रिटिश सरकार की इस कार्यवाही के विरोध में त्याग-पत्र दे दिए।

अगस्त, 1942 में गांधीजी ने भारत छोड़ो आंदोलन आरंभ किया। गांधी जी तथा कांग्रेस के नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। जब महायुद्ध की समाप्ति पर वे छोड़े गए तो भारत-विभाजन के आधार पर 15 अगस्त, 1947 को भारत आज़ाद हुआ।

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन को गांधी जी की मुख्य देन है– उन्होंने आंदोलन को नैतिक आधार दिया; उन्होंने आंदोलन को व्यापक जनाधार दिया; उन्होंने आंदोलन को क्रांतिकारी रूप दिया।

बोस की दृष्टि में गांधी जी

सुभाष बोस ने भारतीय राजनीति में 1921 में प्रवेश किया। उन्होंने गांधी जी से पहली मुलाकात लंदन से भारत वापस आने पर 16 जुलाई, 1921 को बम्बई में की। सुभाष बोस ने गांधी जी से असहयोग आंदोलन के बारे में कई प्रश्न पूछे। गांधी जी के उत्तरों से बोस की शंकाओं का समाधान नहीं हुआ। उन्हें लगा कि गांधी जी के मन में अपनी योजना की स्पष्ट तस्वीर नहीं है।

गांधी जी के नेतृत्व के प्रति बोस के मन में अंत तक संदेह बना रहा। उन्होंने मुख्यतः निम्न आधारों पर गांधी जी का विरोध किया :

1. गांधी जी मूलतः संत थे, राजनीतिज्ञ नहीं। वे राजनीति और राजनय के दांव-पेचों को पूरी तरह नहीं समझते थे।

2. गांधी जी अपने विरोधी पर भी पूरा विश्वास करते थे।

3. गांधी जी छिपा कर कुछ नहीं रखते थे। वे अपना मन पूरी तरह अपने विरोधियों के आगे भी खोल कर रख देते थे।

4. गांधी जी सभी वर्गों के सहयोग में आस्था रखते थे। वे धनिकों की कुटिलता को नहीं समझते थे।

5. गांधी जी संत और राजनीतिज्ञ दोनों की भूमिका निभाना चाहते थे।

6. गांधी जी ने राष्ट्रीय आंदोलन के अंतर्राष्ट्रीय पक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया। जब वे दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन गए थे, उन्होंने यूरोपीय देशों के प्रमुख राजनेताओं से मिलने की कोशिश नहीं की। ये राजनेता अंतर्राष्ट्रीय लोकमत को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के पक्ष में मोड़ने में सहयोग दे सकते थे।

7. गांधी जी ने अनेक बड़े राजनीतिक निर्णय अपनी अंतरात्मा की आवाज के अनुसार किए थे। राजनीति अध्यात्मक की नहीं, यथार्थ की दुनिया है। इसमें हर कदम वस्तुगत परिस्थितियों पर आधारित होना चाहिए।

8. गांधी जी के चरित्र में तानाशाही का पुट था। वे कांग्रेस आदोलनों के 'डिक्टेटर' रहे थे। अपनी सारी विनम्रत्ता के बावजूद गांधी जी में फौलाद का तत्त्व था। उन्होंने अपने से निर्बल विरोधियों को कुचल डालने की कोशिश की और अपने से सबल विरोधियों के साथ समझौता किया।

यद्यपि सुभाष बोस ने स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी जी की महत्वपूर्ण देन को स्वीकार किया है, लेकिन इस आंदोलन की अनेक घटनाओं के बारे में गांधी जी की सोच और प्रतिक्रिया की आलोचना की है। कुछ मुख्य घटनाएं हैं :

1 जब गांधी जी ने असहयोग आंदोलन आरम्भ किया, उनके सामने अपनी योजना का पूरा खाका नही था। उन्होंने एक वर्ष में स्वराज प्राप्त करने का वचन दिया था जो पूरा नहीं हुआ। चौरी-चौरा दुर्घटना के कारण समूचे आंदोलन को स्थगित कर देना उचित नहीं था। गांधी जी ने असहयोग आंदोलन में खिलाफत के प्रश्न को मिला दिया था। खिलाफत का प्रश्न तुर्की का प्रश्न था। उसे भारतीय राजनीति में लाने का अर्थ था मुस्लिम कट्टरता को प्रोत्साहन। गांधी जी द्वारा चर्खे और हाथ की कताई पर ज़ोर देने से भारत की आर्थिक समस्या का समाधान नहीं हो सकता था।

2. 1926 में कलकत्ते में पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। बंगाल प्रांतीय कांग्रेस ने भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास किया था। सुभाष चाहते थे कि कलकत्ता कांग्रेस भी पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास कर दे। सुभाष बोस ने इस आशय का प्रस्ताव पेश किया। जवाहर लाल नेहरू ने सुभाष के प्रस्ताव का समर्थन किया। लेकिन गांधी जी ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। गांधी जी के विरोध के कारण बोस का प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अगले वर्ष 1929 में लाहौर अधिवेशन में गांधी जी ने स्वयं पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पेश किया। इस अवसर पर सुभाष बोस ने संशोधन रखा कि कांग्रेस को देश में समानांतर सरकार की स्थापना करनी चाहिए। गांधी जी के विरोध के कारण सुभाष बोस का संशोधन अस्वीकृत हो गया।

3. क्रांतिकारियों के प्रति गांधी जी का जो रुख था, सुभाषचन्द्र बोस उससे प्रसन्न नहीं थे। 13 सितम्बर, 1929 को लाहौर जेल में भूख हड़ताल के कारण क्रांतिकारी जतिन दास की मृत्यु हो गई। 16 सितम्बर, 1929 को कलकत्ते में जतिनदास की शव-यात्रा निकली। देशबंधु चितरंजन दास की मृत्यु के बाद कलकत्ते की यह सबसे लम्बी शवयात्रा थी। गांधी जी ने जतिन दास की शहादत के बारे में कुछ नहीं कहा। इसी तरह जब गांधी जी और लार्ड इर्विन में सुलह के लिए बातचीत हो रही थी, सुभाष बोस की राय थी कि गांधी जी को समझौते की एक शर्त यह रखनी चाहिए कि सरदार भगतसिंह को फांसी न दी जाए। सुभाष बोस के विचार से देश की स्थिति उस समय कुछ ऐसी थी कि सरकार को यह शर्त माननी पड़ती। लेकिन गांधी जी ने ऐसा कुछ नहीं किया और सरदार भगतसिंह को फांसी दी गई।

3 मार्च, 1931 को गांधी जी और लार्ड इरविन के बीच जो समझौता हुआ था, वह सुभाष बोस को उचित नहीं लगा था। उनके विचार से कांग्रेस को इस समझौते से कोई लाभ नहीं हुआ था। कांग्रेस के अन्य नेताओं की भी यही राय थी। लेकिन गांधी जी के दबाव के कारण यह समझौता स्वीकार कर लिया गया।

1931 में गांधी जी ने कांग्रेस के एकमात्र प्रवक्ता के नाते दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लिया। सुभाष ने गोलमेज़ परिषद में गांधी जी की भूमिका की आलोचना की है। इस महत्त्वपूर्ण सम्मेलन में गांधी जी को अकेले नहीं जाना चाहिए था। उन्हें अपने साथ कुछ अन्य योग्य कांग्रेसियों को ले जाना चाहिए था। गांधी जी ने गोलमेज़ सम्मेलन के काम की ओर पूरा ध्यान नहीं दिया। उनका काफी समय और शक्ति धार्मिक और नैतिक प्रश्नों की चर्चा में निकल जाती थी। सुभाष का विचार तो यहां तक था कि कांग्रेस को गोलमेज़ सम्मेलन में भाग ही नहीं लेना था।

1938 में सुभाष बोस कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। 1939 में वे दुबारा अध्यक्ष-पद के लिए खड़े हुए। गांधी जी ने तथा उनके कट्टर अनुयाइयों ने डॉ० पट्टाभि सीता रामय्या को अध्यक्ष-पद के लिए खड़ा किया। निर्वाचन में सुभाष बोस विजयी हुए। गांधी जी ने सीतारामय्या की पराजय को अपनी पराजय बताया गांधी जी के रुख को देखते हुए कांग्रेस के पुराने नेताओं ने कांग्रेस कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया। सुभाष बोस ने गांधी जी से सहयोग की प्रार्थना की। उन्हें कई पत्र लिखे। लेकिन गांधी जी ने बोस को कोई सहयोग नहीं दिया। विवश होकर बोस को 29 अप्रैल, 1939 को कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना पड़ा। उनके स्थान पर

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। इस सारे प्रकरण में गांधी जी की भूमिका की प्रायः आलोचना की गई है। सुभाष बोस लोकतंत्रात्मक ढंग से दुबारा कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित्त हुए थे। गांधी जी को पट्टाभि सीतारामय्या की हार को अपनी हार मानने का कोई कारण न था। उन्हें व्यक्तिगत आग्रहों से ऊपर रहना था। सुभाष बोस ने कांग्रेस के भीतर ही अपने एक नए वामपक्षी दल फारवर्ड ब्लाक का संगठन किया और अपने कुछ वक्तव्यों में कांग्रेस हाई कमान की आलोचना की। इस पर कांग्रेस कार्य-समिति ने उन्हें अनुशासन-भंग के अपराध में बंगाल प्रांतीय कांग्रेस समिति के अध्यक्ष पद से एवं कांग्रेस की किसी भी निर्वाचित समिति का सदस्य होने से वंचित कर दिया। अनेक समीक्षकों की राय में सुभाप बोस को यह दंड इसलिए दिया गया था क्योंकि उन्होंने गांधी जी का विरोध करने का दुस्साहस किया था।

सितम्बर, 1939 में दूसरा महायुद्ध आरम्भ होने पर ब्रिटिश सरकार ने भारत के निर्वाचित प्रतिनिधियों और सार्वजनिक नेताओं से विचार-विमर्श किए बिना ही भारत को युद्ध में भागीदार बना दिया था। राष्ट्रीय नेताओं को इससे आघात पहुंचा था। सुभाष बोस का मत था कि यह इंगलैंड के लिए संकट का समय है और भारत को इससे लाभ उठा कर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध व्यापक जन आंदोलन आरम्भ करना चाहिए। वे इस संवंध मे गांधी जी से बात करने के लिए जून, 1940 में सेवाग्राम भी गए थे। उनकी गांधी जी से विस्तार से वात हुई थी। गाधी जी का मत था कि वे जल्दी में कोई काम नहीं कर सकते। देश जन-आंदोलन के लिए तैयार नहीं है। यह गाधी जी और सुभाप बोस की अंतिम भेंट थी।

सुभाप बोस का गांधी जी तथा कांग्रेस के अन्य सत्ताधारी नेताओं के ऊपर आक्षेप था कि वे सुधारवादी और नरम मनोवृत्ति के हैं। गांधी जी को इस आरोप पर कोई आपत्ति न थी। उनका कहना था कि दादाभाई नौरोजी एक महान सुधारवादी थे। गोखले नरम दल के महान् प्रतिनिधि थे। इसी तरह बम्बई प्रात के बेताज के बादशाह फिरोजशाह मेहता और सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी भी नरम थे। अपने समय में वे ही राष्ट्र के लिए लड़ने वाले थे। हम उन्हीं के उत्तराधिकारी है। वे न होते तो हम भी न होते। सुभाप बावू आगे बढ़ने की अधीरता में यह भूल जाते है कि मेरे जैसे लोग सुधारवादी और नरम मनोवृत्ति के होते हुए भी उनके साथ देशभक्ति में होड़ लगा सकते हैं।[5]

स्वतंत्रता के बाद सामाजिक पुनर्निर्माण

स्वतंत्रता अपने आप में साध्य नहीं है। साध्य है जनता की खुशहाली, उसकी रोटी, कपड़े और मकान की समस्या का हल, उसके नैतिक, बौद्धिक, भौतिक और आध्यात्मिक उत्थान के अवसर।

गांधी और सुभाष दोनों ही स्वतंत्रता-सेनानी होने के साथ-साथ विचारक भी थे और उनके मन में स्वतंत्र भारत की रूपरेखा थी। महात्मा गांधी कोई सिद्धांतवादी राजनीति-दार्शनिक नहीं थे जो सदा पुस्तकों में डूबे रहते हों और चिंतन के जाले बुनते हों। वे आरम्भ से ही व्यावहारिक सुधारक और कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे थे।

अपना सार्वजनिक जीवन आरम्भ करते समय गांधी जी को कुछ नैतिक सिद्धांतों से प्रेरणा मिली थी। गांधी जी ने उन नैतिक सिद्धांतों पर निष्ठापूर्वक अमल किया। शुरू में ये नैतिक सिद्धांत हलके-फुलके लगते थे। बाद में उनका दायरा बढ़ता गया। व्यवहार में ये सिद्धांत कारगर सिद्ध हुए। गांधी जी ने उनकी अपने ढंग से व्याख्या की। गांधी जी की संपूर्ण राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विचारधारा उनके नैतिक और धार्मिक विश्वासों की गंगोत्री से निकली है।

सामाजिक नव-निर्माण के संबंध में गांधी जी का दर्शन सर्वोदय का दर्शन है। सर्वोदय का अर्थ है बिना किसी भेदभाव के सबका उत्थान। यह दर्शन पश्चिम के उपयोगितावादी सिद्धांत के विरुद्ध है। गांधी जी ने सर्वोदय की मीमांसा करते हुए कहा है :

"सच तो यह है कि अहिंसा का पुजारी अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक सुख वाले उपभोगितावादी सिद्धांत को·तो मान ही नहीं सकता। वह तो अधिक से अधिक हित के लिए कोशिश करेगा और अपने ध्येय को प्राप्त करने के प्रयास में मर मिटेगा। वह दूसरों को जिलाने के लिए खुद मरने को ज्यादा तत्पर रहेगा। इस तरह मरने से वह दूसरों की नहीं, बल्कि अपनी भी सेवा करेगा।"

गांधी जी ने पंचायती राज और सर्वोदय को अभिन्न माना है। गांधी जी भारत का राजनीतिक संगठन पंचायती राज-व्यवस्था के आधार पर करना चाहते थे। इस व्यवस्था में छोटे-से-छोटा आदमी बड़े-से-बड़े आदमी के बराबर है। इसके लिए आवश्यक है कि हर आदमी का अंतःकरण शुद्ध हो। विभिन्न जातियां और उप-जातियां एक-दूसरे के बराबर हों। उनके बीच भेद की कोई खाई न रहे। सभी लोग प्रेम के धागे से बंधे रहें। छुआछूत का अंत हो जाना चाहिए। लोग अपने शरीर-श्रम से रोज़ी पैदा करें। न कोई काम छोटा हो, न बड़ा। हम सभी स्वेच्छा से भंगी बनने को तैयार हों। अफीम, भांग, गांजा, चरस और शराब जैसी नशीली वस्तुओं का पूरी तरह से तिरस्कार हो। हर आदमी स्वदेशी का निष्ठा से पालन करे। वह किसी स्त्री को वासना की नज़र से न देखे बल्कि आयु के अनुसार उसे माता, बहिन अथवा पुत्री माने। जब अवसर आए दूसरे की जान न लेकर अपनी जान निछावर करने के लिए तैयार रहे।

गांधी जी के तत्त्वज्ञान में सत्याग्रह का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने इस शब्द का निर्माण दक्षिण अफ्रीका में अपने आंदोलन के स्वरूप को व्यक्त करने के लिए किया था। उनका आंदोलन निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न था।

सत्याग्रह का अर्थ है सत्य पर आग्रह। चूंकि गांधी जी के चिंतन में सत्य एक सार्वभौम तत्त्व है, अतः गांधी जी की दृष्टि में सत्याग्रह भी एक सार्वभौम तत्त्व का रूप धारण कर लेता है। जीवन का सबसे बड़ा सत्य है मनुष्य की समूची सृष्टि के साथ आध्यात्मिक एकता। इस एकता को प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग है अहिंसा। इसका साधन है सबसे प्रेम करना, सबके लिए कष्ट सहना। इस विवेचन के अनुसार सत्याग्रह व्यक्ति की आत्मशक्ति या प्रेमशक्ति का पर्याय है। सत्याग्रह अहिंसक साधनों द्वारा सच्चे ध्येय की साधना है। वह प्रतिपक्षी को कष्ट देकर नहीं, स्वयं कष्ट सह कर सत्य की रक्षा है। वह सत्य के लिए तपस्या है।

गांधी जी ने सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध में आधारभूत भेद माना है :

1. निष्क्रिय प्रतिरोध काम चलाऊ राजनीतिक शस्त्र है। सत्याग्रह नैतिक शस्त्र है। सत्याग्रह का आधार है आत्मशक्ति की श्रेष्ठता।
2. निष्क्रिय प्रतिरोध दुर्बल का शस्त्र है। सत्याग्रह का प्रयोग वीर पुरुष ही कर सकते हैं। सत्याग्रही में किसी पर हाथ उठाए बिना अपना बलिदान करने की क्षमता होती है। अहिंसक सत्याग्रही सीधे हिंसा के दूसरे शब्दों में मौत के मुंह में दौड़ जाता है।
3. निष्क्रिय प्रतिरोध प्रतिपक्षी को परेशान करता है, इतना परेशान कि वह हार मानने के लिए विवश हो जाए। सत्याग्रही प्रेम और धैर्य के साथ कष्ट सहन करता है और उसका लक्ष्य अपने विरोधी का मन बदलना होता है।
4. निष्क्रिय प्रतिरोध साधनों की शुद्धता को आवश्यक नही मानता। सत्याग्रह में साधनों की शुद्धता आवश्यक है।

गांधी जी की राय में सत्याग्रह का जीवन के हर क्षेत्र में उपयोग हो सकता है। सत्य और अहिंसा की वास्तविक शक्ति का उन्मीलन उसी समय संभव है जब कि उसकी उपयोगिता घरेलू और सामाजिक संबंधों में भी प्रकट हो।

गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के प्रयोग द्वारा मनुष्य-जीवन की अनेक गुत्थियों का समाधान किया था। उन्होंने बचपन से ही प्रेम के नियम को अपनाकर उसका निरंतर विकास किया। तभी वे विशाल जनसमुदायों द्वारा प्रयोग के योग्य बना सके।

गांधी जी की दृष्टि में सत्याग्रही दुराग्रही नहीं होता। वह विपक्षी के दृष्टिकोण को समझने की हरचंद कोशिश करता है। जरूरत पड़ने पर वह अपने निर्णय में संशोधन करने के लिए तैयार रहता है। उसे अपनी भूल स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होती!

सत्याग्रह के अनेक शस्त्र है- असहयोग, उपवास, हड़ताल, सविनय अवज्ञा आदि। गांधी जी ने इन सभी उपायों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने बताया

है कि इन उपायों का किन परिस्थितियों में और किस प्रकार उपयोग किया जाए।

गांधी जी का समूचा जीवन दक्षिण अफ्रीका के अन्याय निवारण और भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में बीता। आज़ादी मिलने के तत्काल बाद वे सांप्रदायिक उपद्रवों को शांत करने में लग गए। उन्हें कभी दिल्ली, कभी बिहार, कभी कलकत्ता और कभी नोआरवाली जाना पड़ा। उन्हें अपने जीवन-काल में अहिंसक और सर्वोदयी राज्य तथा समाज की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करने का समय नहीं मिला। यह गांधीजी की रुचि का विषय भी नहीं था। वे भविष्य की विशेष चिंता नहीं करते थे। उनके लिए "एक कदम पर्याप्त था।"

फिर भी गांधी जी की रचनाओं में अहिंसक राज्य की स्थूल रूपरेखा उपलब्ध होती है। गांधी जी ने इस बात को माना है कि पूर्ण अहिंसक राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन में कुछ-न-कुछ हिंसा व्याप्त रहती है। इसलिए राज्य में, हर हालत में, कुछ-न-कुछ हिंसा रहेगी। इस संदर्भ में अहिंसक राज्य का अर्थ है- वह राज्य जो प्रमुख रीति से अहिंसक हो ।

महात्मा गांधी ने व्यक्ति और समाज के बीच कोई विरोध नहीं माना है। उनका कहना था कि व्यक्ति समाज का मूल है। वह स्वतंत्रता और प्रगति का मापदंड है। वे इस सिद्धांत में विश्वास रखते थे कि समाज के बिना मनुष्य अपना सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। महात्मा जी के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि वह अपने ऊपर समाज के ऋण को स्वीकार करे और अपने बंधु-बांधवों की सेवा द्वारा उसे चुकाने की कोशिश करे।

गांधी जी का अहिंसक राज्य कल्पना-लोक की वस्तु नहीं है। उसकी स्थापना संभव है। गांधी जी ने अपने सभी आश्रमों- फोनिक्स, टालस्टाय फार्म, साबरमती और सेवाग्राम- में अहिंसक वातावरण की सृष्टि की थी और एक आदर्श प्रस्तुत किया था जिसके अनुसार बृहत्तर समाज की रचना संभव थी।

महात्मा गांधी के अनुसार स्वतंत्रता का वास्तविक प्रयोजन जीवन का सर्वांगीण उत्थान करना है। उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता में राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक तीनों प्रकार की स्वतंत्रताएं समाविष्ट हैं। गांधी जी ने स्वतंत्रता के लिए "स्वराज" अथवा "स्वराज्य" शब्दों का प्रयोग किया था।

गांधी जी लोकतंत्रवादी थे। उनकी लोकतंत्र-संबंधी धारणा में तीन बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं- केंद्रीकरण का विरोध, हिंसा का त्याग और आलोचना-प्रत्यालोचना का अधिकार।

गांधी जी ने *हिंद स्वराज* में इंगलैंड के संसदीय शासन की आलोचना की है। उन्होंने प्रतिनिधिक शासन का समर्थन किया है लेकिन वे परोक्ष निर्वाचनों के पक्ष में हैं। गांधी जी के अनुसार भारत के गांवों का संगठन वहां के लोगों की इच्छानुसार

होना चाहिए और गांव के सारे वयस्क स्त्री-पुरुषों को मतदान का अधिकार होना चाहिए। ये गांव जिले का प्रबंध करने वालों को चुनें और इस चुनाव में प्रत्येक गांव का एक मत हो। जिले के प्रतिनिधि प्रांतीय प्रतिनिधियों को चुनें और प्रांतीय प्रतिनिधि राष्ट्रपति का चुनाव करें। राष्ट्रपति देश का मुख्य प्रशासक होगा। गांधी जी का विचार था कि इस पद्धति से सत्ता गांवों में बंट जाएगी और वास्तविक स्वतंत्रता का जन्म हो सकेगा।

गांधी जी के अहिंसक राज्य में अपराध, दंड, पुलिस, सेना, और सरकारी कर्मचारियों, न्यायालयों और वकीलों के लिए कम से कम स्थान है क्योंकि उन्होंने राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम रखा है। उन्होंने अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर अधिक जोर दिया है।

गांधी जी के सामाजिक पुनर्निर्माण में व्यक्ति के आध्यात्मिक रूपांतर पर आग्रह है। आदर्श व्यक्ति ही आदर्श समाज की स्थापना कर सकता है।

यद्यपि सुभाष बोस भी नैतिक और धार्मिक आस्थाओं के व्यक्ति थे, लेकिन उनकी समाज-रचना में इन मूल्यों को गांधी जी की भांति मूलग्राही स्थान प्राप्त नहीं है। उनकी समाज-रचना समाजवादी आधारों पर है। इस समाज-व्यवस्था में राज्य का कार्यक्षेत्र व्यापक है, देश के योजनाबद्ध आर्थिक विकास पर बल है, सुसंगठित राजनीतिक दल की महत्ता है, केंद्रीकरण की अनिवार्यता है और साध्य-साधन अथवा हिंसा-अहिंसा का कोई सैद्धांतिक तर्क-वितर्क नहीं है। सुभाष बोस ने यह अवश्य कहा था कि उनका समाजवाद देश की परिस्थितियों के अनुरूप होगा लेकिन यह समाजवाद अन्य समाजवादी देशों के समाजवाद से किस प्रकार भिन्न होगा इसका स्पष्ट प्रमाण बोस की रचनाओं में नहीं मिलता। बोस की आज़ाद हिंद फौज़ में सांप्रदायिक एकता की भावना अवश्य थी। उसमें अनुशासन भी था। बोस का दृष्टिकोण अपने सहयोगियों के प्रति आदर का था। उनके प्रस्तावित राज्य में राष्ट्रीय सेना का प्रमुख स्थान था। गांधी जी की भांति व्यक्ति के व्यापक रूपांतर, मानवी हृदय-परिवर्तन, और अपने विरोधी के प्रति भी अगाध स्नेह तथा उसके लिए कष्ट-सहन की धारणा सुभाष बोस के चिंतन में नहीं पाई जाती।

राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति गांधी जी की नीति की आलोचना करते हुए भी सुभाष बोस ने भारतीय जनता के उत्थान में गांधी जी के योग को अनेक स्थलों पर सराहा है।

सुभाष बोस ने 1933 में तृतीय भारतीय राजनीतिक सम्मेलन, लंदन, में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था : "महात्मा गांधी एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जो जनता के सर्वसम्मत प्रतिनिधि के रूप में खड़े हो सके और उसको एक विजय से दूसरी विजय की ओर ले जा सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछली दशाब्दी में भारत एक शताब्दी

के बराबर आगे बढ़ा है"।[6]

सुभाष बोस ने 19 फरवरी, 1938 को कांग्रेस के 51वें अधिवेशन का सभापतित्व किया था। इस अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण में सुभाष बोस ने कहा था :

"इस अवसर पर मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि महात्मा गांधी अनेक वर्षों तक हमारे बीच बने रहें। भारत उन्हें नहीं खो सकता, कम से कम इस समय तो बिल्कुल नहीं। हमें लोगों में एकता बनाए रखने के लिए उनकी जरूरत है। हमें अपने संघर्ष को कटुता और विद्वेष से दूर रखने के लिए उनकी ज़रूरत है। हमें भारत की आज़ादी के लिए उनकी ज़रूरत है। इससे भी बढ़ कर बात यह है कि हमें मानवता के लिए उनकी जरूरत है"।[7]

सुभाष ने 2 अक्तूबर, 1943 को गांधी जी की पचहत्तरवीं वर्षगांठ पर बैंगकोक से अपने प्रसारण में कहा था :

"बीस वर्षों से भी अधिक समय से महात्मा गांधी भारत की मुक्ति के लिए कार्य कर रहे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि यदि वह 1920 में संघर्ष का नया हथियार लेकर सामने नहीं आते तो संभवतः भारत अब तक पददलित ही रहता। भारत की आज़ादी के लिए उनकी सेवाएं अनुपम और अद्वितीय हैं। वैसी ही परिस्थितियों में कोई भी अकेला व्यक्ति इतना नहीं कर सकता था।"[8]

6 जुलाई, 1944 को बोस ने अपना एक प्रसारण सीधे गांधी जी को संबोधित किया था। इस प्रसारण में उन्होंने गांधी जी को बताया था कि उन्होंने भारत क्यों छोड़ा और किन परिस्थितियों में आज़ाद हिंद फौज़ का संगठन किया। सुभाष बोस ने गांधी जी को राष्ट्रपिता के नाम से संबोधित किया था और आज़ादी के संघर्ष में उनसे आशीर्वाद की प्रार्थना की थी। उन्होंने कहा था :

"हमारे राष्ट्र के पिता भारत के इस पवित्र स्वतंत्रता-युद्ध में आपके आशीर्वाद तथा शुभेच्छाओं की हमें आवश्यकता है"।[9]

गांधी जी की दृष्टि में सुभाष

गांधी जी के व्यक्तित्व का एक विशेष पहलू यह था कि उनकी दृष्टि समूचे राष्ट्र पर रहती थी। राष्ट्रीय आंदोलन में जो व्यक्ति उभर कर सामने आए, गांधी जी ने उन्हें सदा प्रोत्साहन दिया। सुभाषचन्द्र बोस की ओर उनका ध्यान 1925 में आकृष्ट हो गया था। 10 अक्टूबर, 1925 को *फारवर्ड* पत्र को अपनी शुभकामनाएं भेजते समय गांधी जी ने सुभाष बोस की गिरफ्तारी और बिना मुकदमा चलाए, उन्हें जेल में रखने का उल्लेख किया था।[10]

1928 तक सुभाष बोस बंगाल और भारत की राजनीति में प्रतिष्ठित हो गए थे। 31 मार्च, 1928 को गांधी जी ने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद से सुभाष बोस को एक

पत्र लिखा था जिसमें इस बात पर खेद प्रकट किया था कि उनसे मद्रास में भेंट नही हो सकी थी। गांधी जी ने इस पत्र में सुभाष बोस से पूछा था कि वे सिर्फ ब्रिटिश माल के बहिष्कार की ही क्यों बात कर रहे हैं अन्य विदेशी माल के बहिष्कार की बात क्यों नही करते। गांधी जी ने सुभाष बोस के स्वास्थ्य के बारे में भी जानना चाहा था।"

1939 में सुभाष बोस गांधी जी के विरोध के बावजूद दुबारा कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हो गए थे। इससे गांधी जी को और उनके निकट सहयोगियों को धक्का लगा था। इस चुनाव में कांग्रेस के सभी वामपक्षी तत्त्वों ने बोस के पक्ष में मत दिए थे। बोस की विजय पर गांधी जी ने एक वक्तव्य जारी किया जिसमें उन्होने कहा कि पट्टाभि सीता रामय्या की पराजय उनकी पराजय है और बोस की विजय से यह बात स्पष्ट हो गई है कि कांग्रेस के प्रतिनिधि मेरे सिद्धांतों और नीति का अनुमोदन नही करते। मुझे अपनी पराजय पर खुशी है। सुभाष बाबू अपना अनुकूल मन्त्रिमंडल बना सकते है। वे अपने कार्यक्रम को बिना किसी बाधा के लागू कर सकते है। सुभाष बाबू देश के शत्रु नही है। उन्होंने देश के लिए कष्ट सहा है। उनकी सम्मति में उनकी अपनी नीति और कार्यक्रम सबसे अधिक प्रगतिशील और साहसपूर्ण है ... अल्पमत को उनके काम में रुकावट नही डालनी चाहिए। जब वह सहयोग न कर सके, उसे अनुपस्थित रहना चाहिए"[12]।

गांधी जी का यह पत्र सुभाषचन्द्र बोस के लिए एक प्रकार की चुनौती था। गांधी जी ने अपने इस पत्र में स्पष्ट कर दिया है कि सुभाष बोस ने उनके निकट सहयोगियों के लिए जिस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया था, उससे वे प्रसन्न न थे। सुभाष बोस को आजादी थी कि वे अपने मन के अनुसार कार्यसमिति बना सकते थे। गांधी जी की स्वयं सुभाष बोस की नीतियों और कार्यक्रमों में आस्था न थी।

सुभाष बोस अपनी कार्य-समिति न बना सके। जिन वामपक्षी तत्त्वों ने निर्वाचन मे सुभाषचन्द्र बोस का साथ दिया था, महात्मा गांधी के विरोध के कारण उन्होंने सुभाष का साथ छोड़ दिया। विवश होकर सुभाष बोस को कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से त्याग-पत्र देना पड़ा। कांग्रेस पर गांधी जी का वर्चस्व कायम रहा। गांधी जी के बिना कांग्रेस शक्तिहीन थी।

दिसम्बर, 1940 में सुभाष बोस जेल से छूट कर अपने घर में नज़रबंद थे। इसी समय गांधी जी ने अपना व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन वापस ले लिया। बोस ने उन्हें पत्र लिखा कि वे अपने सविनय अवज्ञा आंदोलन को व्यापक रूप दें। बोस ने अपने पत्र में कांग्रेस-अध्यक्ष मौलाना आज़ाद की भी आलोचना की कि उन्होंने बोस-नियंत्रित बगाल प्रांतीय कांग्रेस समिति के खिलाफ और बंगाल विधानसभा में शरत बोस के गुट के खिलाफ कार्यवाही की है। गांधी जी ने 29 दिसम्बर, 1940 को वर्धा से बोस के पत्र का उत्तर दिया था, जिसमें बोस की आलोचनाओं का समाधान करते हुए लिखा

था "तुम उद्दंड हो, चाहे बीमार हो या स्वस्थ। हंगामा खड़ा करने से पहले स्वस्थ हो जाओ। मैंने (*आज़ाद के*) निर्णय के बारे में पढ़ा। मुझे उसका अनुमोदन करना पड़ा। मुझे आश्चर्य होता है कि तुम अनुशासन और अनुशासनहीनता में भेद नहीं कर सकते ... मुझे मालूम है कि बंगाल में तुम दोनों के बिना कारगर ढंग से काम करना मुश्किल है। .... इस भारी मुश्किल के होते हुए भी कांग्रेस को काम चलाना है .... जहां तक तुम्हारे ब्लाक का सविनय अवज्ञा में शामिल होने का प्रश्न है, तुम्हारे और अपने मूलभूत मतभेदों को देखते हुए यह संभव नहीं है। जब तक हममें से एक दूसरे के विचारों को नहीं मान लेता, तब तक हमें अलग-अलग किश्तियों में सवारी करनी होगी। भले ही हमारा लक्ष्य समान लग सकता है लेकिन सिर्फ लग सकता है।

फिर भी हम एक दूसरे के प्रति प्रेम रख सकते हैं और जैसे कि हम है, एक ही परिवार के सदस्य बने रह सकते हैं।[13]

जुलाई, 1940 में सुभाष बोस की गिरफ्तारी पर कांग्रेस कार्यसमिति ने कोई विरोध प्रकट नहीं किया। इस बारे में गांधी जी का कहना था कि सुभाष बोस ने कांग्रेस की आज्ञा से सरकारी कानून भंग नहीं किया। उन्होंने तो खुद कार्यसमिति की आज्ञा का भी साफ एलान के साथ उल्लंघन किया था। सुभाष बाबू ने अपनी रणनीति खूब सोच-विचार के बाद और साहस के साथ गढ़ी है। उनके ख्याल में उनका रास्ता सर्वोत्तम है। वह ईमानदारी से यह मानते हैं कि कार्यसमिति गलत रास्ते पर है और टाल-मटोल की नीति से कुछ भला होने वाला नहीं। सुभाष बोस ने गांधी जी से साफ शब्दों में कह दिया था कि जो काम कार्यसमिति न कर सकी, वह उसे कर के बतायेंगे। उनका धीरज चला गया था और विलंब वह सहन नहीं कर सकते थे। गांधी जी का दृष्टिकोण था :

"मैंने उनसे कहा कि अगर उनकी योजना के परिणामस्वरूप मेरी जिंदगी में स्वराज्य मिल गया तो सबसे पहले उन्हें मेरी तरफ से धन्यवाद का तार मिलेगा। और अगर उनके उठाए हुए युद्ध के दरमियान मेरा विचार उनके जैसा हो गया तो मैं खुले दिल से उनका नेतृत्व करने का ऐलान करूंगा और उनके झंडे के नीचे बतौर एक सिपाही के आकर खुद भरती हो जाऊंगा। लेकिन इसके साथ-साथ मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दी थी कि वे गलत रास्ते पर चढ़े हैं।"[14]

इस मौके पर गांधी जी ने सुभाष बोस को यह राय तक दी थी कि वह कांग्रेस में से बिल्कुल निकल जायें। लेकिन गांधी जी की यह सलाह सुभाष बोस को जंची नहीं और वे कांग्रेस में बने रहे।

बोस के जर्मनी चले जाने के बाद गांधी जी के मन में सुभाष बोस के प्रति नरमी आ गई थी। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने अपनी पुस्तक *इंडिया विन्स फ्रीडम* में इस तथ्य की पुष्टि की है। लुई फिशर से बात करते हुए गांधी जी ने 1942 में

भारत छोड़ो आंदोलन आरंभ करने से पहले सुभाष बोस को देशभक्त शिरोमणि कहा था। सुभाष बोस की मृत्यु के बाद गांधी जी ने उनको भावभीनी श्रद्धांजलि भेंट की थी। उनके शब्दों में :

"नेताजी के जीवन से जो सबसे बड़ी शिक्षा ली जा सकती है वह है उनके अपने अनुयाइयों में ऐक्य भावना की प्रेरणाविधि, जिससे कि वह सब सांप्रदायिक तथा प्रांतीय बंधनों से मुक्त रह सके और एक समान उद्देश्य के लिए अपना रक्त बहा सके। उनकी अनुपम सफलता उन्हें निस्संदेह इतिहास के पन्नों में अमर रखेगी।"[15]

आज़ाद हिंद फौज़ के अनेक अफसर भारत लौटने पर गांधी जी से मिले थे। उन्होंने निर्विवाद रूप से गांधी जी से कहा कि नेताजी का प्रभाव उन पर जादू सा करता था। वह नेताजी के अधीन एकमात्र भारत की आज़ादी प्राप्त करने के उद्देश्य से काम करते थे। उनके दिलों में सांप्रदायिक और प्रांतीय या और कोई भी भेदभाव कभी भी अंकुरित नहीं हुआ था। गांधी जी की दृष्टि में नेताजी का सबसे महान और स्थिर रहने वाला कार्य था सब प्रकार के जातीय और वर्णभेद का उन्मूलन। वह केवल बंगाली नहीं थे। उन्होंने अपने आपको कभी सवर्ण हिंदू नहीं समझा। वह आमूल चूल भारतीय थे। नेताजी ने अपने अनुगामियों में भी यही आग प्रज्जवलित की। नेताजी के अनुगामियों ने आपस के सभी भेदों को भूल कर एक मन से देश की स्वतंत्रता के लिए काम किया।[16]

1947 में पाकिस्तान के कबाइली लुटेरों ने काश्मीर पर आक्रमण किया। सुनने में आया कि कबाइली आक्रमणकारियों की इस फौज में सुभाष बोस की आज़ाद हिंद फौज़ के भी दो अफसर शामिल थे। गांधी जी को यह बात बहुत चुभी थी और उन्होंने 2 नवंबर, 1947 को अपने प्रार्थना-प्रवचन में इसका उल्लेख किया था। गांधी जी ने इन अफ़सरों से कहा था कि वे सुभाष बाबू के नाम को क्यों डुबोते हैं। सुभाष बाबू तो ऐसे थे नहीं। उनके साथ हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, हरिजन आदि सब रहते थे। वहां न हरिजन का भेद था, न इत्तर जन का। वहां तो हिंदुस्तानियों में जात-पात का कोई भेदभाव था ही नहीं। यों तो सब अपने धर्म पर कायम थे। लेकिन सुभाष बाबू ने उनके चित्त पर कब्ज़ा कर लिया था। सुभाष बाबू ने यह कभी नहीं कहा कि यदि कोई आज़ाद हिंद फौज़ में शामिल नहीं होता है तो उसे काट डाला जाए। सुभाष लोगों को इस तरह काट कर हिन्दुस्तान को रिहाई दिलाने वाले नहीं थे। सुभाष इस तरह से बड़े हुए और उन्होंने बड़प्पन पाया। वह तो मर गए, लेकिन उनका नाम नहीं मरा, काम नहीं मरा।"

23 जनवरी, 1948 को अर्थात् गांधी जी की मृत्यु से सिर्फ एक सप्ताह पहले सुभाष बोस की 51 वीं जन्म तिथि पड़ी। गांधी जी किसी की जन्म तिथि या मृत्यु तिथि याद नहीं रखते थे। लेकिन जब उन्हें सुभाष बोस की जन्म तिथि की याद

दिलाई गई तो उन्होंने सुभाष बोस के गुणों की सराहना की। गांधी जी ने माना कि सुभाष हिंसा के पुजारी थे। गांधी जी स्वयं अहिंसा के भक्त थे। लेकिन गांधी जी के लिए हिंसा और अहिंसा का भेद बुनियादी न था। उनके पास गुण की कीमत थी। गांधी जी ने तुलसीदास जी का निम्नलिखित दोहा उद्धृत किया :

जड़-चेतन गुण-दोषमय

विश्व कीन्ह करतार ।

संत हंस गुन गहहिं पय

परिहरि वारि विकार ।।

हंस जैसे पानी को छोड़कर दूध ले लेता है, वैसे ही हमें भी करना चाहिए। मनुष्य मात्र में गुण और दोष दोनों भरे पड़े हैं। हमें गुणों को ग्रहण करना चाहिए, दोषों को भूल जाना चाहिए। सुभाष बाबू बड़े देशप्रेमी थे। उन्होंने देश के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी थी। वह सेनापति बने। उनकी फौज में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख, सब थे। सब बंगाली थे, ऐसा भी नहीं था। उनमें न प्रांतीयता थी, न रंगभेद, न जातिभेद। वह सेनापति थे, इसलिए उन्हें ज्यादा सहूलियत लेनी या देनी चाहिए, ऐसा भी नहीं था।[18]

सारांश

1920 से 1947 तक भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के तीन सबसे बड़े नेता थे- महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस। जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस कांग्रेस में वामपक्ष के प्रवक्ता थे। कालांतर में जवाहर लाल नेहरू पूरी तरह गांधी जी के प्रभाव में आ गए। सुभाष बोस के गांधी जी से मतभेद बने रहे।

महात्मा गांधी और सुभाष बोस के आपसी मतभेद आरंभ में तो राष्ट्रीय आंदोलन की रणनीति के बारे में थे। आगे चल कर वे स्वतंत्र भारत के प्रस्तावित पुनर्निर्माण के आधारों को लेकर भी उभरे। दोनों का दृष्टिभेद 1939 में कांग्रेस के अध्यक्ष-पद पर सुभाष बोस के दुबारा निर्वाचित होने पर खुल कर सामने आया। सुभाष बोस ने गांधी जी द्वारा मनोनीत उम्मीदवार डॉ० पट्टाभि सीता रामय्या को पराजित कर दिया जिसे गांधी जी ने अपनी हार बताया। ये मतभेद इस सीमा तक बढ़े कि सुभाष बोस को कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से इस्तीफा देना पड़ा और वे अंततः भारत छोड़ कर पहले जर्मनी और फिर सुदूरपर्व चले गए। सुदूरपूर्व में सुभाष बोस ने जापनियों के सहयोग से युद्धबंदी भारतीय सैनिकों की आज़ाद हिंद फौज़ का संगठन किया। युद्ध में जापान की पराजय होने पर सुभाष बोस को आज़ाद हिंद फौज़ का विघटन करना पड़ा और अगस्त, 1945 में एक विमान-दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। यद्यपि गांधी जी सुभाष

के जीवन-काल में उनके आलोचक थे, लेकिन सुभाष बोस की वीरोचित मृत्यु के बाद उनके बारे में गांधी जी की राय भी बदली तथा उन्होंने सुभाष बोस के अनुपम त्याग तथा शौर्य की सराहना की।

महात्मा गांधी और सुभाष बोस के बीच मतभेद का कारण उनकी अपनी-अपनी पृष्ठभूमि और अनुभव थे। बोस नवजागृत बंगाल की विभूति थे। उनकी क्रांतिकारी आंदोलन से सहानुभूति थी और वे मानते थे कि कोई राष्ट्र सशक्त क्रांति के बिना स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता। युवकोचित उत्साह के कारण उनमें अधीरता का भाव भी था।

सुभाष बोस के मुकाबले गांधी जी राजनीति के मंजे हुए खिलाड़ी थे। उन्हें दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आंदोलन का सफल अनुभव था। 1915 से 1921 तक भारत में भी उन्होंने अनेक समस्याएं सुलझाई थीं और कांग्रेस को, उसके संविधान तथा कार्यक्रम को अपने मन के अनुसार गढ़ लिया था। गांधी जी का विश्वास था कि भारत की निहत्थी जनता ब्रिटिश साम्राज्य से हिंसक क्रांति के बल पर नहीं जीत सकती। उसके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता निर्भयता का पाठ पढ़ने की थी।

गांधी जी और सुभाष बोस में कुछ समानताएं भी थीं। दोनों ही व्यावहारिक आदर्शवादी, कुशल संगठन कर्त्ता और अनुशासन-प्रिय नेता थे। दोनों में भारतीयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। दोनों के जीवन का लक्ष्य एक ही था- भारत की स्वतंत्रता।

गांधी जी और सुभाष बोस के बीच मतभेद के मुद्दे थे- राष्ट्रीय आंदोलन की रणनीति क्या हो तथा स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज का पुनर्निर्माण किन आधारों पर हो।

महात्मा गांधी ने भारत में तीन बड़े राजनीतिक आंदोलन संचालित किए- असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा भारत छोड़ो आंदोलन। इन तीन आंदोलनों ने देश में अभूतपूर्व जन-जागृति पैदा की लेकिन देश स्वाधीन न हो सका। बोस के गांधी जी की रणनीति पर कई आक्षेप थे।

गांधी जी मूलतः संत थे, राजनीतिज्ञ नहीं। वे राजनय के दांवपेंचों को पूरी तरह नहीं समझते थे। वे अपने विरोधी पर भी विश्वास करते थे। वे धनिकों और सत्ताधारियों की कुटिलता को नहीं समझते थे। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन के अंतर्राष्ट्रीय पक्ष की उपेक्षा की। उनके अधिकांश राजनीतिक निर्णय अंतरात्मा की आवाज के अनुसार होते थे। उनके चरित्र में तानाशाही का पुट था। वे कांग्रेस आंदोलनों के डिक्टेटर होते थे।

सुभाष बोस ने राष्ट्रीय आंदोलन की अनेक घटनाओं के बारे में गांधी जी की सोच और प्रतिक्रिया की आलोचना की है। जब गांधी जी ने असहयोग आंदोलन

आरम्भ किया, उनके सामने अपनी योजना का पूरा खाका नहीं था। चौरी-चौरा कांड के कारण समूचे आंदोलन को स्थगित कर देना उचित नहीं था। असहयोग आंदोलन में खिलाफत के प्रश्न को मिला देने का परिणाम था– मुस्लिम कट्टरता को प्रोत्साहन देना। चर्खे को भारत की आर्थिक समस्या का हल मानना भोलापन था।

गांधी जी ने पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव एक साल तक टाले रखा था। वे पूर्ण स्वतंत्रता के प्रस्ताव के साथ ही सुभाष बोस के समानांतर सरकार बनाने के प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए थे।

क्रांतिकारियों के प्रति गांधी जी का उदासीनता का जो रुख था, सुभाष बोस उससे प्रसन्न नहीं थे।

1931 में गांधी जी और लार्ड इर्विन के बीच जो समझौता हुआ, वह सुभाष बोस को संतोषजनक नहीं लगा था। इससे कांग्रेस को कोई लाभ नहीं हुआ था।

गांधी जी ने दूसरी गोलमेज़ परिषद में कांग्रेस के एकमात्र प्रवक्ता के रूप में भाग लिया था। परिषद में अकेले पड़ जाने के कारण वे अपनी जिम्मेदारी पूरी तरह नहीं निभा सके।

1939 में गांधी जी के विरोध के कारण सुभाष बोस को दूसरी बार कांग्रेस का अध्यक्ष-पद छोड़ना पड़ा। सुभाष बोस के अनुसार गांधी जी को व्यक्तिगत आग्रहों से ऊपर रहना था।

सुभाष बोस चाहते थे कि जैसे ही महायुद्ध आरम्भ हुआ था, कांग्रेस को सरकार के विरुद्ध आंदोलन छेड़ देना चाहिए था।

सुभाष बोस का गांधी जी के ऊपर प्रमुख आक्षेप यह था कि वे सुधारवादी और नरम मनोवृत्ति के हैं।

गांधी जी और सुभाष बोस दोनों के मन में स्वतंत्रता के बाद भारत के नवनिर्माण को लेकर अपने-अपने विचार थे। गांधी जी का समाज-दर्शन सर्वोदय का दर्शन है। यह दर्शन पश्चिम के उपयोगितावादी दर्शन के विरुद्ध है और अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख न चाहकर सबका अधिकत्तम सुख चाहता है। गांधी जी भारत का राजनीतिक संगठन पंचायती राज-व्यवस्था के आधार पर करना चाहते थे। गांधी जी के तत्त्वज्ञान में सत्याग्रह का महत्वपूर्ण स्थान है। सत्याग्रह के अनेक रूप हैं– असहयोग, सविनय अवज्ञा, उपवास, हड़ताल आदि। गांधी जी का सत्याग्रह निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न है। गांधी जी की राय में सत्याग्रह का जीवन के हर क्षेत्र में उपयोग हो सकता है।

गांधी जी ने सर्वोदयी राज्य और समाज की विस्तृत रूप रेखा प्रस्तुत नहीं की है। उनके अनुसार पूर्ण अहिंसक राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए

अहिंसक राज्य का अर्थ है– प्रमुख रीति से अहिसंक राज्य अथवा वह राज्य जिस में कम से कम हिंसा हो।

गांधी जी ने व्यक्ति और समाज के बीच विरोध नहीं माना है। गांधी जी ने अपने सभी आश्रमों में अहिंसक वातावरण की सृष्टि की थी। गांधी जी केंद्रीकरण के विरोधी थे। उन्होंने संसदीय शासन की आलोचना की है और प्रतिनिधिक शासन का समर्थन। वे परोक्ष निर्वाचनों के पक्ष में हैं। गांधी जी के अहिंसक राज्य में मशीनों, भारी उद्योगों, अपराध, दंड, पुलिस, सेना, सरकारी कर्मचारियों, न्यायालयों और वकीलों के लिए कम से कम स्थान है। वे राज्य का कार्यक्षेत्र कम से कम रखना चाहते हैं। उन्होंने अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर अधिक जोर दिया है।

यद्यपि सुभाष बोस भी नैतिक और धार्मिक आस्थाओं के व्यक्ति थे, लेकिन उनकी समाज-रचना में इन तत्वों को मूलग्राही स्थान प्राप्त नहीं है। इस समाज-व्यवस्था में राजसत्ता, केंद्रीकरण, आयोजन, सेना, उद्योगीकरण और राष्ट्रीयकरण का महत्त्व है।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1 1939 के अंतिम दिनों में जब सुभाष बोस और महात्मा गांधी के मतभेद उग्र हो गए थे, रवीन्द्र नाथ टैगोर ने दोनों के बीच सुलह कराने का प्रयास किया था। 13 जनवरी, 1940 को महात्मा गांधी ने *हरिजन* में लिखा था :

"The love of my conception, if it is as soft as a rose fetal; can also be harder than flint. My wife has had to experience the hard variety. My eldest son is experiencing it even now. I thought I had gained Subhash Babu for all time as a son. I have fallen from grace. I had the pain of wholly associating myself with the Bose pronounced on him. " Mahatma Gandhi, *Collected Works of Mahatma Gandhi,* Vol. LXXI, p.94.

2. महात्मा गांधी ने सुभाषचन्द्र बोस के लिए "बिगड़ा बालक" शब्दों का प्रयोग सी० एफ० एंड्रूज़ को लिखे गए अपने एक पत्र में किया था। उन्होंने लिखा था :

"I feel that Subhash is behaving like a spoilt child of the family. The only way to make up with him is to open his eyes. And then his politics show sharp differences. They seem to be unbridgeable." Mahatma Gandhi. From his letter to C. F. Andrews dated 15 January, 1940. *Collected Works of Mahatma Gandhi,* Vol. LXXI pp.113-14.

3. 2 अगस्त 1942 के *हरिजन* में गांधी जी और एक पत्रकार की बातचीत प्रकाशित हुई थी। उन दिनों गांधी जी व्यापक जन आंदोलन आरंभ करने की सोच रहे थे। पत्रकार ने गांधी जी से कहा कि अब आपके और सुभाप बोस के बीच कोई मतभेद नहीं हैं क्योंकि आप भी किसी भी मूल्य पर स्वंत्रता प्राप्त करने के लिए

संघर्ष करने की योजना बना रहे हैं। गांधी जी ने इस बात का खंडन किया कि वे किसी भी मूल्य पर स्वंत्रता चाहते हैं। गांधी जी ने जापानियों के भारत-प्रवेश के प्रति विरोध प्रकट किया और कहा कि जिस प्रकार हम अंग्रेजों से लड़ते हुए अपने प्राण निछावर कर देंगे, उसी तरह हम जापानियों के प्रति भी करेंगे।

4. सुभाष का धुरी शक्तियों से मिलना अनेक राष्ट्रवादी नेताओं को नागवार गुजरा था। उदाहरण के लिए जवाहर लाल नेहरू ने 24 अप्रैल, 1942 को गोहाटी में संवाददाता सम्मेलन में यह वक्तव्य दिया था :

   "Hitler and Japan must go to hell. I shall fight them to the end and this is my policy. I shall also fight Mr. Subhash Bose and his party along with Japan if he comes to India. Mr. bose acted very wrongly though in good faith. Hitler and Japan represent the reactionery forces and their victory means the victory of the reactionary forces in the world." Jawaharlal Nehru, *Selected Works of Jawaharlal Nehru,* Vol.12, New Delhi ,1979, pp.262-63.

5. *हरिजन सेवक,* 13.7.1940.

6. तृतीय भारतीय राजनीतिक सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण, लंदन 1933, गिरिराज शरण द्वारा उद्धृत, *सुभाष ने कहा था,* नई दिल्ली, 1982, पृ० 50.

7. "I shall voice my feelings by saying that all India fervently hopes and prays that Mahatma Gandhi may be spared to our nation for many many years to come. India can not afford to lose him and certainly not at this hours. We need him to keep our people United We need him to keep our struggle free from bitterness and hatred. We need him for the cause of Indian independence. What is more - we need him for the cause of humanity." From the Presidential Address of Subash Chandra Bose delivered at the 51st session of the Indian National Congress held on 19th February, 1938 at Haripura quoted by Verinder Grover (Ed.), *Subhash Chandra Bose,* p. 302.

8. For twenty years and more Mahatma Gandhi has worked for India's salvation... It is no exaggeration to say that if in 1920, he had not come forward with his new weapon of struggle, India to day would perhaps have been still prostrate. His services to the cause of India's freedom are unique and of unparalleled. No single man could have achieved more in one single life time under similar circumstances." Broadcast Address of Subhash Chandra Bose from Bangkok, delivered on 2 October, 1943. Quoted by Verinder Grover (Ed.), *Subash Chandra Bose,* pp. 375-76.

9. "Father of our Nation : In this holy war of India's liberation, we

ask for your blessings and good wishes." Bose's broadcast on July 6, 1944. Quoted by B.K. Ahluwalia and Shashi Ahluwalia, *Netaji And Gandhi* : New Delhi, 1982, p. 219.

10. "The longer young men like Subhash Bose are denied the right of a fair trial and yet under lock and key, the quicker is our pace towards our goal." Mahatma Gandhi . From Message to forward, dated October 10, 1925, Qnoted in *Collected Works of Mahatma Gandhi*, Vol.28, p. 311 .

11. I have for a long time wished to write to you just a line I was told that I could look forward to meeting you at Madras. But that was not to be .

    Will you kindly tell me why you have preferred the cry of boycott of British goods, principally British cloth, to boycott of foreign cloth, and why also boycott of British cloth pending settlement?

    I hope you have regained your original health." From a letter of Mahatma Gandhi to Subhash Chandra Bose, dated March 31, 1928. Quoted in *Collected Works of Mahatma Gandhi*, Vol. 36, p. 167.

12. Shri Subhash Bose has achieved a decisive victory... I must confess that from the very beginning I was against his re-election... I donot subscribe to his facts or the arguments in his manifestos. I think that his references to his colleagues were unjustified and unworthy. Nevertheless, I am glad of his victory. And since I was instrumental in inducing Dr. Pattabhi not to withdraw, the defect is more mine than his... it is plain to me that the delegates do not approve of the principles and policy for which I stand. I rejoice in his defeat... Subhash Babu, instead of being President on the sufferance of those whom he calls rightests, is now President elected in a contested election. This enables him to choose a homogenous cabinet and enforce his programme without let or hindrance... After all Subhash Babu is not an enemy of his country. He has suffered for it. In his opinion his is the most forward and boldest policy and programme... the minonity may not obstruct on any account. They must abstain when they cannot cooperate." Mahatma Gandhi , *Collected Works of Mahatma Gandhi*, Vol. VIII, pp. 359-60.

13. "You are irrepressible whether ill or well. Do get well before going in for fire works... I read... about the descision [*of Azad expelling Sarat Bose*] I could not help approving of it.I am surprised that you could not distinguish between discipline and indiscipline. I know that in Bengal it is difficult to function effectively without you two... The Congress has to manage somehow under the severe handicap... As for your block joining C.D. I think with the

fundamental differences between you and me, it is not possible. Till one of us is converted to the other's view, we must sail in different boats, though their destination may appear but only appear to be the same. Meanwhile let us love one another remaining members of the same family that we are." Mahatma Gandhi, *Collected Works of Mahatma Gandhi*.Vol. LXXIII, p. 264.

सुभाष बोस के नाम लिखित यह गांधी जी का अंतिम पत्र था।

14. महात्मा गांधी, *मेरे समकालीन*, पृ. 392 ।
15. वही, पृ. 393 ।
16. वही, पृ. 394 ।
17. वही, पृ. 395 ।
18. वही, पृ. 396 ।

16

मूल्यांकन

क्षत्रिय योद्धा

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भारतीय स्वतंत्रता-यज्ञ की उज्जवलतम शिखा और साथ ही पवित्रतम आहुति, कहना चाहिए पूर्णाहुति थे। वे अपने जीवन में जितने यशस्वी थे, मृत्यु के बाद उससे भी अधिक यशस्वी हैं। जापानी विद्वानों ने नेताजी को 'भारतीय समुराई' कहा है। 'समुराई' जापान का क्षत्रिय योद्धा है जिसे युद्ध में 'विजय' अथवा 'मरण' इन दोनों में से एक ही अभीष्ट होता है।[1] नेताजी युद्ध में विजयी नहीं हो सके। वे वीरगति को प्राप्त हुए। वे प्रज्जवलित अग्नि थे, दिए की टिमटिमाती लौ नहीं। उनकी मृत्यु उनके जीवन की सबसे गौरवपूर्ण घटना है। उनकी मृत्यु ने उनको अमर बना दिया है। उनका शरीर शांत हो चुका है, उनकी आत्मा सक्रिय है। नेताजी महाभारत के अर्जुन थे जिसने अन्याय से लड़ने के लिए शस्त्र उठाए थे। वे गीता के कर्मयोगी थे जिसने कभी विश्राम नहीं जाना और जीवन की अंतिम श्वास तक स्वतंत्रता के नाम की माला जपी और अपनी पथराती आंखों में स्वतंत्रता की छवि का दर्शन करते हुए देश से हजारों मील की दूरी पर अपने प्राणों का उत्सर्ग किया।[2]

नेताजी की देन

स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति नेताजी की देन को समझने के लिए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास पर दृष्टि डालना आवश्यक है। नेताजी मानते थे कि भारत ने पूरी तरह से अंग्रेजों के सामने अपनी पराजय कभी स्वीकार नहीं की। देश के किसी न किसी भाग में विद्रोह की ज्वाला सुलगती ही रही।

प्लासी के बाद

1757 का प्लासी युद्ध भारतीय इतिहास का निर्णायक युद्ध माना जाता है। इस

युद्ध में अपने सगे-संबंधियों तथा अफ़सरों के विश्वासघात के कारण बंगाल के अंतिम स्वतंत्र शासक नवाब सिराजुद्दौला क्लाइव के नेतृत्व में मुट्ठी भर ब्रिटिश सैनिकों के हाथों पराजित हुए और उसके बाद अंग्रेजों का पहले तो बंगाल में और फिर शेष भारत में सितारा बुलंद होता गया। लेकिन भारतीय जनता ने अंग्रेजों की इस अधीनता को कभी चुपचाप सहन नहीं किया। स्वयं बंगाल के संदर्भ में ही मुगल सम्राट शाह आलम, अवध के नवाब, मराठों, बंगाल के दो नवाबों मीर जाफर और मीर कासिम तथा वहां के अनेक जमीदारों, अफसरों और सेना ने समय-समय पर अंग्रेजों से लोहा लिया लेकिन उन्हें अपनी आंतरिक दुर्बलताओं, धोखा-धड़ी और सबसे बढ़ कर विश्वासघात के कारण पराजित होना पड़ा। 1760 में बीरभूम के राजा असद-उल-जमन ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया था पर वह सफल न हो सका।

मैसूर के हैदर अली और टीपू सुल्तान अंग्रेजों के शत्रु थे। त्रावणकोर के दीवान वेलू टम्पी ने अंग्रेजों से लोहा लिया था। यद्यपि पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठे अहमदशाह अब्दाली के हाथों बुरी तरह पराजित हुए थे, लेकिन पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा सिंधिया, भोंसले, होलकर और त्रिम्बकाजी डांगलिया जैसे प्रमुख मराठे सरदारों ने अंग्रेज़ी सत्ता का विरोध किया था भले ही भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया। बनारस के राजा चैतसिंह और अवध के अपदस्थ नवाब वज़ीर अली ने अंग्रेजों के विरोध में तलवार उठाई थी। केरल के राजा केरल वर्मा, आसाम के कबाइली टागी राजा, बुंदेलखंड में अजयगढ़ के किलेदार लक्ष्मण दावा, वहां के एक अन्य सरदार गोपाल सिंह, सहारनपुर के राजा रामदयाल और विजय सिंह, कोल्हापुर के शासक अन्ना साहब, बीजापुर के दिवाकर दीक्षित, हैदराबाद के नरसिंह दत्तात्रेय, विजयनगरम के विज़ीराम राउज़े, और उनके पुत्र नारायण राउज़े, गंजम के वीरभद्र राउज़े और जगन्नाथ राउज़े, काठियावाड़ के राउ भारमल द्वितीय, और अलीगढ़ के दयाराम आदि शताधिक छोटे-मोटे ज़मींदारों ने अंग्रेजों का विरोध किया था। इन विस्फोटों के कारण अनेक थे- राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक। कुछ स्थितियों में कबाइली प्रवृत्तियां भी इन विद्रोहों के मूल में थीं।

जहां 1857 से पहले के विद्रोह स्थानीय आधार पर थे, 1857 की क्रांति का फलक व्यापक था। इस क्रांति की लपटें प्रायः समूचे उत्तर.भारत में फैली हुई थीं। इसके मुख्य केंद्र थे- मेरठ, दिल्ली, कानपुर, झांसी, बरेली, बिजनौर, बदायूं, फर्रुखाबाद, शाहजहांपुर, मथुरा, आगरा, बांदा, जबलपुर, अवध, बिहार, पंजाब आदि। जिस तरह साधनों की कमी, संगठन के अभाव और देशवासियों की उपेक्षा के कारण 1757 से 1857 तक की क्रांति-योजनाएं सफल नहीं हो सकी थीं, उसी तरह सन् 1857 का पहला स्वाधीनता-संग्राम भी असफल हुआ। लेकिन ब्रिटिश शासको की नृशंसता और दमन नीति के बावजूद स्वतंत्रता की आग सदा के लिए ठंडी न हो सकी। वह दिए

की टिमटिमाती लौ की तरह बराबर प्रज्जवलित रही।

1857 के बाद, विशेषकर 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद भारत में स्वतंत्रता आंदोलन ने जो रूप लिया, उसमें अनेक विचारधाराओं, दलों और व्यक्तियों का योग है।

उदारवाद

स्वतंत्रता आंदोलन की सबसे पहली विचारधारा उदारवाद की है। इस विचारधारा का आरम्भ राजा राममोहन राय ने किया। महादेव गोविन्द रानाडे, दादाभाई नौरोजी, फीरोजशाह मेहता, सुरेन्द्र नाथ बेनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, श्री एस० निवास शास्त्री, तेज बहादुर सप्रू, एम० आर० जयकर और हृदयनाथ कुंजरू आदि। इस विचारधारा के प्रतिपादक थे। उदारवादियों का ब्रिटिश जनता की जन्मजात न्यायप्रियता तथा लोकतंत्रात्मक भावनाओं में विश्वास था। ब्रिटिश राज से भारत को जो लाभ हुए थे, उनकी वे प्रशंसा करते थे। ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति की घोषणाएं करना उनका स्वभाव था। वे भारत में ब्रिटिश नौकरशाही के आलोचक थे लेकिन वे समझते थे कि भारत वैधानिक उपायों से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता चला जाएगा। उनका लक्ष्य था ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत एक उपनिवेश का दर्जा प्राप्त करना। उनका कार्यक्रम था– प्रार्थनाएं तथा आवेदन। बाद में उनके इस कार्यक्रम को 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' का नाम दिया गया।

उदारवादियों ने भारत और इंगलैंड के हितों का एक-दूसरे से संबंध माना था। यह उनका भ्रम था। वे यह नहीं समझ सके कि निरंकुश विदेशी साम्राज्यवाद से वैधानिक उपायों द्वारा संघर्ष कर के नहीं जीता जा सकता।

लेकिन उदारवादियों में चाहे कितनी कमियां रही हों, वे भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माता थे। उन्होंने सार्वजनिक भाषणों और सार्वजनिक महत्व के प्रश्नों पर विचार-विमर्श के द्वारा जनता को राजनीतिक शिक्षा दी। 1892 का इंडियन कौंसिल्स एक्ट उदारवादियों के प्रयत्नों का ही फल था।

कांग्रेस की स्थापना अंग्रेज शासकों के सहयोग से हुई थी। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियों को कांग्रेस की आलोचनाएं और मांगें शीघ्र ही अरुचिकर तथा असह्य लगने लगीं। उन्होंने कांग्रेस की उन्नति के मार्ग में रोड़े अटकाने शुरु कर दिए।

उग्रवाद

राष्ट्रीय आंदोलन की दूसरी प्रमुख धारा उग्रवादी विचारधारा है। यह विचारधारा बीसवीं सदी के आरंभ में हुई। इससे भारत के राष्ट्रीय रंगमंच पर नए नेताओं का आविर्भाव हुआ। जनसाधारण के भीतर जो व्यापक असंतोष व्याप्त हो रहा था, इन

नेताओं ने उस असंतोष को व्यक्त किया, उसे वाणी दी। उनका उदारवादियों द्वारा प्रतिपादित राजभक्ति और वैधानिक आंदोलन की नीति में विश्वास नहीं था। वे सहयोग, प्रार्थनाओं और आवेदनों के उपायों का विरोध करते थे। वे विदेशी शासन को जड़ से उखाड़ फैंकने के लिए सक्रिय संघर्ष का समर्थन करते थे। कुछ स्थानों पर उग्र राष्ट्रीयता ने आतंकवाद का रूप धारण किया।

उग्र राष्ट्रवाद की उद्‌भावना कई कारणों से हुई थी। नौकरशाही, कुशासन, दुर्भिक्ष और प्लेग जैसी प्राकृतिक आपदाओं, बुद्धिजीवी वर्ग के आर्थिक असंतोष, विकासोन्मुख मध्यवर्ग की बढ़ती हुई आकांक्षाओं और धार्मिक-सांस्कृतिक पुनरुत्थान ने जनता के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति घोर घृणा की भावना उत्पन्न कर दी। लार्ड कर्जन की दमन-नीति ने जनता के रोष को प्रचंड किया। उन्होंने जनता की भावनाओं की जरा भी परवाह न करते हुए बंगाल को दो भागों में बांट दिया। इसके विरुद्ध सारे देश में आंदोलन का एक तूफान उठ खड़ा हुआ। यह आंदोलन कई साल तक चला। विवश होकर सरकार ने 1911 में बंगाल-विभाजन रद्द कर दिया। ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीयों के साथ जो दुर्व्यवहार किया जाता था, उससे भी देशवासियों के राष्ट्रीय अभिमान पर चोट पहुंची। 1896 में अबीसीनिया के हाथों इटली और 1904-5 में जापान के हाथों रूस पराजित हुए। इससे यूरोपीय जातियों की अजेयता की कल्पना नष्ट हो गई। इन अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं से भारतीयों को जोश मिला।

राष्ट्रीय आंदोलन की उग्रवादी विचारधारा सबसे पहले लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के क्रिया-कलापों के फलस्वरूप महाराष्ट्र में विकसित हुई। तिलक महान देशभक्त थे। उन्होंने स्वतंत्रता की वेदी पर बड़े-से-बड़े बलिदान किए। उन्होंने *केसरी* तथा *मराठा* पत्रों का संपादन किया और इन पत्रों के द्वारा राष्ट्रीयता की धारा को महाराष्ट्र के गांव-गांव तक प्रसारित किया। उन्होंने 1893 में गणपति उत्सव तथा 1895 में शिवाजी-उत्सव आरम्भ किए। इन उत्सवों के द्वारा तिलक ने महाराष्ट्र के नवयुवकों को शिक्षित, संगठित तथा अनुशासित किया और लोगों के मन में देशहित के लिए त्याग करने की भावना जागृत की। तिलक को कई बार कारावास का दंड मिला। वे एक गम्भीर विद्वान, चतुर राजनीतिज्ञ तथा जनता के छत्ररहित सम्राट थे। तिलक ने अंग्रेजी में तीन मुख्य ग्रंथों की रचना की :

1. The Orion (वेदकाल का निर्णय) पहला संस्करण, 1893 ।
2. The Arctic Home in the Vedas (आर्यों का मूल निवास स्थान), पहला संस्करण, 1903 ।
3. Vedic Chronology and Vedanga Jyotish (वेदों का काल-निर्णय और वेदांग ज्योतिष, पहला संस्करण, 1925।

लोकमान्य तिलक का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ *गीता रहस्य* है। यह ग्रंथ उन्होंने मूलतः मराठी में मांडले कारावास में 1910-1911 के बीच केवल पांच महीनों में ही पूरा किया था। लोकमान्य के जीवन-काल में ही इसके तीन हिंदी संस्करण प्रकाशित हुए थे।

तिलक ने अपनी व्याख्या में गीता को निवृत्ति-प्रधान नहीं, कर्म-प्रधान ग्रंथ माना है। महात्मा गांधी ने इस टीका के बारे में लिखा है :

"गीता पर तिलक जी की यह टीका ही उनका शाश्वत स्मारक है। स्वतंत्रता के युद्ध में विजयश्री प्राप्त होने पर भी वह सदा के लिए बना ही रहेगा। भविष्य में भी तिलक जी का विशुद्ध चरित्र और गीता पर उनकी महान टीका, इन दोनों बातों से उनकी स्मृति चिरप्रेरक होगी।"

उग्रवादी विचारधारा भारतीय उदारवाद के विरुद्ध क्रांति के रूप में थी। उग्रवादी नेताओं ने इस बात पर जोर दिया कि ब्रिटिश सरकार के प्रति सक्रिय विरोध के कार्यक्रम अपनाए जाएं। उग्रवादियों द्वारा प्रारंभ किए गए स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलनों ने भारत के राष्ट्रीय इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि भारतीय अंग्रेजों की गुलामी में ज्यादा दिन रहने के लिए तैयार नहीं हैं। उग्र राष्ट्रीयता का हिंदु-पुनरुत्थान से घनिष्ठ संबंध था। उदारवादियों और उग्रवादियों के बढ़ते हुए मतभेद के कारण ही सूरत में कांग्रेस में फूट पड़ गई।

गांधीवादी धारा

राष्ट्रीय आंदोलनों की सबसे सशक्त धारा गांधीवादी धारा है। गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में सफलता प्राप्त कर 1915 में भारत वापस आ गए। गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह पद्धति का विकास किया था जिसे वे निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न मानते थे। उनकी सत्याग्रह-पद्धति उनके जीवन का समग्र दर्शन थी। वह अन्याय के विरुद्ध जूझने का एक उपाय तो थी ही, उसमें भारत के नवनिर्माण की संकल्पना भी निहित थी। गांधी जी की राजनीतिक पद्धति और उनके सामाजिक-राजनीतिक विचारों का महत्व उनके व्यक्तित्व के कारण भी था। उनकी गौतम बुद्ध, ईसा मसीह और सत्यवीर सुकरात से तुलना की गई। गोपाल कृष्ण गोखले ने उनके बारे में 1919 में कहा था :

"उनसे अधिक वीर और शुद्ध आत्मा वाला व्यक्ति इस संसार में कभी नहीं हुआ। भारत और संसार के असंख्य स्त्री-पुरुषों के लिए महात्मा गांधी भारतीय परम्परा के श्रेष्ठ तत्त्वों के और जीवन को अहिंसामय बनाने की शाश्वत प्रेरणा के प्रतीक हैं।"

गांधी जी ने अपने सत्याग्रह सिद्धांत की कुछ बुनियादी बातें समय-समय पर अवश्य बताई पर उन्होंने इस सिद्धांत का पूरी तरह से निरूपण कभी नहीं किया। गांधी जी का कहना था कि राजनीति में अहिंसा एक नया शस्त्र है जिसका धीरे-धीरे

विकास हो रहा है। वे मानते थे कि सत्याग्रह का मेरा ज्ञान प्रतिदिन बढ़ रहा है। मेरे पास कोई पाठ्य पुस्तक नहीं है जिसे मैं आवश्यकता के समय देख लूं। मेरी धारणा का सत्याग्रह ऐसा विज्ञान है जिसका निर्माण हो रहा है।

गांधीवादी स्वतंत्रता आंदोलन की लोकप्रियता और सफलता का एक प्रधान कारण उनका अपना व्यक्तित्व था। यह व्यक्तित्व विराट और बहुमुखी था। गांधी जी राजनेता होने के साथ-साथ महान समाज-सुधारक, मौलिक शिक्षा शास्त्री, उच्च-कोटि के अर्थ-विशेषज्ञ, अत्यधिक मानवतावादी, निस्पृह संत तथा सबसे बढ़ कर साधक थे। उनकी व्यक्तिगत साधना ने उनके व्यक्तित्व को साधारण मानवीय धरातल से ऊपर उठाकर एक दैवी आभा से मंडित कर दिया था। गांधी जी के व्यक्तित्व की इस महत्ता को ध्यान में रख कर ही अल्बर्ट आइंस्टीन ने उनकी मृत्यु पर कहा था :

"आने वाली पीढ़ियां मुश्किल से ही यह विश्वास कर सकेंगी कि रक्त और मांस से निर्मित ऐसा कोई मनुष्य कभी पृथ्वी पर विचरण किया करता था।"

गांधी जी ने कांग्रेस को एक कार्यक्रम दिया, उस कार्यक्रम का दर्शन दिया, उस कार्यक्रम को लागू करने की पद्धति दी और सबसे बढ़ कर बात यह है कि कार्यकर्त्ताओं का एक ऐसा समूह तैयार किया जो चाहे उनके सिद्धांतों को पूरी तरह न स्वीकार करता हो, लेकिन फिर भी काफी हद तक उनकी उपयुक्तता का कायल था, उनके व्यक्तित्व के प्रति समर्पित था और देश की स्वतंत्रता के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानियां करने के लिए तैयार था। मोतीलाल नेहरु, सी० आर० दास, सरदार वल्लभ भाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू, डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य जे० बी० कृपलानी, सुभाषचन्द्र बोस, खान अब्दुल गफ्फार खां, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, कन्हैयालाल मणिक लाल मुंशी, सरोजनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर जैसे नेताओं ने गांधी जी के नेतृत्व में संचालित विविध आंदोलनों में भाग लिया और कांग्रेस के संदेश को घर-घर तक पहुंचा दिया। गांधी जी ने हर स्तर पर कार्यकर्त्ताओं की एक विशाल सेना तैयार की। ये कार्यकर्त्ता राष्ट्रीय स्तर पर भी थे, प्रांतीय स्तर पर भी थे और ग्राम स्तर पर भी थे। वे गांधी जी के तत्त्वज्ञान को समझते हों, न समझते हों, वे चुम्बक की डोर की तरह गांधी जी के व्यक्तित्व से बंध गए थे और उनके अंधभक्त थे। गांधी जी ने कांग्रेस के आंदोलन को जन आंदोलन बनाया, क्रांतिकारी आंदोलन बनाया और उसे एक ऐसे महासमुद्र का रूप दिया जिसमें अनेक प्रकार की विचारधाराओं के लोग शामिल थे। इस आंदोलन में धर्म, वर्ग, समाज के आधार पर कोई भेदभाव न था। यह आंदोलन समूचे भारत के लिए था।

क्रांतिकारी आंदोलन

राष्ट्रीय आंदोलन की एक प्रमुख धारा क्रांतिकारी आंदोलन की है। भारत में

क्रांतिकारी आंदोलन क्रमबद्ध रूप में 1905 में बंगाल विभाजन के दिनों में आरम्भ हुआ था। क्रांतिकारी आंदोलन के दो रूप थे। क्रांतिकारियों का एक गुट भारतीय सिपाहियों और अगर संभव हो तो अंग्रेजों की दुश्मन विदेशी शक्तियों की मदद से अंग्रेजों के साथ सशस्त्र लड़ाई करना चाहता था। दूसरे गुट का विचार था कि कुछ ब्रिटिश अफ़सरों की हत्या करके सरकारी मशीनरी को अस्त-व्यस्त कर दिया जाए। दोनों ही गुट देश के भीतर क्रांतिकारी भावना का प्रसार करना चाहते थे और हथियारों को इकट्ठा करने तथा युवकों को सैनिक शिक्षा देने के कार्यक्रम चलाते थे। इन कार्यक्रमों के संचालन में जो खर्च होता था, वह वे धनिकों से वसूल करते थे। राजनीतिक डकैतियां और राजनीतिक हत्याएं इन कार्यक्रमों का मुख्य अंग थीं।

क्रांतिकारी आंदोलन का पहला संगठन था– अनुशीलन समिति। इस संस्था की बंगाल के विभिन्न भागों में शाखाएं फैली हुई थीं और इसमें बड़ी संख्या में युवक शामिल हो गए थे। अरविंद घोष के छोटे भाई वरीन्दर कुमार घोष क्रांतिकारी आंदोलन के एक प्रमुख नेता थे। उन्होंने 1905 में *भवानी-मंदिर* नामक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें एक निर्जन स्थान पर क्रांतिकारियों के एक केंद्र को स्थापित करने की योजना दी गई थी। 1907 में उन्होंने *वर्तमान राजनीति* नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें सैनिक शिक्षा तथा गुरिल्ला युद्ध-प्रणाली की आवश्यकता का विवेचन किया गया था। 1906 से उन्होंने *युगांतर* नामक पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया। इस पत्र में क्रांतिकारी आंदोलन की गतिविधियों की चर्चा रहती थी। सरकार ने 1908 में इस पत्र को दबा दिया।

वरीन्दर घोष के गुट ने दो सदस्यों को बम बनाने का प्रशिक्षण दिया। कलकत्ते की मानकताला बस्ती में बम बनाए जाने लगे।

प्रफुल्ल चाकी और खुदी राम बोस ने 30 अप्रैल, 1906 को बिहार के मुज्जफरपुर नामक नगर में कैनेडी नामक ब्रिटिश अफसर की गाड़ी पर बम फेंका। प्रफुल्ल को गिरफ्तार कर लिया गया लेकिन उन्होंने खुद अपनी आत्महत्या कर ली। खुदी राम बोस पर मुकदमा चला और उन्हें फांसी की सज़ा दे दी गई। 2 मई, 1908 को क्रांतिकारियों के मानिकताला-स्थित बम बनाने के अड्डे पर छापा पड़ा। 34 व्यक्ति गिरफ्तार हुए। इनमें अरविंद घोष भी शामिल थे। जिन दिनों इन अभियुक्तों पर मुकदमा चल रहा था, मुकदमे से संबंधित पुलिस के दो अधिकारी अदालत में ही मार डाले गए। अभियुक्तों में से 15 को दोषी पाया गया। इनमें वरीन्द्र घोष भी शामिल थे। कुछ अभियुक्तों को देश निकाला दे दिया गया। अरविंद घोष छोड़ दिए गए।

वरीन्द्र घोष तथा उनके सहयोगियों की क्रांतिकारी गतिविधियों को उनके मुकदमे के कारण सारे देश में ख्याति मिली। उनका मुकदमा अलीपुर षड़यंत्र कांड के नाम से विख्यात हुआ। इस कांड के अभियुक्तों के प्रति सारे देश में सहानुभूति पैदा

हुई और वे देश की खातिर शहीद कहलाए। नरेन्द्र गोसाईं ने अभियुक्तों के रहस्य की जानकारी पुलिस को दी थी। कनाई-लाल दत्त और सत्येन बोस ने उसे जेल के भीतर ही मार डाला। बाद में कनाई लाल दत्त को फांसी लग गई।

1907 और 1917 के बीच क्रांतिकारियों ने 64 राजनीतिक हत्याएं कीं और दर्जनों डकैतियां डालीं।

क्रांतिकारी आंदोलन बंगाल के अतिरिक्त बिहार, उड़ीसा, पंजाब, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में भी फैला। बिहार में शचीन्द्र सान्याल, पंजाब में लाला हर दयाल, अजित सिंह और सूफी अम्बा प्रसाद, महाराष्ट्र में वी० डी० सावरकर और राजस्थान में अर्जुन लाल सेठी क्रांतिकारियों के नेता थे। भारत के बाहर यूरोप तथा अमरीका में भी भारतीय क्रांतिकारी सक्रिय थे। अमरीका में गदर पार्टी ने भारतीय स्वतंत्रता के संदेश को प्रचारित किया। अमरीका में क्रांतिकारी गतिविधियों के संदर्भ में पंजाब के बाबा गुरदेव सिंह के जापानी जहाज कोमागाता मारु की घटना उल्लेखनीय है। इस जहाज के यात्रियों को कनाडा में नहीं उतरने दिया गया और वापस कलकत्ते भेज दिया गया। कलकत्ते से उन्हें जबरन ट्रेन द्वारा पंजाब भेजने की कोशिश की गई। विरोध करने पर उनके ऊपर गोलियां चलाई गई जिसमें बहुत से आदमी मारे गए।

स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में क्रांतिकारियों का अपना स्थान है। क्रांतिकारियों ने अपने संगठन यूरोपीय देशों के क्रांतिकारी संगठनों के आधार पर बनाए थे। मदनलाल धींगरा, रासबिहारी घोष, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, श्याम जी कृष्ण वर्मा, राम प्रसाद बिस्मिल, रोशन लाल, अमीचंद, बालमुकुंद, अशफाकुल्ला, राजा महेन्द्र प्रताप, जतीन दास, सुखदेव आदि क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों को हथेली पर रख कर देश को आज़ाद कराने की कोशिश की। सुभाषचन्द्र बोस की आज़ाद हिंद फौज़ को भारत के इस क्रांतिकारी आंदोलन की परम्परा में देखा जा सकता है।

मुस्लिम सांप्रदायिकता

राष्ट्रीय आंदोलन की बढ़ती हुई धारा को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीय राजनीति में मुस्लिम सांप्रदायिकता का विष-वृक्ष बोया। सर सैयद अहमद खां, मौलाना मोहम्मद अली, मुहम्मद इकबाल और मुहम्मद अली जिन्ना मुस्लिम सांप्रदायिकता के पैरोकार थे।

महात्मा गांधी के अनुसार मुस्लिम सांप्रदायिकता भारत में अंग्रेजों के साथ ही आई। अंग्रेजों ने आरम्भ से ही भारतीयों को एक-दूसरे से लड़ाने की कोशिश की। अपने शासन के प्रथम चरण में अंग्रेजों ने उच्च वर्गों के हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त किया। उन्होंने मुसलमानों के प्रति दमन की नीति अपनाई। वे मुसलमानों को संदेह

की दृष्टि से देखते थे। उन्हें आशंका थी कि मुसलमान अपने खोए हुए साम्राज्य को फिर से स्थापित करने का सपना देखते हैं। सरकार ने अपने शक के कारण मुसलमानों को प्रशासन और फौज दोनों से बाहर रखा। इस नीति का फल था– मुसलमानों का सांस्कृतिक अध:पतन। 1857 की क्रांति के बाद ब्रिटिश सरकार की मुस्लिम विरोधी नीति पहले से भी ज्यादा स्पष्ट दिखाई देने लगी।

1870 के बाद मुसलमानों के प्रति अंग्रेजों का रवैया बदला। राष्ट्रीय आंदोलन के जन्म ने अंग्रेज हुक्मरानों को विवश कर दिया कि वे भारत की विभिन्न जातियों को आपस में लड़ाएं और इस तरह राष्ट्रीयता की शक्ति को कम करें। अलीगढ़ कालिज के पहले प्रिंसिपल बेक ने इस काम में सबसे बढ़ कर भाग लिया। सर सैयद अहमद खां को राष्ट्रीयता के मार्ग से सांप्रदायिकता के रास्ते पर चला देना मि० बेक का ही करिश्मा था। बेक की कोशिशों का यह नतीजा निकला कि सर सैयद अहमद खां ने कांग्रेस का विरोध किया और अपने प्रभाव से मुस्लिम समाज को राष्ट्रीय आंदोलन से अलग रखा। 1893 में सर सैयद अहमद खां ने मुस्लिम रक्षा परिषद की स्थापना की। मि० बेक इस परिषद के एक मंत्री थे। 1905 में सरकार ने बंगाल का विभाजन किया। सरकार की यह कार्यवाही मुस्लिम पृथक्ता को दृढ़ करने की दिशा में एक कदम था जो जान-बूझ कर उठाया गया था। सरकार ने मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व देकर उनकी पृथक्तावादी प्रवृत्ति को और बढ़ावा देने का निश्चय किया। इसके लिए वायसराय के निजी सचिव कर्नल डनलप स्मिथ ने अलीगढ़ कालिज के प्रिंसिपल आर्चिबोल्ड को पत्र लिखा कि वे वायसराय के पास मुसलमानों का एक शिष्टमंडल भेजें। इस योजना के अनुसार भारत के विभिन्न प्रांतों से आए 35 मुसलमानों के एक शिष्टमंडल ने अक्टूबर, 1906 में वायसराय से भेंट की और उनके सामने यह मांग रखी कि मुसलमानों को अलग से सांप्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व दिया जाए। वायसराय ने मुस्लिम शिष्टमंडल की यह मांग सहर्ष स्वीकार कर ली। इस शिष्टमंडल के नेता आगा खां थे। तत्कालीन भारत-मंत्री लार्ड मार्ले मुसलमानों को सांप्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व देने के विरुद्ध थे। वे संयुक्त निर्वाचनों और कुछ रक्षित स्थानों के पक्ष में थे। लेकिन लार्ड मिंटो ने लार्ड मार्ले से अपनी बात मनवा ली। 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। उसने पृथक्तवादी मांगों को चालू रखा। कांग्रेस के कई दूरदर्शी मुसलमानों के विरोध के बावजूद 1909 के मार्ले-मिंटो सुधारों के अंतर्गत भारत में साम्प्रदायिक निर्वाचनों को आरम्भ कर दिया गया।

अस्तु, मुस्लिम सांप्रदायिकता के जन्म और विकास के लिए मुख्य रूप से अंग्रेज़ उत्तरदायी थे। लेकिन यह भी ध्यान देने योग्य है कि अंग्रेजों को इस नीति में जो सफलता प्राप्त हुई, उसका एक प्रमुख कारण यह भी था कि ब्रिटिश शासन के अंतर्गत हिन्दुओं और मुसलमानों का एक-सा विकास नहीं हो सका। इससे मुसलमानों के मन

में आत्म-रक्षा की भावना जागृत हुई। ब्रिटिश शासकों ने मुसलमानों की इस भावना से लाभ उठाया और मुसलमानों को विशेष रियायतें देना शुरू कर दिया। उन्होंने मुसलमानों को समझाया कि अंग्रेजों और मुसलमानों के हित एक हैं। राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य देश में हिंदू राज की स्थापना करना है। इस राज में मुसलमानों की स्थिति दयनीय होगी। मुसलमानों को अंग्रेजों का साथ देना चाहिए। इसी में उनकी भलाई है।

हिंदू सांप्रदायिकता

मुस्लिम सांप्रदायिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदू सांप्रदायिकता का जन्म हुआ। वी० डी० सावरकर, मदनमोहन मालवीय, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, एम० एस० गोलवलकर और डॉ० हेडगेवार जैसे व्यक्तियों ने हिन्दू सांप्रदायिकता को सैद्धांतिक आधार दिया।

हिन्दू महासभा की स्थापना हिन्दुओं के हितों की रक्षा करने और हिन्दू समाज की कुरीतियों को दूर करने के लिए 1911 में हुई थी। हिन्दू महासभा की सबसे सनसनीखेज घटना शुद्धि आंदोलन था। इस आंदोलन का लक्ष्य यह था कि जो हिन्दू मुसलमान बन गए हैं, उन्हें फिर से हिन्दू बनाया जाए। 1923 में साढ़े चार लाख मलकाना राजपूतों को दुबारा हिन्दू बनाया गया।

साम्यवादी दल

1917 की रूसी क्रांति के बाद भारत में समाजवाद तथा साम्यवादी विचारधाराओं का प्रभाव बढ़ा। 1921 में एम० एन० राय तथा उनके कुछ सहयोगियों ने साम्यवादी दल को संगठित करने का प्रयास किया। उन्होंने मज़दूरों के संघ बनाए तथा उन्हें साम्यवाद के सिद्धांतों की शिक्षा दी। इन संघों को हड़तालों के लिए भड़काया गया। भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना के साथ-साथ बम्बई, बंगाल, पंजाब और उत्तरप्रदेश में मजदूरों और किसानों की पार्टियां बनीं। इन पार्टियों को मास्को से आर्थिक सहायता मिलती थी और उनकी नीति भी वहीं से निर्धारित होती थी। लेकिन एम० एन० राय तथा उनके साथियों को देश में साम्यवादी विचारधारा के प्रसार में विशेष सफलता नहीं मिली। दिसम्बर, 1926 में ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के फिलिप सम्राट भारत आए और उन्होंने भारतीय साम्यवादी दल को पुनर्गठित किया। उनके प्रयत्नों से साम्यवादियों की संख्या में विस्तार हुआ।

20 मार्च, 1929 को साम्यवादी दल के 31 सदस्य गिरफ्तार हुए और उन पर मेरठ में मुकदमा चला। यह घटना मेरठ षड़यंत्र कांड कहलाती है। अभियुक्तों पर देश में गुपचुप हिंसात्मक कार्यवाहियां करने और क्रांतिकारी षड़यंत्रों में भाग लेने का आरोप था। यह मुकदमा कई साल तक चला। जनवरी, 1933 में अदालत ने अपना फैसला सुनाया। 27 अभियुक्तों को दोषी पाया गया और उन्हें अलग-अलग सज़ा दी गई। राष्ट्रवादियों ने विशेष कर कांग्रेस पार्टी के नेताओं ने अभियुक्तों का साथ दिया।

जवाहरलाल नेहरू और कैलाशनाथ काटजू बचाव-पक्ष के वकीलों में थे। महात्मा गांधी तक ने जेल में जाकर कैदियों से भेंट की थी। सुभाषचन्द्र बोस भी मेरठ कांड के अभियुक्तों से कई बार मिले। 1935 में सभी अभियुक्तों को छोड़ दिया गया। मेरठ कांड के कारण साम्यवादी दल के पांव भारत की धरती पर मज़बूती से जम गए।

1934 में जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हुई। अनेक साम्यवादी तथा वामपक्षी नेता इस दल में शामिल हो गए। उन्होंने कांग्रेस समाजवादी दल पर अपना नियंत्रण स्थापित करने की कोशिश की। 1940 में उन्हें कांग्रेस समाजवादी दल से निकाल दिया गया। दूसरे विश्वयुद्ध के समय जब तक रूस मित्र देशों (ब्रिटेन, अमरीका, फ्रांस) के विरुद्ध था, साम्यवादियों ने मित्रदेशों का विरोध किया लेकिन जैसे ही रूस मित्र देशों के साथ मिल गया और उसने धुरी राष्ट्रों के साथ लड़ना शुरू किया, भारतीय साम्यवादी दल की नीति बदल गई और उसने भारत मे सरकार के युद्ध-प्रयत्नों में सहयोग देना आरम्भ किया। दल ने कांग्रेस पार्टी की आलोचना की। सरकार ने दल के ऊपर से प्रतिबंध हटा लिया। 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में साम्यवादियों ने सरकार की मदद की और हजारों कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को पकड़वाया। उन्होने आज़ाद हिंद फौज़ के सिपाहियों को देशद्रोही कहा था। जब 1945 में कांग्रेस के नेता जेल से छूटे, उन्होंने साम्यवादियों की दुरंगी चाल का भेद खोल दिया। साम्यवादी जनता की निगाह में बदनाम हो गए।

पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता

आज़ादी मिलने के बाद देश की सत्ता एक विशेष दल तथा कुछ व्यक्त्यिों के हाथों मे रही। शासन के सारे साधन सत्तारूढ़ दल तथा सत्तारूढ़ व्यक्तियों के कीर्तिगान में लग़ गए। उन्हें स्वतंत्रता-संग्राम का केन्द्रबिन्दु तथा नए भारत का भाग्य-विधाता करार दिया गया। यदि कहीं से उनके विरोध की आवाज़ उठी, तो वह दबा दी गई। सत्ता के मद में सरकार से अनेक भूलें हुई। इस स्थिति का एक घातक परिणाम यह हुआ कि स्वतंत्रता-संग्राम में जिन अन्य लोगों ने अपनी कुर्बानियां दी थीं, उन्हें भुलाने की या कम आंकने की कोशिश की गई।

अकेले व्यक्ति

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के साथ यही हुआ है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को उनकी देन अनुपम है। स्वतंत्रता-आंदोलन के इतिहास में वे अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने देश की सीमाओं से बाहर जाकर शत्रु के शत्रुओं से मित्रता की और युद्ध भूमि में लड़कर आजादी पाने का संकल्प प्रदर्शित किया। उन्हें विदेश-स्थित भारतीयों का पूरा सहयोग मिला। उनकी सेना में जाति या धर्म का कोई प्रश्न नहीं था। सभी हिन्दुस्तानी थे। सभी का एक लक्ष्य था- दिल्ली चलो।[3]

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के जन्म को 100 वर्ष,पूरे होने को आ रहे हैं। कृतज्ञ राष्ट्र उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है। नेताजी ने स्वतंत्र भारत का जो स्वप्न देखा था, वह स्वप्न अभी पूरा नहीं हुआ है। नेताजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यह होगी कि उनका स्वप्न पूरा किया जाए। भारत को विभाजित करने वाले जो तत्त्व हैं, उनका नाश किया जाए। नेताजी ने कहा था, "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।"[4] भारत को आज़ादी मिल चुकी है। पर उस आज़ादी को सहेज कर रखने की आवश्यकता है। आज़ादी के वटवृक्ष को सदा मानव-रक्त से सींचते रहने की आवश्यकता है।

दुस्साहसी योजना

जापानियों के सहयोग से भारतीय युद्धबंदियों की एक स्वतंत्र सेना का निर्माण और उसकी सहायता से भारत को आज़ाद कराने की योजना एक दुस्साहसी योजना थी। नेताजी के अदम्य आत्म-विश्वास और व्यक्तिगत शौर्य ने इस योजना को व्यावहारिक रूप अवश्य दिया लेकिन महायुद्ध की परिस्थिति के कारण उनके प्रयत्न सफल न हो सके।

1944 के बीच में युद्ध का पांसा पलटने लगा। दक्षिण-पूर्वी एशिया में जापान की विजय-यात्रा रुक गई। उसकी फौजों को भारत-बर्मा सीमांत छोड़कर दक्षिण प्रशांत की ओर हटना पड़ा। वहां उसे अमरीका के आक्रमण का सामना करना था। जापान का साया सर से हटने पर आज़ाद हिंद फौज़ की कमर टूट गई। उसे पीछे हटना पड़ा और 1945 के मध्य में उसने ब्रिटिश सेना के आगे आत्म-समर्पण कर दिया। 1944 में दक्षिण एशिया में मित्र राष्ट्रों ने अपनी ताकत बढ़ा ली और जापान को पीछे खदेड़ना शुरू कर दिया। आज़ाद हिंद फौज़ शाहनवाज़ के नेतृत्व में कोहिमा के निकट भारत की भूमि तक पहुंच गई थी। शाहनवाज़ ने वहां भारत का तिरंगा झंडा लहरा दिया। लेकिन आज़ाद हिंद फौज़ भारत की सीमा में थोड़े समय तक ही रह सकी। उसे जापान की ओर से पर्याप्त रसद नहीं मिली। उसके पास हथियारों की भी कमी थी। उनकी तुलना में मित्र राष्ट्रों की शक्ति और साधनों का कोई पार न था। विवश होकर उन्हें कोहिमा और इम्फाल का घेरा छोड़ना पड़ा। जापानी सेनापतियों ने आज़ाद हिंद फ़ौज़ को बराबरी का दर्जा नहीं दिया। लेकिन उनकी वीरता में अंग्रेजों तक को कोई संदेह नहीं था।

फ़ासिज़्म का उदय

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यूरोप के अनेक देशों में लोकतंत्र के भग्नावशेषों पर फासिज्म का उदय हुआ था। यह विचारधारा अधिनायकवाद का ही एक रूप है। इटली में मुसौलिनी ने 1919 में फासी दल की स्थापना की थी। इस दल का उद्देश्य था कि

राजसत्ता को हथिया कर उसका प्रयोग राष्ट्र के हित में किया जाए। 28 अक्तूबर, 1922 को इस दल ने रोम पर अधिकार कर लिया। इटली में फासिज्म 20 वर्षो तक चला। वहां इसका सक्रिय विरोध नहीं हुआ। जिस समय मुसौलिनी ने इटली में सत्ता ग्रहण की, देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दशा अस्थिर थी। मुसौलिनी ने इटली को सुख एवं समृद्धि के एक नए युग का वचन दिया था।

फ़ासिज़्म को केवल इटली या मुसौलिनी के साथ अभिन्न मानना उचित नही है। फासिज्म के समर्थकों का कहना था कि लोकतंत्र के अंदर कुछ ऐसी अंतर्निहित दुर्बलताएं होती हैं जिनसे फासिज्म को प्रोत्साहन मिलता है।

फ़ासिज़्म ने सबसे पहले 1922 में इटली में सत्ता प्राप्त की। 1933 में जर्मनी मे हिटलर सतारूढ़ हुआ। 1936 तक यूनान, बल्गेरिया, रुमानिया, पोलैंड, आस्ट्रिया और हंगरी ने फासिस्ट सिद्धांतों को अपना लिया।

फ़ासिज़्म एक दल और एक नेता की स्वेच्छाचारिता है। वह परम्परावाद और जातिवाद का समर्थक तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का विरोधी है। उसे लोकतंत्र, उदारवाद और समाजवाद से घृणा है। फासिस्टों की दृष्टि में राज्य सर्वेसर्वा है। फ़ासिज़्म साम्राज्यवादी है। वह उग्र रूप से राष्ट्रीय है।

नेताजी पर आरोप

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस पर उनके जीवन-काल में ही अनेक आरोप लगे थे। उनके ऊपर सबसे बड़ा आरोप यह था कि उनमें अधिनायकवाद की प्रवृत्तियां थीं, उनका हिंसा में विश्वास था और वे अपने सहयोगियों के साथ मिल-जुलकर काम नही कर सकते थे। वास्तव में सुभाष बोस राजनीतिक यथार्थवादी थे। उन्हें राजनीति और नैतिक प्रश्नों को मिलाना पसंद न था। वे राजनीति में शक्ति-सिद्धांत के समर्थक थे और उनका कहना था कि राजनीतिक सौदेबाज़ी का रहस्य इस बात में है कि आप जितने शक्तिशाली है, उससे कहीं अधिक शक्तिशाली दिखाई दें। सुभाष अपनी मांगें गिड़गिड़ा कर नहीं, बुलंद आवाज में प्रस्तुत करते थे। उन्हें गांधी जी की अहिंसा और विनम्रता की नीति मान्य न थी यद्यपि उनके मन में गांधी जी के प्रति पूरा सम्मान था। वे उनकी नीतियों के कठोर आलोचक थे। जिस समय भारतीय राजनीति में गांधी जी का वर्चस्व पूरी तरह स्थापित था, सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष-पद के लिए गांधी जी द्वारा समर्पित उम्मीदवार डॉ० पट्टाभि सीतारामय्या के विरोध में खड़े हुए थे और जीते थे। गांधी जी ने पट्टाभि सीतारामय्या की हार को अपनी हार बताया था।

सुभाषचन्द्र बोस पर फासिस्ट होने का आरोप लगाया गया है। सुभाष बोस अनुशासन-प्रिय अवश्य थे लेकिन वे न तो फासिस्टों की तरह साम्राज्यवादी थे और न सर्वाधिकारवादी। उनके ऊपर इस तरह के दोषारोपण का कारण बहुत कुछ ब्रिटिश

शासकों का प्रचार था। उनका धुरी शक्तियों से मिलना गलत था लेकिन उन्हें अंग्रेजों को भारत से निकालने का सबसे कारगर उपाय यही प्रतीत हुआ कि उनके दुश्मनों से सहायता ली जाए। जर्मनी और जापान को नेताजी से निबटने में काफी परेशानी होती थी क्योंकि वे किसी के हाथ की कठपुतली नहीं बन सके। उनकी निष्ठा भारत के प्रति थी और उन्होंने जापान से जो भी आर्थिक सहायता ली, वह ऋण के रूप में ली थी। उनका स्पष्ट आदेश था कि हिन्दुस्तान की जमीन पर हिन्दुस्तान की आज़ादी की लड़ाई हिन्दुस्तान की फौज और जनता लड़ेगी।[5]

श्रद्धांजलियां

सुभाष बोस का संपूर्ण जीवन तूफानी रहा था। भारत में उन्होंने अपनी कार्यक्षमता, प्रतिभा और बलिदान के बल पर राष्ट्रीय जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। जिन परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हुई, उनके कारण उनकी सारी त्रुटियों को लोग भूल गए और उन्हें समूचे राष्ट्र ने असख्य श्रद्धांजलियां अर्पित की हैं। उन्हें नैपोलियन कहा गया है। अंत में नैपोलियन भी पराजित हुआ था लेकिन इससे फ्रांस के और संसार के इतिहास में उसका महत्व कम नहीं हो जाता।

सुभाष बोस क्रांतिकारी होने के साथ ही रचनात्मक प्रतिभा के भी धनी थे। उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन के आरंभ में ही कलकत्ता कार्पोरेशन के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी का कार्यभार संभाला था। इस पद पर कार्य करते हुए उन्होंने जनता की भलाई के लिए अनेक उपयोगी कार्य किए थे। नेताजी ने आज़ाद हिंद फौज़ तथा आज़ाद हिंद सरकार का जिस ढंग से संगठन किया था, उसकी जापानी अफ़सरों तक ने मुक्तकंठ से सराहना की है। आज़ाद हिंद फौज़ के अफ़सर और सिपाही तो उन पर जान निछावर करने के लिए तैयार रहते थे। सुभाष बोस के हरिपुरा कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से दिए गए भाषण में आयोजन, उद्योगीकरण, विदेशी संबंधों, कृषि, शिक्षा, दल-व्यवस्था, भाषा, लिपि, और राष्ट्रीय सेना आदि के बारे में स्पष्ट विचार मिलते हैं।

नेताजी की मृत्यु के बाद उनके विरोधियों तक को गहरा खेद हुआ था। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद[6], जवाहरलाल नेहरू[7] खान अब्दुल गफ्फार खा[8], वल्लभ भाई पटेल[9], सरोजनी नायडू[10] तथा जी० बी० पंत[11] आदि नेताओं ने उनकी देशभक्ति तथा स्वाधीनता संग्राम में उनकी देन को सराहा था। वे स्वार्थहीन व्यक्ति थे। उन्होंने देश की आज़ादी के लिए बड़े से बड़ा खतरा सहा। मृत्यु का भय तो उन्हें छू तक नहीं गया था। लड़ाई के दौर में बम के गोले उनके बिल्कुल निकट फटे थे। वे युद्ध में शहीद होना चाहते थे। उन्होंने एक जापानी अफसर को वह स्थान तक दिखाया था, जहां वे अपनी मृत्यु चाहते थे।

सुभाष बोस देश की आत्मा बन गए थे। कई वर्षो तक देशवासियों को उनकी मृत्यु पर विश्वास नहीं हुआ था। बहुत से लोगों के मन में यह बात बनी रही थी कि नेताजी जीवित हैं और वे किसी न किसी दिन अवश्य प्रकट होंगे।

सुभाष बोस ने विदेशों से जो रेडियो प्रसारण दिए थे, उनमें देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। सुदूर पूर्व के प्रवासी भारतीयों और आज़ाद हिंद फौज़ के सामने दिए गए उनके भाषण आज भी प्रेरणा के स्रोत हैं। सुभाष बोस के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यही होगी कि वे स्वतंत्रता देवी के उपासक थे। उन्होंने स्वतंत्रता-देवी के चरणों में अपने जीवन का बलिदान किया।

सारांश

नेताजी सुभाष बोस भारतीय स्वतंत्रता-यज्ञ की उज्जवलतम दीपशिखा और पवित्रतम आहुति थे। नेताजी ने देश की खातिर देश से हजारों मील की दूरी पर अपने प्राणों की बलि दी। वे मर कर भी अमर हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति नेताजी की देन को समझने के लिए स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास और उसकी विविध धाराओं पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

नेताजी मानते थे कि भारत ने पूरी तरह से अंग्रेजों के सामने अपनी पराजय कभी स्वीकार नहीं की। देश के किसी न किसी भाग में विद्रोह की ज्वाला सुलगती ही रही। 1757 के प्लासी युद्ध में अपने सगे-संबंधियों तथा अफसरों के विश्वासघात के कारण बंगाल के अंतिम स्वतंत्र शासक नवाब सिराजुद्दौला क्लाइव के नेतृत्व में थोड़े से सैनिकों के हाथों पराजित हुए। 1757 से 1857 तक देश के विभिन्न भागों में अनेक छोटे-मोटे विद्रोह हुए पर वे दबा दिए गए।

जहां 1857 से पहले के विद्रोह स्थानीय आधार पर थे, 1857 की क्रांति का फलक व्यापक था। इस क्रांति की लपटें प्राय : समूचे उत्तर भारत में फैलीं। दुर्भाग्य से भारत का यह पहला स्वतंत्रता आंदोलन भी विफल हुआ।

राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धाराएं थीं– उदारवाद, उग्रवाद, गांधीवाद, क्रांतिकारी आंदोलन।

राष्ट्रीय आंदोलन की बढ़ती हुई धारा को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता का विष वृक्ष बोया। 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। मुस्लिम सांप्रदायिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंदू सांप्रदायिकता का जन्म हुआ।

1917 की रूसी क्रांति के बाद भारत में समाजवाद तथा साम्यवादी विचारधाराओं का प्रभाव बढ़ा। 1926 में ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी के फिलिप सम्राट ने भारतीय साम्यवादी दल का पुनर्गठन किया। मेरठ षड़यंत्र कांड में इस दल के अनेक सदस्य थे।

1934 में जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में कांग्रेस समाजवादी दल बना।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय साम्यवादी दल ने ब्रिटिश सरकार की मदद की। आज़ादी मिलने के बाद देश की सत्ता एक विशेष दल तथा कुछ विशेष व्यक्तियों के हाथों में रही। सत्तासीन दल तथा व्यक्तियों ने आज़ादी की लड़ाई का सारा श्रेय खुद लिया तथा स्वतंत्रता संग्राम में जिन अन्य लोगों ने अपनी कुर्बानियां दी थीं, उनके महत्व को भुलाने की या कम आंकने की कोशिश की गई।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रति नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की अनुपम देन को कम करके आंका गया है। स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में वे अकेले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने देश की सीमाओं से बाहर जाकर शत्रु के शत्रुओं से मित्रता की और युद्धभूमि में लड़ कर आज़ादी पाने का संकल्प प्रदर्शित किया।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने स्वतंत्र भारत का जो स्वप्न देखा था, वह पूरा नहीं हुआ है। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यह होगी कि उनका स्वप्न पूरा किया जाए।

नेताजी पर फासिस्ट होने का आरोप लगाया गया है। वे प्रचंड देशभक्त और अनुशासन प्रिय व्यक्ति थे। वे किसी विदेशी ताकत के हाथों की कठपुतली नहीं बने। वे राजनीतिक यथार्थवादी थे।

नेताजी की मृत्यु पर उनके विरोधियों तक को खेद हुआ था। आज भारतीय स्वतंत्रता के मंदिर में जिन अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं, उनमें नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की भी एक मूर्ति है।

संदर्भ और पाद-टिप्पणियां

1. "The way of the Samurai is found in death. When it comes to either/or, there is only the quick choice of death... Be determined and advance. To say that dying without reaching one's aim is to die a dog's death is the frivolous way of sophisticaties. When pressed with the choice of life or death, it is not necessary to gain one's aim." Yamamoto Tsunetomo, *Hagapure, the Book of the Samurai,* New York, 1979, p. 17

2. "...There, in the distance, beyond that river, beyond those jungles, beyond those hills, lies the promised land—the soil from which we sprang...the land to which we shall now return. Hark! India is calling ... Blood is calling to blood. Get up, we have no time to lose. Take up your arms ... we shall carve our way through the enemy's ranks, or if God wills, we shall die a martyr's death."

   —**Subhash Chandra Bose**

3. "WITH THE SLOGAN 'Onward to Delhi' on our lips, let us continue to fight till our National Flag flies over the Viceroy's House

in New Delhi, and the Ajad Hind Fouj holds its Victory Parade inside the ancient Red Fortress."

—**Subhash Chandra Bose**

4. "MY COMRADES in the war of liberation ! Today I demand of you one thing above all. I demand of you blood. It is blood alone that can avenge the blood that enemy has split. It is blood alone that can pay the price of freedom. Give me blood and I promise you freedom."

—**Subhash Chandra Bose**

5. अमरीकी विद्वान लिओनार्ड ए० गोर्डन ने *Brothers Against the Raj : A Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose* नामक पुस्तक में इस आरोप पर कि नेताजी फासिस्ट थे या नहीं, विचार किया है। उनका निष्कर्ष है कि नेताजी के सारे प्रयत्न स्वतंत्र थे– जर्मनी में भी और जापान में भी। उनके शब्दों मे :

"Subhash Bose's talk of a synthesis between fascism and communism leading to a new ideology for India confused and irritated other leftists. Then he actually went and sat across the table from Hitler and other Nazis. Did this make him a fascist ? A Nazi collaborator? An enemy of the left in India and worldwide? Subhas Bose was a pragmatic Indian nationalist, not a socialist ideologue. He was searching desperately for the means to free India from the British Raj. He never believed that the British would leave peacefully. Therefore, he allied with countries like Germany and the Japan in order to fight the British. Throughout these war years, 1941 to 1945, he never claimed to be representing the Congress, but stepped forward as a leading nationalist. He resisted German or Japanese attempts to 'use' him. He certainly would never agree to be any one's puppet. But he would take temporary support from any power in order to free India. He borrowed money in the name of India that he tried to pay back. To most German and Japanese officials, he was someone to be 'used'. So there was a tug-of-war going on between Bose and his 'allies'. He thought of his work and his operations in Germany and Southest Asia as independent, Indian nationalist efforts. The way in which the Indian public and most Indian Political organizations rallied to the support of the INA in 1945 makes clear that few Indians believed that he was a pawn of the Axis Powers."

6. THE DEATH OF Subhas Chandra Bose was a great calamity to the country. Such men are seldom born and when they go away, the gap that they leave is not easily filled. Anyhow, we have to

bear the loss. But all of us have to learn many lessons from his life. The objective for which Bose sacrificed a bright life and promising career has not been achieved. That would need laying down the lives of many of us and we must be prepared for such sacrifice and service. Our nation needs that.

—Rajendra Prasad.

7. I AM SHOCKED TO RECEIVE the news about the old and brave comrade of mine who bore the same proportion of love for India as any other countryman. Since 1920 I had the privilege of coming in close contact with this great son of India, and I always had great regard for him in spite of our mutual differences on many occasions. Whatever may be the case, I never doubted his sincerity of purpose and his unbounded love for India ... A mixed feeling of the deepest sorrow and relief envelopes my soul for the present—sorrow because the great selfless leader has passed away, and relief because the brave man met with a brave and sudden death. I earnestly pray that the departed soul may rest in peace for ever.

—Jawaharlal Nehru.

8. WE WORKED TOGETHER as members of the Congress Working Committee, and in spite of differences on many things, I have great regard for all he did for the welfare and betterment of India.

—Abdul Gaffar Khan.

9. THE TRAGIC END of an eventful life of one of the bravest and foremost patriots of India, Subhas Chandra Bose, will be mourned deeply by all throughout the country. There was nothing that he did not sacrifice in the struggle for freedom. There can be no doubt that in making his alliance with Japan, he was moved by the highest impulse of patriotism, coupled with a sense of frustration. Equally, there can be no doubt that it was an act of misguided patriotism. It was a grievous mistake to have thought that Japan would help India out of any higher of unselfish motives.

—Vallabhbhai Patel.

10. SUBHAS IS DEAD. The last tragic scene has been enacted in the many-coloured drama of his strange and crowded life. To myriads of men and women, who loved him, his death is more than a great national loss — it is a deep personal bereavement. Those of us who dissented from him much strongly in his approach to some of the vital political issues, and deplored more keenly his unwise and unfortunate decision to seek the aid of Farcist Europe and Imperialistic Japan to set India free, also realised most clearly that he was

driven to his desperate and calamitous action by his implacable hatred of India's bondage and his overwhelming passion to achieve her independence. His proud, importunate and violent spirit was a flaming sword, forever unsheathed in defence of the land he worshipped with such surpassing devotion. His death and his life were both a dedication to the ideal of liberty. A greater love hath no man than this, that he lay down his life for his country and his people.

—Sarojini Naidu.

11. The dauntless spirit, and the fervour which he lent to the Freedom struggle will always remain enshrined in the history of the glorious fight that the country fought against foreign domination. Netaji had a superb organizing capacity and an indomitable will to pursue his goal, that most adverse circumstances notwithstanding. I wish the Commemoration Volume to be published by the Overseas Publishing House all success.

—G. B. Pant.

परिशिष्ट-I

मुख्य तिथियां और घटनाएं

1897

23 जनवरी, 1897 । सुभाष बोस का जन्म-दिन शनिवार, 23 जनवरी, 1897। स्थान कटक, उड़ीसा। उनके पिता जानकीनाथ बोस तथा माता प्रभावती। उनके 14 भाई-बहिन थे। वे अपने माता-पिता के छठे पुत्र और नवीं संतान थे।

1901

1901. सुभाषचन्द्र बोस के पिता जानकीनाथ बोस कटक नगरपालिका के पहले गैर-सरकारी अध्यक्ष निर्वाचित।

1902

1902. स्वामी विवेकानन्द की मृत्यु।

जनवरी, 1902. सुभाष बोस की आयु पांच वर्ष। उन्हें प्रोटेस्टैंट यूरोपियन स्कूल (पी०ई० स्कूल) में भर्ती कराया। वे 1902 से 1908 तक इस विद्यालय में पढ़े।

1905

1905-1910. लार्ड मिंटो भारत के वायसराय।

1905. सुभाष बोस के पिता जानकी नाथ बोस सरकारी वकील और पब्लिक प्रोसीक्यूटर के पद पर नियुक्त।

1905. बंगाल का विभाजन।

1905. स्वदेशी आंदोलन आरंभ। अंग्रेजी सामान का बहिष्कार। राजनीतिक अशांति और उग्र राष्ट्रवाद का उदय।

1905. जापान की रूस पर विजय। एशिया में राष्ट्रवाद की लहर।

1906

1906. मुस्लिम लीग की स्थापना।

1907

1907. बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन आरंभ। कांग्रेस में फूट (सूरत विच्छेद)।

1908

1908. अरविन्द घोष देश के प्रमुख राजनीतिक नेता।

1909

जनवरी, 1909. सुभाष ने पी० ई० स्कूल से विदा ली और वे रैवेन्शॉ कालिजिएट स्कूल, कटक में दाखिल हुए।

1909. अरविन्द घोष का राजनीति से सन्यास।

1909. मार्ले-मिंटो सुधार लागू। इस व्यवस्था के अंतर्गत गवर्नर जनरल की कार्यकारी और विधायी परिषदों का विस्तार। मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन। यह भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता का आरंभ था।

1911

1911. सम्राट् जार्ज पंचम तथा उनकी पत्नी का भारत आगमन। दिल्ली दरबार। सम्राट जार्ज पंचम का राज्याभिषेक। बंगाल का विभाजन रद्द। भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली स्थानांतरित। सम्राट जार्ज पंचम ने 15 नवंबर, 1911 को नई दिल्ली की नींव रखी।

1912

1912. सुभाष बोस के पिता जानकीनाथ बोस बंगाल विधान परिषद के सदस्य बने। उन्हें राय बहादुर की उपाधि दी गई।

1912. सुभाष बोस का जागृति समाज से परिचय। इस संस्था का उद्देश्य लोगों का आध्यात्मिक उत्थान करना और उन्हें समाज-सेवा में प्रवृत्त करना था।

1912. सुभाष बोस की आयु 15 वर्ष। उनका स्वामी विवेकानंद के साहित्य से परिचय। स्वामीजी के विचारों का सुभाष के चिंतन पर स्थायी प्रभाव।

1913

1. सुभाष बोस ने मार्च, 1913 में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास की और वे सारे विश्वविद्यालय में दूसरे स्थान पर आए।

2. सुभाष बोस ने कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालिज में दाखिला लिया। इस समय उनकी आयु 16 वर्ष थी।

1914

1914-1918. प्रथम विश्वयुद्ध 4 अगस्त, 1914 को आरम्भ और 11 नवंबर, 1918 को समाप्त।

1914. सुभाष बोस द्वारा गुरु की खोज में उत्तर भारत के तीर्थ स्थलों– हरिद्वार, वृंदावन, मथुरा, गया, बनारस– की यात्रा। यह यात्रा दो महीने तक चली।

दिसम्बर, 1914. महात्मा गांधी की दक्षिण अफ्रीका से वापसी।

1915

1915. इंटरमीडिएट परीक्षा में प्रथम श्रेणी। बी० ए० में दर्शन शास्त्र का अध्ययन।

1916

1916-1921. लार्ड चेम्सफोर्ड भारत के वायसराय।

जनवरी, 1916. सुभाष बोस एक अध्यापक से मार-पीट करने और कालिज में हड़ताल कराने के अपराध में निष्कासित कर दिए गए। इस समय सुभाष की आयु 19 वर्ष थी।

1916. कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन। उदारवादियों और उग्रवादियों में समझौता। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता।

1916-1917. होमरूल आंदोलन।

1917

1917. रूस में बोल्शेविक क्रांति। ज़ार की हत्या और लेनिन का सत्तारोहण।

1917. सुभाष बोस के पिता जानकीनाथ बोस ने सरकारी वकील और पब्लिक प्रोसेक्यूटर के पद से इस्तीफा दिया।

1917. गांधी जी द्वारा चंपारन सत्याग्रह का सफलतापूर्वक संचालन।

1917. जुलाई 1917 में सुभाष ने कलकत्ते के स्काटिश चर्च कालिज में दाखिला लिया।

1917. प्रादेशिक सेना में प्रवेश।

1917. भारत मंत्री लार्ड मोंटेग्यू की भारत के भावी सांविधानिक विकास के बारे में घोषणा।

1917. श्रीमती एनी बीसेंट द्वारा कांग्रेस की अध्यक्षता।

1918

1918. उदारवादियों द्वारा कांग्रेस से निकलकर आल इंडिया लिबरल फेडरेशन की स्थापना।

1918. गांधी जी द्वारा अहमदाबाद के कपडा-मिलों के मालिकों और मजदूरों के बीच समझौता।

1918. मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन की घोषणा।

1918. गांधी जी द्वारा गुजरात में खेड़ा के किसानों के पक्ष में सफलतापूर्वक

सत्याग्रह।

1919

1919. इटली में मुसोलिनी द्वारा फासिस्ट पार्टी की स्थापना।

1919. सुभाष बोस ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० परीक्षा पास की। समूचे विश्वविद्यालय की योग्यता-सूची में दूसरे स्थान पर।

18 मार्च, 1919. रौलट एक्ट पास।

28 जून, 1919. वर्साय संधि पर हस्ताक्षर।

15 सितम्बर, 1919. सुभाष चन्द्र बोस आई० सी० एस० की परीक्षा के लिए इंग्लैंड रवाना।

25 अक्तूबर, 1919. सुभाष चन्द्र बोस लंदन पहुंचे। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय मे दाखिला। इंडियन मजलिस और यूनियन सोसायटी की गतिविधियों में सक्रिय भाग।

नवंबर, 1919. दिल्ली में गांधी जी के मार्गदर्शन में खिलाफत सम्मेलन।

1919. भारतीय शासन अधिनियम, 1919 पारित।

13 अप्रैल, 1919. जलियांवाला बाग दुर्घटना।

दिसम्बर, 1919. कांग्रेस का अमृतसर अधिवेशन।

1920

10 जनवरी, 1920. लीग आफ नेशन्स की स्थापना।

1920. तुर्की में मुस्तफा कमाल पाशा का उत्कर्ष।

1 अगस्त, 1920. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु।

जुलाई, 1920. आई० सी० एस० की परीक्षा दी।

सितम्बर, 1920 आई० सी० एस० परीक्षा का परिणाम घोषित। सुभाष चौथे स्थान पर।

सितम्बर, 1920. कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन।

1920. आल इडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना।

दिसम्बर, 1920. नागपुर में कांग्रेस का नियमित वार्षिक अधिवेशन। श्री विजयराघवाचारी अध्यक्ष। कांग्रेस सविधान में संशोधन। गांधी जी का असहयोग कार्यक्रम स्वीकृत। भारतीय राजनीति में गांधी युग का उन्मेष। सी० आर० दास, पंडित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, विट्ठलभाई पटेल, वल्लभ भाई पटेल, एन० सी० केलकर, डॉ० मुंजे, डॉ०

अभ्यंकर, राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आजाद, सी० राजगोपालाचारी, ए० रंगस्वामी आयंगर, सत्यमूर्ति, प्रकाशम, मौलाना मोहम्मद अली, मौलाना शौकत अली, डॉ० अंसारी नए नेता।

1921

1921-1926. भारत में लार्ड रिपन वायसराय।

1921. स्वतंत्र आयरलैंड राज्य का उदय।

1921. प्रिंस आफ वेल्स की भारत-यात्रा।

1921. असहयोग आंदोलन आरंभ।

22 अप्रैल, 1921. सुभाष बोस द्वारा आई० सी० एस० से इस्तीफा।

16 जुलाई, 1921. सुभाष बोस लंदन में इंडियन सिविल सर्विस से इस्तीफा देने के बाद 16 जुलाई, 1921 को बम्बई पहुंचे। उसी दिन उनकी गांधीजी से मुलाकात।

1921. सुभाष बोस की कलकत्ते में सी० आर० दास से भेंट। सुभाष को लगा कि उन्हें नेता मिल गया है।

दिसम्बर, 1921. सुभाष बोस गिरफ्तार।

1922

1922. तुर्की में मुस्तफा कमाल अतातुर्क द्वारा सत्ता-ग्रहण। तुर्की का आधुनिकीकरण।

1922. मुसोलिनी का रोम अभियान। इटली में फासिस्ट शासन की स्थापना।

4 फरवरी, 1922. उत्तर प्रदेश में चौरी-चौरा कांड। गांव के लोगों ने थाने में आग लगा दी जिसमें कुछ सिपाहियों की मृत्यु हो गई। गांधी जी द्वारा असहयोग आंदोलन स्थगित।

10 मार्च, 1922. गांधी जी गिरफ्तार। उन पर ब्रिटिश न्यायाधीश ब्रूमफील्ड द्वारा राजद्रोह के लिए मुकदमा। गांधी जी ने अपने वक्तव्य में बताया कि वे राजभक्त से राजद्रोही कैसे बने। न्यायाधीश ने उन्हें छह वर्ष के कारावास का दंड दिया।

मई, 1922. चिरगांव में बंगाल प्रांतीय कांग्रेस का अधिवेशन। श्रीमती सी० आर० दास अध्यक्ष।

सितम्बर, 1922. बंगाल में भीषण बाढ़। सुभाष की बाढ़ राहत कार्यों में सक्रिय भूमिका।

अक्तूबर, 1922. इंगलैंड में आम निर्वाचन। मिली-जुली सरकार का पतन और

अनुदार दल की सरकार सत्तारूढ़।

दिसम्बर, 1922. गया कांग्रेस। सी० आर० दास अध्यक्ष।

1923

1923. स्पेन में जनरल प्राइमो डी रेवेरा के नेतृतव में अधिनायकवाद की स्थापना।

1923. सी० आर० दास द्वारा *फारवर्ड* पत्र का प्रकाशन आरम्भ।

मार्च, 1923. इलाहाबाद में स्वराज दल की पहली बैठक।

सितम्बर, 1923. दिल्ली मे कांग्रेस का विशेष अधिवेशन। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित। स्वराजवादियों तथा अपरिवर्तनवादियों के बीच समझौता। समझौते के अनुसार कांग्रेस के लोग आगामी निर्वाचनों में भाग लेकर विधानमंडलों में जा सकते थे और वहां सरकार का विरोध कर सकते थे।

1924

1924. रैमजे़ मैकडानल्ड के नेतृत्व में इंगलैंड में पहली श्रमिक सरकार।

1924. सुभाष बोस कलकत्ता म्युनिसिपल कार्पोरेशन के चीफ ऐक्जे़क्यूटिव आफिसर नियुक्त। इस समय उनकी आयु 27 वर्ष थी।

फरवरी, 1924. गांधी-दास समझौता। इस समझौते में तय हुआ कि गांधी जी रचनातमक कार्यो को करेंगे और स्वराजवादी राजनीतिक कार्यो को। दिसम्बर 1924 में बेलगाम कांग्रेस ने इस समझौते की पुष्टि की।

मार्च 1924. मुस्तफा कमाल पाशा द्वारा खलीफा के पद की समाप्ति।

21 जून, 1924. लेनिन की मृत्यु। स्टालिन द्वारा सत्ता ग्रहण।

25 अक्तूबर, 1924. सुभाष चन्द्र बोस गिरफ्तार।

1925

1925. कानपुर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन। श्रीमती सरोजिनी नायडू कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित।

25 जनवरी, 1925. सुभाष बोस मांडले (बर्मा) की जेल में स्थानांतरित। वे मई, 1927 तक बर्मा की कई जेलों में रखे गए। 16 मई, 1927 को उन्हें रिहा कर दिया गया।

फरवरी, 1925. सुभाष बोस तथा उनके अन्य सहयोगियों द्वारा मांडले जेल में भूख हड़ताल। यह हड़ताल 15 दिन तक चली और सरकार ने हड़तालियों की मांगें स्वीकार कर लीं।

16 जून, 1925. सी० आर० दास की मृत्यु।

6 जुलाई, 1925. मांडले सेंट्रल जेल, बर्मा से सुभाष चन्द्र बोस तथा उनके कुछ अन्य बंदी सहयोगियों द्वारा स्वर्गीय सी० आर० दास की धर्मपत्नी श्रीमती बासंती देवी को संवेदना का एक मार्मिक पत्र।

10 जुलाई, 1925. मांडले सेंट्रल जेल, बर्मा से सुभाष चन्द्र बोस का श्रीमती सी० आर० दास को संवेदना का दूसरा हृदयस्पर्शी पत्र।

1926

1926-1931. लार्ड इर्विन भारत के वायसराय।

1926. गोहाटी में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन। श्रीनिवास आयंगर कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित।

1926. सुभाष बोस मांडले जेल में रहते हुए भी बंगाल विधान परिषद के लिए कलकत्ता निर्वाचन-क्षेत्र से विजयी। उनके चुनाव अभियान का सारा संचालन उनके बड़े भाई शरतचन्द्र बोस ने किया।

1927

नवंबर, 1927. कलकत्ते में श्रीनिवास आयंगर की अध्यक्षता में एकता सम्मेलन।

नवंबर, 1927. वायसराय लार्ड इर्विन द्वारा भारतीय संविधि आयोग (इंडियन स्टेट्युटरी कमीशन) की नियुक्ति की घोषणा।

नवंबर, 1927. बंगाल कांग्रेस कमेटी की वार्षिक बैठक। सुभाष बोस अध्यक्ष निर्वाचित।

नवंबर, 1927. भारत-मंत्री लार्ड बर्केनहेड द्वारा राजनीतिज्ञों को चुनौती कि वे भारत के लिए एक सर्वसम्मत संविधान प्रस्तुत करें।

दिसंबर, 1927. मद्रास में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन। दिल्ली के राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता डॉ० एम० ए० अन्सारी अध्यक्ष। सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू और शुआब कुरेशी कांग्रेस के महासचिव नियुक्त।

1928

फरवरी, 1928. साइमन कमीशन का भारत आगमन। उसका सभी दलों द्वारा बहिष्कार।

मई, 1928. सुभाष बोस की साबरमती आश्रम, अहमदाबाद में महात्मा गांधी से भेंट।

1928. लाला लाजपत राय की मृत्यु।

1928. नेहरू कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित। इसमें भारत के भावी संविधान की रूपरेखा दी गई थी। सुभाष बोस नेहरू कमेटी के एक सदस्य थे।

मई, 1928. सुभाष द्वारा महाराष्ट्र प्रांतीय सम्मेलन की अध्यक्षता।

1928. सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृतव में बारदोली सत्याग्रह की सफलता।

1928. सुभाष बोस द्वारा जमशेदपुर में टाटा आयरन एंड स्टील वर्क्स के मजदूरों की हड़ताल का नेतृत्व। इस हड़ताल ने सुभाष को मजदूर आंदोलन का परिचय दिया।

1928. इंडियन नेशनल कांग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन। पंडित मोतीलाल नेहरू अध्यक्ष। सुभाष बोस द्वारा सैनिक साज-सज्जा में अधिवेशन का आयोजन।

1929

1929. कलकत्ते में सुभाष बोस गिरफ्तार।

13 सितम्बर, 1929. जतीन्द्रनाथ दास की भूख-हड़ताल में लाहौर जेल मे मृत्यु। मृत्यु के समय जतीनदास की आयु 25 वर्ष थी।

सितम्बर, 1929. लाहौर में प्रथम पंजाब विद्यार्थी सम्मेलन। इस सम्मेलन की अध्यक्षता सुभाषचन्द्र बोस ने की।

नवंबर, 1929. नागपुर में मध्य प्रांत तरुण सम्मेलन। इसकी अध्यक्षता सुभाष बोस ने की। इसके कुछ समय बाद अमरावती में बरार विद्यार्थी सम्मेलन हुआ। इसकी अध्यक्षता भी सुभाष बोस ने की।

नवंबर, 1929. दिल्ली में सर्वदलीय सम्मेलन। सम्मेलन ने बहुमत से घोषणा-पत्र जारी किया कि भारत के लिए डोमीनियन संविधान बनाने में ब्रिटिश सरकार की मदद की जाए। डॉ० एस० किचलू(लाहौर), श्री अब्दुल बारी(पटना) और सुभाषचन्द्र बोस ने इस घोषणा-पत्र का विरोध किया।

नवंबर, 1929. बंगाल कांग्रेस कमेटी का वार्षिक अधिवेशन। बंगाल कांग्रेस में दो गुट। एक के नेता सेनगुप्ता तथा दूसरे के सुभाष बोस। सुभाषचन्द्र बोस का गुट विजयी। सेनगुप्ता महात्मा गांधी के समर्थक। सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस के वामपक्ष के साथ।

1929. लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास।

दिसम्बर, 1929. लाहौर में जवाहर नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन। पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास।

सुभाषचन्द्र बोस ने प्रस्ताव पेश किया कि कांग्रेस देश में समानांतर सरकार स्थापित करे और इसके लिए मजदूरों, किसानों तथा नौजवानों को संगठित करें। प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

महात्मा गांधी के विरोध के कारण सुभाष बोस कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य नहीं [illegible]।

1930

26 जनवरी, 1930. 26 जनवरी स्वतंत्रता-दिवस के रूप में आयोजित। हर मंच से कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा स्वीकृत घोषणा-पत्र पढ़ा गया।

30 जनवरी, 1930. महात्मा गांधी के ग्यारह सूत्र।

27 फरवरी, 1930. महात्मा गांधी द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन की घोषणा।

12 मार्च, 1930. महात्मा गांधी की दांडी-यात्रा आरंभ।

6 अप्रैल, 1930. दांडी में महात्मा गांधी द्वारा समुद्र के पानी से नमक का निर्माण। सारे देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ।

अप्रैल, 1930. कलकत्ते की अलीपुर सेंट्रल जेल में पुलिस द्वारा कैदियों पर प्रहार। इस हमले में सुभाषचन्द्र बोस घायल और बेहोश।

5 मई, 1930. गांधी जी गिरफ्तार।

1930. सुभाष बोस कलकत्ता म्युनिसिपल कार्पोरेशन के मेयर निर्वाचित। उन्होंने जे० एम० सेनगुप्ता को पराजित किया।

12 नवंबर, 1930. लंदन में गोलमेज़ सम्मेलन का पहला अधिवेशन आरंभ। यह अधिवेशन 19 जनवरी, 1931 तक चला।

1930. श्रीनिवास आयंगर का सक्रिय राजनीति से सन्यास।

1930. सुभाष बोस के पिता जानकीनाथ बोस ने रायबहादुर की उपाधि त्याग दी। उन्होंने यह कदम ब्रिटिश सरकार की दमन-नीति के विरोध में उठाया।

1931

1931-1936. लार्ड विलिंगडन भारत के वायसराय।

26 जनवरी, 1931. सुभाष बोस कलकत्ते में शांतिपूर्ण जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। जलूस पर पुलिस द्वारा लाठी चार्ज। सुभाष तथा उनके कई सहयोगी घायल। इस समय सुभाष बोस कलकत्ते के मेयर थे। अगले दिन अर्थात् 27 जनवरी, 1931 को सुभाष बोस को छह महीने का कारावास।

5 मार्च, 1931. गांधी-इर्विन समझौता। इस समय सुभाष बोस कलकत्ते की अलीपुर सेंट्रल जेल में थे।

8 मार्च 1931. सुभाष बोस जेल से रिहा।

रिहाई के बाद सुभाष बोस सीधे महात्मा गांधी से मिलने बम्बई गए और वहां से उनके साथ ही ट्रेन से दिल्ली आए।

23 मार्च, 1931. सरदार भगतसिंह को फांसी।

26 मार्च, 1931. सुभाष बोस द्वारा वक्तव्य जारी कि कांग्रेस का वामपक्ष

गांधी-इर्विन समझौते के विरुद्ध है।

मार्च, 1931. अखिल भारतीय नौजवान सभा का कराची में अधिवेशन। सुभाषचन्द्र बोस द्वारा अध्यक्षता। सुभाष बोस द्वारा गांधी-इर्विन समझौते की आलोचना।

मार्च, 1931. पंडित मोतीलाल नेहरू की मृत्यु।

2 अप्रैल 1931. कांग्रेस कार्यसमिति ने महात्मा गांधी को लंदन में होने वाले दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन के लिए कांग्रेस का एकमात्र प्रतिनिधि चुना।

मई, 1931. उत्तर प्रदेश की प्रांतीय नौजवान भारत सभा का मथुरा में अधिवेशन। सुभाष बोस द्वारा अध्यक्षता। सभा ने गांधी-इर्विन समझौते की निंदा की।

जुलाई, 1931. आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस का कलकत्ते में अधिवेशन। सुभाष बोस द्वारा अध्यक्षता। सभा द्वारा गांधी-इर्विन समझौते की निंदा।

सितम्बर, 1931. महात्मा गांधी 12 सितम्बर, 1931 से 1 दिसम्बर, 1931 तक लंदन में रहे और उन्होंने दूसरे गोलमेज़ सम्मेलन में भाग लिया। सम्मेलन में गांधी जी ने 12 बार भाषण दिए। सुभाष बोस के अनुसार गांधी जी पूरी तैयारी के साथ गोलमेज़ सम्मेलन में नहीं गए थे और इसलिए वे सम्मेलन से भारत के लिए कोई ठोस लाभ न पा सके।

22 दिसम्बर, 1931. पूना मे महाराष्ट्र नौजवान सभा की बैठक। सुभाषचन्द्र बोस द्वारा अध्यक्षता। सभा ने कांग्रेस कार्यसमिति से अपील की कि वह सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ करे।

29 दिसम्बर, 1931. बम्बई में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक। समिति का गांधी जी से आग्रह कि वे वायसराय से मिलने के लिए समय मांगें। इस बैठक में सुभाषचन्द्र बोस भी आमंत्रित थे। उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव का विरोध किया पर उसका कुछ परिणाम न निकला।

1932

20 सितम्बर, 1932. गांधी जी द्वारा सांप्रदायिकता निर्णय के विरुद्ध आमरण अनशन। यह उपवास 25 सितम्बर, 1932 तक चला। गांधी जी के उपवास के फलस्वरूप साम्प्रदायिक निर्णय रद्द हो गया और पूना समझौता हुआ।

17 नवंबर, 1932. लंदन में तीसरा गोलमेज़ सम्मेलन आरम्भ। यह सम्मेलन 24 दिसम्बर, 1932 तक चला।

1932. सुभाष बोस को मद्रास में दो मास का कारावास।

1933

मार्च, 1933. सुभाष बोस की स्वास्थ्य लाभ के लिए यूरोप-यात्रा।

22 अक्तूबर, 1933. भारत के केंद्रीय विधानमंडल के भूतपूर्व अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल की स्विटजरलैंड में मृत्यु।

1933 से 1936 तक सुभाष बोस द्वारा रूस को छोड़कर यूरोप के बाकी देशों की यात्रा।

1933. श्रीमती एनी बीसेंट की मृत्यु।

1934

1934. जर्मनी में हिटलर का अधिनायकवाद स्थापित।

मई, 1934. आल इंडिया कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना।

नवंबर, 1934. सुभाष बोस के पिता जानकीनाथ बोस की मृत्यु। सुभाष भारत आए और छह हफ्ते अपने घर पर नजरबंद रहे।

27 नवंबर 1934. सुभाष बोस ने अपनी पुस्तक *द इंडियन स्ट्रगल* का पहला भाग पूरा किया। इस भाग में 1920 से 1934 तक का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का विवरण है। पुस्तक की पश्चिमी देशों के समाचार पत्रों तथा राजनीतिज्ञों ने सराहना की।

1935

1935. भारतीय शासन अधिनियम, 1935 पास। यह अधिनियम 1937 से लागू हुआ।

1936

1936-1941. लार्ड लिन्लिथगो भारत के वायसराय।

1936. जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित। उन्होंने लखनऊ में अप्रैल, 1936 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता की।

मार्च, 1937. सुभाष बोस कलकत्ते के एक अस्पताल में नज़रबंद थे। उन्हें नज़रबंदी से रिहा कर दिया गया।

दिसम्बर, 1937. सुभाष बोस द्वारा स्वास्थ्य लाभ के लिए आस्ट्रिया की यात्रा।

दिसम्बर, 1937. सुभाष बोस ने बैडगास्टीन, आस्ट्रिया में अपनी आंशिक आत्मकथा *एन इंडियन पिलग्रिम* पूरी की। इसमें 1897 से अप्रैल 1921 तक की सुभाष की जीवन कथा है। पुस्तक में सुभाष के आत्म-विकास का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश चित्रित है। इसमें उन्नीसवीं सदी के अंत तथा बीसवीं सदी के आरंभ की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति का भी वर्णन है।

1938

जनवरी, 1938. सुभाष बोस आस्ट्रिया से इंगलैंड गए।

1938. सुभाष बोस कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित।

सितम्बर, 1938. म्यूनिख पैक्ट।

1939

1939. महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के विरोध के बावजूद सुभाषचन्द्र बोस दुबारा कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित। गांधी जी ने कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए डॉ० पट्टाभि सीता रामय्या का समर्थन किया था। उन्होंने पट्टाभि की हार को अपनी हार बताया।

29 अप्रैल, 1939. सुभाष बोस द्वारा कांग्रेस के अध्यक्ष-पद से इस्तीफा।

मई, 1939. सुभाषचन्द्र बोस द्वारा फारवर्ड ब्लाक की स्थापना। वे इसके पहले अध्यक्ष बने और पंजाब के सरदार सार्दूलसिंह कविशीर उसके उपाध्यक्ष।

1939-1945. द्वितीय विश्वयुद्ध।

सितम्बर, 1939. ब्रिटेन द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा। वायसराय ने भारत को भी ब्रिटेन की ओर से युद्धग्रस्त देश घोषित किया।

नवंबर, 1939. कांग्रेस मंत्रिमंडलों द्वारा सरकार से इस्तीफा।

1940.

जनवरी, 1940. आल इंडिया स्टूडेंट्स कांग्रेस दिल्ली में अध्यक्षीय भाषण दिया।

मार्च, 1940. रामगढ़ कांग्रेस के अवसर पर सुभाषचन्द्र बोस द्वारा अखिल भारतीय समझौता-विरोधी सम्मेलन का प्रदर्शन। इस प्रदर्शन का आयोजन फारवर्ड ब्लाक तथा किसान सभा ने किया था।

अप्रैल, 1940. फारवर्ड द्वारा सारे देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन।

जून, 1940. सुभाष बोस द्वारा युद्ध-स्थिति के संबंध में गांधी जी से बातचीत। सुभाष ने अपील की कि वे सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ करें पर गांधी जी सहमत नहीं हुए। सुभाष ने इस संबंध में जिन्ना और सावरकर से भी बात की, पर वे भी आंदोलन करने के पक्ष में न थे। यह सुभाष की गांधी जी से अंतिम भेंट थी।

जुलाई, 1940. सुभाष बोस गिरफ्तार।

8 अगस्त, 1940. वायसराय का 8 अगस्त, 1940 का प्रस्ताव। वायसराय ने कुछ भारतीयों को अपनी कार्यपालिका परिषद में शामिल करने का सुझाव दिया। कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

1940. सुभाष बोस द्वारा जेल में आमरण उपवास की घोषणा। उपवास के सातवें

दिन वे रिहा और घर में नज़रबंद।

1941

1941. रवीन्द्रनाथ टैगोर की मृत्यु।

जनवरी, 1941. जनवरी के अंत में सुभाषचन्द्र बोस वेष बदलकर घर से भाग गए।

9 सितम्बर, 1941. ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल द्वारा हाउस आफ कामन्स में घोषणा कि अटलांटिक चार्टर भारत पर लागू नहीं होगा।

7 दिसम्बर 1941. जापान द्वारा सुदूरपूर्व में अमरीका के नौसैनिक अड्डे पर्ल हार्बर पर आक्रमण।

1942

15 फरवरी 1942. सिंगापुर का पतन।

मार्च, 1942. सर स्टेफर्ड क्रिप्स की भारत-यात्रा।

जून, 1942. रास बिहारी घोष ने बैंगकोक में इंडियन इंडेपेंडेंस लीग की स्थापना की घोषणा की।

8 अगस्त, 1942. कांग्रेस द्वारा भारत छोड़ो प्रस्ताव स्वीकृत।

9 अगस्त, 1942. गांधी जी तथा कांग्रेस के अन्य नेता गिरफ्तार।

सितम्बर, 1942. ब्रिटिश सेना की मलाया और सिंगापुर में जापान द्वारा पराजय। ब्रिटिश सेना के 45,000 सैनिक जापान के युद्धबंदी। कैप्टन मोहन सिंह ब्रिटिश सेना के साथ पीछे नहीं लौटे। उन्होंने जापानी अधिकारियों के साथ संबंध स्थापित कर आज़ाद हिंद फौज़ का संगठन किया। 1 सितम्बर, 1942 को आज़ाद हिंद फौज़ की पहली डिवीज़न का निर्माण।

2 सितम्बर, 1942. सुभाष बोस का सिंगापुर में पदार्पण। बोस ने आज़ाद हिंद सरकार की घोषणा की, तिरंगे को राष्ट्रीय ध्वज माना और *जय हिंद* तथा *दिल्ली चलो* नारा दिया।

1943

1943. बंगाल का अकाल

1943-1947. लार्ड वैवेल भारत के वायसराय।

12 मार्च, 1943. जापान के प्रधानमंत्री जनरल तोजो द्वारा भारत के संबंध में जापान की नीति की घोषणा।

21 जून, 1943. सुभाष बोस द्वारा टोकियो से प्रसारण। युद्ध की ताजा स्थिति का विश्लेषण।

24 जून, 1943. टोकियो से युद्ध के महत्व के बारे में प्रसारण।

5 जुलाई, 1943. आज़ाद हिंद फौज़ के सैनिकों के सामने भाषण।

9 जुलाई, 1943. सुभाष बोस का स्योनान की सार्वजनिक सभा में भाषण। इस भाषण में सुभाष ने बताया कि उन्होंने देश क्यों छोड़ा।

25 अगस्त, 1943. सुभाष बोस ने आज़ाद हिंद फौज़ की कमान संभालने पर विशेष आदेश जारी किया।

21 अक्तूबर, 1943. आज़ाद हिद की अस्थायी सरकार की घोषणा।

16 नवंबर, 1943. जापान के नौ-सेना विभाग ने सुभाषचन्द्र बोस की प्रस्तावित अंदमान और निकोबार यात्रा के बारे में निर्देश जारी किए।

1944

मार्च, 1944. आज़ाद हिद फौज़ की पहली घोषणा। घोषणा में बताया गया था कि भारत पहुंचने पर जापान की सेना तथा आज़ाद हिंद फौज़ के क्या-क्या कर्त्तव्य होंगे।

4 अप्रैल, 1944. आज़ाद हिंद फौज़ की दूसरी घोषणा। घोषणा में कहा गया कि आज़ाद हिंद फौज़ भारत भूमि में प्रवेश कर चुकी है और भारतीयों को उसकी पूरी सहायता करनी चाहिए। जापानी फौज के बारे में कहा गया कि उसकी कोई प्रादेशिक महत्वाकांक्षा नही है और उसका लक्ष्य भारत में आंग्ल-अमरीकी सेना को नष्ट करना है।

मई, 1944. आज़ाद हिंद फौज़ की बटालियनों ने चिटगांव के दक्षिण-पूर्व की आखिरी चौकी पर तिरंगा फहराया। शाहनवाज़ खां के नेतृत्व में एक अन्य बटालियन ने नागालैंड के कोहिमा नगर पर हमला किया। लेकिन जापान को भारत-बर्मा सीमा छोड़कर अमरीकी हमले का सामना करने के लिए दक्षिण प्रशांत की ओर जाना पड़ा। फलत: आज़ाद हिंद फौज़ को ब्रिटिश सेना के आगे आत्म-समर्पण करना पड़ा।

6 जुलाई, 1944. सुभाष बोस ने सिंगापुर से आज़ाद हिंद रेडियो से गांधी जी को सम्बोधित करते हुए कहा,"भारत की स्वतंत्रता का अंतिम युद्ध आरम्भ हो चुका है। राष्ट्रपिता, भारतीय स्वतंत्रता के इस पवित्र युद्ध में हमें आपकी सद्भावना और आशीर्वाद की आवश्यकता है।"

1945

1945. इंगलैड में श्रमिक दल की सरकार। एटली प्रधानमंत्री।

1945. संयुक्त राष्ट्रसंघ का जन्म।

1945. भारत में शिमला सम्मेलन।

1945. 6 और 9 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा तथा नागासाकी पर अमरीका द्वारा एटम बम का विस्फोट। जापान द्वारा आत्म-समर्पण।

17 अगस्त, 1945. सुभाष बोस द्वारा पूर्वी एशिया में बसे हुए भारतीयों के नाम संदेश। संदेश में भारतीयों ने आज़ाद हिंद फौज़ को जो सहायता दी थी उसके लिए सुभाष बोस ने अपने देशवासियों को धन्यवाद दिया।

19 अगस्त, 1945. सुभाषचन्द्र बोस की ताइपेइ हवाई अड्डे पर विमान दुर्घटना में मृत्यु। 20 अगस्त, 1945 को उनका ताईहोकू में अंत्येष्टि संस्कार। 5 सितम्बर, 1945 को सुभाष के सहयोगी कर्नल हबीबुर रहमान उनकी अस्थियां टोकियो ले गए। ये अस्थियां वहां के रणकोजी मंदिर में रखी गई।

परिशिष्ट II

आज़ाद हिंद फौज के गाने

अभियान गीत

कदम-कदम बढ़ाए जा
खुशी के गीत गाए जा
यह जिदगी है कौम की
तू कौम पर लुटाए जा।
बढ़ाए जा, कदम-कदम बढ़ाए जा।
तू शेरे-हिंद आगे बढ़
मरने से तू कभी न डर
उड़ा दे दुश्मनों के सर
जोशे-वतन बढ़ाए जा
बढ़ाए जा, कदम-कदम बढ़ाए जा।
हिम्मत तेरी बढ़ी रहे
खुदा तेरी सुनता रहे
जो सामने आए तेरे
तू ख़ाक में मिलाए जा
बढाए जा, कदम-कदम बढ़ाए जा।
चलो दिल्ली पुकार के
कौमी निशां संभाल के
लालकिले पे गाड़ के
लहराए जा, लहराए जा।
बढ़ाए जा, कदम-कदम बढ़ाए जा।

क़ौमी तराना

शुभ सुख चैन की बरखा बरसे

भारत भाग है जागा
पंजाब, सिंधु, गुजरात, मराठा
द्राविड़, उत्कल, बंगा
चंचल सागर, विन्ध्य हिमाचल
नीला यमुना गंगा
तेरे नित गुन गाएं
तुझ से जीवन पाएं
सब जन पाएं आशा
सूरज बनकर जग पर चमके
भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो
भारत नाम सुभागा
सबके मन में प्रीत बसाए
तेरी मीठी वाणी,
हर सूबे के रहने वाले
हर मज़हब के प्राणी
सब भेद और फर्क मिटाके
सब गोद में तेरी आके
गूंथें प्रेम की माला
सूरज बनकर जग पर चमके
भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो
भारत नाम सुभागा
सुबह सवेरे पंख पखेरू
तेरे ही गुण गाएं
बास भरी भरपूर हवाएं
जीवन में ऋतु लाएं
सब मिलकर हिन्द पुकारें
जय आज़ाद हिन्द के नारे
प्यारा देश हमारा
सूरज बनकर जग पर चमके
भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो
भारत नाम सुभागा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

हिन्दी पुस्तकें

चकोर, *सुभाषचन्द्र बोस* ।

"गुप्त, विश्व प्रकाश तथा मोहिनी गुप्त, *महात्मा गांधी–व्यक्ति और विचार*, नई दिल्ली, 1996 ।

"गुप्त, विश्व प्रकाश तथा मोहिनी गुप्त, *राजा राममोहन राय– व्यक्ति और विचार*, नई दिल्ली, 1996 ।

"गुप्त, विश्व प्रकाश तथा मोहिनी गुप्त, *डॉ० बी० आर० अम्बेडकर– व्यक्ति और विचार*, नई दिल्ली, 1996 ।

डे, शैलेन्द्र (अनु० ममता खरे), *मैं सुभाष बोल रहा हूं*, 3 भाग, रवीन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद, 1984 ।

धर्मेन्द्रनाथ, *अगस्त क्रांति और दिल्ली*, दिल्ली, 1993 ।

धर्मेन्द्रनाथ, *दिल्ली और आज़ादी*, दिल्ली, 1990 ।

बोस, शिशिरकुमार (सं), *बोस, सुभाष चन्द्र : नेताजी संपूर्ण वाङ्मय, खंड 4* ।

बोस (बसु), सुभाषचन्द्र बोस, *तरुण के स्वप्न* ।

बोस, सुभाषचन्द्र, *तरुणाई के सपने* : 1971 ।

सुरेन्द्र कुमार, *सुभाष* ।

शरण, गिरिराज (सं.), *सुभाष ने कहा था* ।

शर्मा, कल्याण लाल, *नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का जीवन–चरित्र* ।

श्री कृष्ण सरल, *सुभाषचन्द्र* ।

अंग्रेजी पुस्तकें

Agrou, Danil, *Moderates and the Extremists in the Indian Nationalist Movement.*

Arun, (Comp. and Ed.), *Testament of Subhash Bose–Being a*

Complete and Authentic Record of Netaji's Broadcast Speeches, Articles, Press Statements, etc., 1946.

Azad, Abul Kalam, *India Wins Freedom*, Bombay, 1959.

Bahadur Lal, *The Muslim League.*

Bary, Thwdore de, *Sources of Indian Tradition.*

Bajle, C.A., *Indian Society and the Making of the British Empire.*

Bhatia, B.M., *Famines in India.*

Bhattacharya,S.N., *Subhash Chandra Bose in Self-Exile.*

Bose, Asoke Nath, *Netaji's Letters to His Nephew.*

Bose, Mihir, *Lost Hero: A Biography of Subhash Bose.*

Bose, Sisir K.(Ed.), *Netaji and Indian Freedom,* Proceedings of the International Netaji Souvenir, 1973.

Bose, Sisir K., *The Great Escape.*

Bose, Sisir K.(Ed.), *Cross roads Works of Subhash Chandra Bose,* 1938-1940.

Bose, Sisir K. and Others (Ed.), *A Becon Across Asia:A Biography of Subhash Chandra Bose,* 1973.

Bose, Sisir K. and Bose, Swagata (Ed.), *Bose:Congress President, Speeches, Articles and Letters, January 1938 to May 1939.*

Bose, Sisir K. and Bose, Swagata (Ed.), *Subhash Chandra Bose: Letters to Emilci Schenkel, 1934-1942.*

Bose, Sisir K. and Bose, Suagata (Ed.), *Netaji Collected Works* 6 Vols.

Bose, Sisir K.and Bose, Suagta, Ed., *Subhash Chandra Bose, Letters, Articles, Speeches and Statements, 1933-1937.*

Bose, Sisir K.and Sinha, Birendranath (Ed.), *Netaji—Pictorial Biography.*

Bose, Subhash Chandra, *An Indian Pilgrim: An Unfinished Auto biography and Collected Letters,* 1897-1921.

सुभाष बोस ने यह पुस्तक 1937 में आस्ट्रिया में लिखी थी। पुस्तक में 3 खंड और 10 चित्र हैं।

पहला खंड एक *भारतीय यात्री* आत्मकथा के रूप में है। पुस्तक के इस खंड में दस अध्याय हैं

1. जन्म, माता-पिता और आरम्भिक परिवेश
2. परिवार का इतिहास
3. मेरे समय से पहले
4. स्कूल में (1)
5. स्कूल में (2)
6. प्रेसीडेन्सी कालिज (1)
7. प्रेसीडेन्सी कालिज़ (2)
8. फिर से अध्ययन का सिलसिला
9. कैम्ब्रिज में
10. मेरा विश्वास (दार्शनिक)

पत्रों संबंधी दूसरे खंड में सुभाष बोस द्वारा 1912 से 1921 तक की अवधि में लिखे गए वे पत्र संकलित है जो उन्होंने अपनी माता प्रभावती बोस, अपने बड़े भाई शरत चन्द्र बोस, तथा अपने मित्रों हेमंत कुमार सरकार, भोलानाथ राय, जोगेन्द्र नारायण मित्र, चारूचंद्र गांगुली, तथा अपने नेता देशबंधु चितरंजन दास, को लिखे थे। इस खंड में उनका आई० सी० एस० को छोड़ने वाला त्याग-पत्र भी संकलित है जो उन्होनें मोंटेग्यू को लिखा था।

खंड 3 में सुभाष बोस के आरम्भिक जीवन से सम्बंधित कुछ महत्त्वपूर्ण परिशिष्ट है। ये परिशिष्ट हैं:

1. महीनगर के बोस परिवार का वंश-वृक्ष।
2. हथकोला के दत्त परिवार का वंश-वृक्ष।
3. जानकी नाथ बोस : एक संक्षिप्त जीवनी।
4. पुरन्दर खां और महीनगर समाज।
5. प्रेसीडेन्सी कालिज में अनुशासन।
6. प्रेसीडेन्सी कालिज का उपद्रव : सभी विवरण
7. सुभाष बोस (ओटेन द्वारा लिखित कविता)
8. स्काटिश चर्च कालिज दार्शनिक समाज।

पुस्तक में कुछ चित्र भी दिए गए हैं :

1. पिता जानकीनाथ
2. माता प्रभावती
3. स्कूली जीवन काल का पारिवारिक चित्र

4. 1912 में माता प्रभावती को लिखे गए पत्र की फोटो-प्रति
5. हाई स्कूल के विद्यार्थी-जीवन का चित्र
6. 1917 में विश्वविद्यालयी सेना के समय का चित्र
7. बड़े भाई शरत चन्द्र का 1913 का चित्र जब वे इंगलैंड में वकालत पढ़ रहे थे।
8. 1913 में बड़े भाई शरत चन्द्र को लिखे गए पत्र के एक पन्ने की फोटो-प्रति।
9. भारतीय सिविल सेवा से त्याग-पत्र ।
10. 1920 में इंगलैंड में छात्र-जीवन का चित्र।

पुस्तक के अंत में *रिफरेंसेस एंड ग्लासरी* शीर्षक के अंतर्गत सुभाष बोस के जीवन से संबंधिक कुछ विशिष्ट व्यक्तियों, घटनाओं तथा शब्दों के परिचय दिए गए हैं।

Bose, Subhash Chandra, *The India Struggle, 1920-1942,* Calcutta, 1964

यह पुस्तक नेताजी कलेक्टेड वर्क्स के खंड 2 के रूप में भी प्रकाशित हुई है। इस ग्रंथ को सुभाष बोस की प्रमुख ऐतिहासिक रचना माना जाता है। इसका संपादन शिशिर के० बोस ने किया है और उन्होंने अपनी प्रस्तावना में सूचना दी है कि सुभाष बोस ने 1920-1934 अंश अपने अपने यूरोपीय-प्रवास के समय लिखा था। इसे लिखने में उन्हें एक वर्ष का समय लगा था और उनका स्वास्थ्य संतोष-जनक नहीं था उनके पास पर्याप्त संदर्भ सामग्री नहीं थी और उन्होंने अपने विचारों को अपनी स्मृति के बल पर लिपिवद्ध किया था। पुस्तक लंदन की लारेंस तथा विशर्ट कंपनी ने 17 जनवरी, 1935 को प्रकाशित की थी। ब्रिटिश समाचार-पत्रों तथा यूरोप के राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्रों ने पुस्तक का हार्दिक स्वागत किया था। लेकिन भारत की ब्रिटिश सरकार ने भारत में इस पुस्तक के प्रवेश पर रोक लगा दी थी। तत्कालीन भारत मंत्री सर सैमुअल होर ने हाउस आफ कामन्स में बयान दिया था कि पुस्तक पर प्रतिबंध लगाने का कारण यह था कि उससे आतंकवादी गतिविधियों और सीधी कार्यवाही के लिए प्रेरणा मिलती है।

पुस्तक अपने प्रकाशन के प्रायः एक दशक बाद तक भारतीय पाठकों के हाथों में न पहुंच सकी। लेकिन इंगलैंड में *मैनचेस्टर गार्जियन, सन्डे टाइम्स, डेली हेरल्ड, स्पेक्टेटर, न्यूज़ क्रोनिकल,* और जार्ज लैन्सबरी ने पुस्तक की सराहना की थी। *मैनेचेस्टर गार्जियन* ने लिखा था कि भारतीय राजनीति पर किसी भारतीय राजनीतिज्ञ द्वारा लिखी गई यह पहली रोचक पुस्तक थी। पुस्तक की तुलना लाला लाजपत राय की पीढ़ी के लोगों द्वारा लिखी गई पुस्तकों से की जा सकती थी। पुस्तक का महत्व

इस कारण और बढ़ जाता है कि लेखक भारत के तीन सबसे प्रमुख राजनीतिज्ञों में सबसे छोटे है।

सन्डे टाइम्स ने पुस्तक को जनसाधारण की शिक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक बताया था। उसने लिखा था कि अंग्रेजों के लिए पुस्तक के दृष्टिकोण को समझना मुश्किल है लेकिन उसने भारतीय आंदोलन के एक ऐसे पक्ष का विवरण दिया है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

डेली हेरल्ड के शब्दों में पुस्तक उत्तेजनारहित, संतुलित और निष्पक्ष थी। वह समसामयिक भारतीय राजनीति पर योग्यतम पुस्तक थी। उसकी रचना एक सजग, विचारशील और रचनात्मक बुद्धि वाले व्यक्ति ने की थी। लेखक की आयु चालीस वर्ष से कम है और वह किसी भी देश के राजनीतिक जीवन के लिए एक सम्बल, एक अलंकरण बन सकता है।

स्पेक्टेटर ने पुस्तक को सम-सामयिक राजनीति का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ घोषित किया।

न्यूज़ क्रानिकल ने पुस्तक का महत्व इस कारण स्वीकार किया कि वह राष्ट्रीय आंदोलन के एक प्रमुख नेता का विवरण है। पुस्तक में गांधी जी का चित्रण रोचक है। उसमें संत के गुणों का बखान है लेकिन राजनीतिज्ञ की भंयकर भूलों को अनदेखा नहीं किया गया है।

जिस समय सुभाष बोस पुस्तक लिख रहे थे, उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर से पत्र-व्यवहार किया था। उनकी इच्छा थी कि पुस्तक की प्रस्तावना बर्ट्रेंड रसेल अथवा एच० जी० वेल्स जैसा कोई दिग्गज लिखे। उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। जार्ज लैन्सबरी, रोमां रोलां, आयरलैंड के राष्ट्रपति डी० वैलेरा ने भी पुस्तक की प्रशंसा की थी।

पुस्तक का उत्तर भाग 1935-1942 सुभाष बोस ने आठ साल बाद, दूसरे विश्व-युद्ध के दौरान यूरोप में लिखा था। इसकी पांडुलिपि विएना में उनकी पत्नी से प्राप्त हुई थी।

भारत में 1921-1934 तक का विवरण 1948 में और 1935-1942 का विवरण 1952 में प्रकाशित हुआ था। नेताजी रिसर्च ब्यूरो कलकत्ता ने संयुक्त संस्करण 1964 में प्रकाशित किया। पुस्तक के जापानी और इतालवी भाषाओं में भी अनुवाद प्रकाशित हुए थे।

नेताती रिसर्च ब्यूरो द्वारा प्रकाशित *नेताजी कलेक्टेड वर्क्स* खंड 2 *द इंडियन स्ट्रगल 1920-1942* है। इसमें 22 वर्ष की भारतीय राजनीति का लेखा-जोखा है।

Bose, Subhash Chandra, On to Delhi.

Bose, Subhash Chandra, *Impressions in life*, Hero Publica-

tions, 4 Lower Mall, Lahore, 1947

सुभाष बोस 1933 से 1937 तक यूरोप में रहे थे और इस प्रवास के दौरान उन्होंने आयरलैंड, जर्मनी, इटली, फ्रांस, पोलैंड, स्विट्जरलैंड आदि देशों की यात्रा की, वहां की राजनीतिक स्थिति का संगठन किया और महत्त्वपूर्ण नेताओं से भेंट की। उन्होंने इन यात्राओं के बारे में अपने संस्मरण भारतीय मित्रों को पत्रों द्वारा लिख भेजे तथा यूरोप के अनेक समाचार-पत्रों में उन्हें प्रकाशित किया। समय-समय पर उन्होंने भाषण भी दिए। पुस्तक में सुभाष बोस के 1933-1937 की अवधि के यूरोप-प्रवास सम्बंधी लेख, संस्मरण तथा भाषण संकलित हैं।

Bose, Subhash Chandra, *Netaji, Collected Works*, 6 Vols.

यह पुस्तक माला सुभाष चन्द्र बोस के जीवन और विचारों को समझने के लिए सबसे विश्वसनीय और प्रामाणिक दस्तावेज है। यह पुस्तकमाला नेताजी रिसर्च ब्यूरो, नेताजी भवन, 38/12 लाला लाजपत राय रोड, कलकत्ता- 700020 ने प्रकाशित की है।

Bose, Subhash Chandra, *Fundamental Questions of Indian Revolution,* 1970.

Bose, Subhash Chandra, *Swadeshi and Boycott.*

Bose, Subhash Chandra, *10(Ten) Historic Netaji Documents.*

Bose, Subhash Chandra, *Selected Speeches,* 1962.

Bose, Subhash Chandra, *Correspondence,* 1924-1932, 1967.

Bose, Subhash Chandra, *Mission of Life,* 1949.

Bose, Sugata, *Pleasant Labour and Colonial Capital in Rural Bengal Since 1770.*

Brecher, M., *Nehru: A Political Biography.*

Bright (Ed.), *Subhash Chandra Bose: Important Speeches Writings,* 1947.

Bright, J.S., *Subhash Bose and His Ideas*

Brown, Judith M., *Gandhi's Rise to Power, 1915-1922.*

Brown, Judith M., Gandhi and Civil Disobidience, 1928-1934.

Chakrabarty, Bright, *Subhash Chandra Bose and Middle Class Radicalism: A Study in Indian Nationalism, 1928-1940.*

Chandra, Bipin, *The Rise and Growth of Economic Nationalism.*

Chopra, C.L., *The Punjab as a Soverign State.*

Chaudhri, S.B., *Civil Disturbances Under British Rule, 1757-1857.*

Chowdhary, S.R., *Leftist Movements in India, 1917-47.*

Coupland, R., *The Indian Problem.*

Dalbir Singh, *Rebel President, A Biographical Study of Subhash Chandra Bose,* 1946.

Das Gupta, Hemendranath, *Subhash Chandra.*

Das, Harihar, *Subhash Chandra Bose and the Indian National Movement,* New Delhi, 1983.

Datta, K.K, *Anti British Plots and Movements Before 1857.*

Desai, A.R., *Social Background of Indian Nationalism.*

Duff. Grant, *History of Marathas,* 2 Vols.

Dutt, R.C., *Economic History of India,* 2 Vols.

Dutt, R.P., *India To-day.*

Elenjimettan, Anthony, *Hero of Hindustan,* 1947.

Faruquhar, J.N., *Modern Religious Movements in India,* London, 1918.

Fisher, L. *Life of Gandhi.*

Forrest, Denys, *Tiger of Mysore — The Life and Death of Tipu Sultan .*

Gandhi, M.K., *My Experiments with Truth.*

Ganguli, N.G., *Netaji in Germany :A Little Known Chapter,* 1965.

Gopal, S., *Jawaharlal Nehru: A Biography.*

Ghosh, J.N., *Netaji Subhash Chandra,* Calcutta, 1946.

Ghosh K.K., *The Indian National Army, Second Front of Independence Movement,* Meerut, 1969.

Gordon, Leonard A., *Brothers Against the Raj— Biography of Sarat and Subhash Chandra Bose.*

Grover, B.L., *A Documentary Study of British Policy Towards Indian Nationalism,* 1885-1909.

Grover, Verinder, *Subhash Chandra Bose,* Deep & Deep, New Delhi.

Guha, Samar, *Mahatma and the Netaji: Two Men of the Destiny of India.*

Guha, Samar, *Netaji — Dead or Live?*

Gupta, Subbaraya, *New Light on Tipu Sultan.*

Gwyer and Appadorai, *Speeches and Documents on the Indian Constitution*, 2 Vols.
Harin Shah, *Gallant End of Netaji Subhash Chandra Bose.*
Hugh, Toye, *Springing Tiger:A Study of Subhash Chandra Bose.*
International Netaji Souvenir., Calcutta, 1976.
Jain, G.C.(Ed.), *On To Delhi,* Delhi, 1946.
Jog, N.G., *In Freedom's Quest — Biography of Netaji Subhash Chandra Bose,* 1969.
Kapur, A.N. and V.P.Gupta, *A Dictionary of Gandhian Thought.*
Kapur, A.N. and V.P.Gupta, *Facets of Gandhian Life and Thought.*
Kar, Jasbanta, *The New Horizon: Netaji's Concepts of Leftism.*
Karmakar, D.P., *Bal Gangadhar Tilak.*
Keer, Dhananjay, *Dr.Ambedkar: Life and Mission.*
Khan, Shah Nawaz, *I.N.A.,and Its' Netaji,* Delhi, 1946.
Khosla, G.D., *Last Days of Netaji.*
Kopf, D., *British Orient abeinc and the Bengal Renaissance: The Dynamies of Indian Modernization 1773-1835;* Calcutta, 1969.
Lahiri, Amar, *Said Subhash Bose,* 1947.
Lakhanpal, P.C., *History of the Congress Socialist Party.*
Madan Gopal, *Life and Times of Subhash Chandra Bose.*
Majumdar, A.K., *Advent of Independence,* Bombay.
Majumdar, R.C., *The Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857.*
Majumdar, R.C.(Ed.), *History and Culture of the Indian People,* 12 Vols.
Majumdar, S.K., *Evolution of Netaji : The Warrior Prophet of India,* 1969.
Malleson, G.B., *The Decisive Battles of India.*
Marshall, P.J., *Bengal: The British Bridgehead to Eastern India, 1740-1828.*
Masani, M.R., *The Communist Party of India.*

Masani, R.P., *Dadabhai Naroji.*
Mehrotra, S.R., *The Emergence of Indian National Congress.*
Mehta and Patwardhan, *The Communal Triangle.*
Mookherjee, Girija K., *Subhash Chandra Bose.*
Mukherjee, Hiren, *Bow of Burning Gold—A Study of Subhash Chandra Bose.*
Muller, Edmund and Bhattacharjee, Aruna, *Subhash Chandra Bose and Indian Freedom Struggle.*
Nehru , Jawaharlal, *An Autobiography.*
Nehru , Jawaharlal, *Discovery of India.*
Nehru, Jawaharlal, *A Bunch of Old Letters.*
Netaji Enquiry Committee Report.
Nurullah and Naik, *History of Education in India During the British Period,* 1957.
Paranjpe, R.P., *Gopal Krishna Gokhale.*
Patil, V.S., *Subhash Chandra Bose : His Contribution to Indian Nationalism,* New Delhi, 1988.
Pattanaik, D.D., *Political Philosophy of Subhash Chandra Bose.*
Phillips, C.H., *The Evolution of India and Pakistan.*
Pillai, *Nehru and His Critics,* New Delhi.
Prasad, Bisheshwar, *The Origins of Provincial Autonomy.*
Prasad, Rajendra, *India Divided,* 1946.
Rai, Lajpat, *Unhappy India.*
Ranade, M.G., *Rise of the Maratha Power.*
Ray, B.G., *Religious Movements in Modern Bengal,* Shanti Niketan, 1965.
Relhan, O.P., *Subhash Chandra Bose: His Struggle For Independence.*
Roy, Dilip Kumar, *The Subhash I Know,* Bombay, 1946.
Roy, Dilip Kumar, *Netaji: The Man: Reminiscencess* 1966.
Saggi, P.D.(Ed.), *Life and Work of Netaji Subhash Chandra Bose.*
Sardesai, G.S., *Main Currents of the Maratha History.*

Sarkar, J.N., *The Fall of the Mughal Empire*, 4 Vols.

Sarkar, Sumit, *Bibliographical Survey of Social Reform Movements in the 18th and 19th Centuries.*

Seal, Anil, *The Emergence of Indian Nationalism.*

Sengupta, Bijon Kumar, *India's Man of Destiny.*

Sen, S.N., *1857.*

Seth, Hiralal, *Personality and Political Ideas of Subhash.*

Shah, Hasin, *Gallant End of Netaji*, Delhi, 1956.

Sharma, B.S., *The Political Philosophy of M.N.Roy.*

Sharma, Shri Ram (Ed.), *Netaji:His Life and Work*, 1948.

Sharma, S.R., *Making of Modern India.*

Shriman Narayan, *Selected Works of Mahatma Gandhi*, 6 Vols.

Singh, Durlabh, *Formation and Growth of Indian National Army*, Lahore, 1946.

Sinha, N.K., *Haider Ali.*

Spear, P., *Oxford History of Modern India.*

Sinha,N.K., *Ranjit Singh*

Stokes, Eric, *The English Utilitarians and India.*

Tara chand, *History of Freedom Movement in India*, 4 Vols.

Tara chand, *Influence of Islam on Indian Culture.*

Uttam Chand, *When Bose was Ziauddin*, 1946.

Wali Khan, *Facts are Facts.*

Weiner, Myron, *Party Politics in India— The Development of a Multi-Party System.*

Wolpert, S.A., *Tilak and Gokhale.*

Zacharias, H.C.E., *Renascent India.*